गोस्वामी तुलसीदास कृत

कुंडलिया रामायण

सम्पादक और टीकाकार

सत्यनारायण पाण्डेय, एम० ए०

प्रोफ़ेसर, सनातनधर्म कालेज, कानपुर

प्रकाशक

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, इलाहाबाद

१९४१
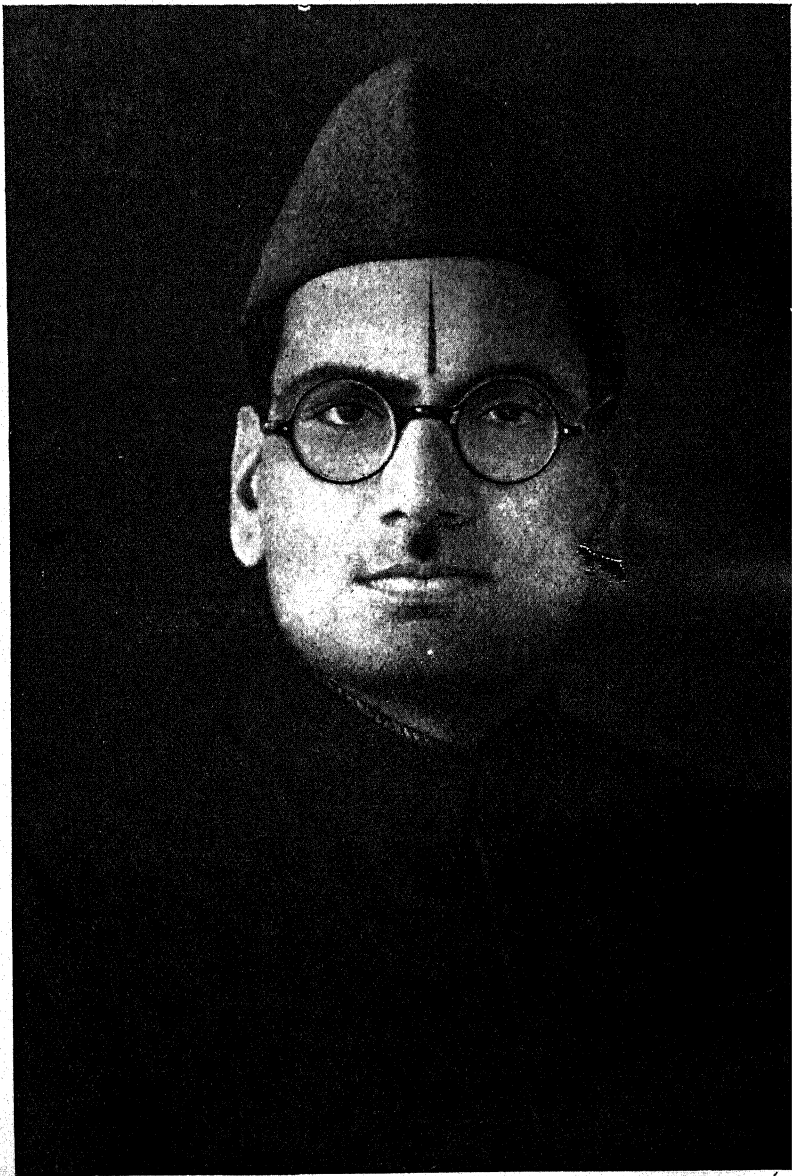
रायसाहब पण्डित श्रीनारायण चतुर्वेदी एम० ए० (लन्दन)

भैया साहब

को

वक्तव्य

गोस्वामी तुलसीदास जी का प्रस्तुत ग्रन्थ-रत्न जिस विशुद्ध, प्रामाणिक एवं पूर्ण हस्तलिखित प्रति के आधार पर प्रकाशित हुआ है उसका जो कुछ भी संक्षिप्त इतिहास मुझे ज्ञात हो सका है उसकी ओर निर्देश करना मैं अपने उत्तरदायित्व का एक आवश्यक अङ्ग समझता हूँ।

बाँदा निवासी स्वर्गीय पं० बदरीनाथ जी शुक्ल ने अपने अन्तिम दिनों में मेरे सामने अपने पौत्र पं० रामरत्न जी शुक्ल, रईस से इस हस्तलिखित प्रति का जो इतिहास बताया था वह इस प्रकार है :—

श्री प्रधान केशवदास जी ने अपने प्रिय शिष्य वैष्णव शीतलदास जी दिगम्बर के पढ़ने के लिए एक अन्य प्राचीन प्रति से देखकर यह प्रति चित्रकूट में लिखी थी। श्री शीतल-दास जी के उपरान्त उनके शिष्य बाबा हनुमानदास जी अपने जीवन की संध्या में बाँदा शहर में पहाड़ के ऊपर बम्बेश्वर महादेव जी के मन्दिर में रहने लगे थे। इनके त्याग, तप और तेज की ख्याति चारों ओर फैल रही थी। बाँदे के प्रसिद्ध पं० माधवप्रसाद जी शुक्ल से अधिक स्नेह होने के कारण बाबा हनुमानदास जी ने कुछ अन्य प्रतियों के साथ कुण्डलिया रामायण की यह हस्तलिखित प्रति उनके पुत्र पं० जगन्नाथप्रसाद जी शुक्ल को दी थी। पं० जगन्नाथ जी के कनिष्ठ भाई पं० बदरीनाथ जी शुक्ल ने अपने प्राणों से भी अधिक प्रिय मानकर इस प्रति की रक्षा की। संवत् १९८८ के विजयदशमी के अवकाशकाल में उन्होंने इस ग्रन्थ को प्रकाशित कराने की आज्ञा दी थी। पं० बदरीनाथ जी शुक्ल के तीन पुत्र थे—पं० काशीप्रसाद, पं० मदनमोहन और पं० रामगोपाल। पं० काशीप्रसाद जी के पुत्र पं० रामरत्न जी शुक्ल जो हमारे अभिन्न मित्र हैं, उनकी ही कृपा से मुझे सर्वप्रथम यह हस्तलिखित प्रति प्राप्त हुई थी और मैं दस वर्ष तक इस ग्रन्थ के विषय में खोज, अध्ययन और प्रचार का सतत प्रयत्न करता रहा।

मिश्रबन्धु, पं० अयोध्यानाथ जी शर्मा, पं० चन्द्रशेखर जी पाण्डेय, तथा पं० सद्-गुरुशरण जी अवस्थी आदि आचार्यों से इस ग्रन्थ के विषय में विचार विनिमय करता हुआ अपने परम पूज्य पिता जी पं० शारदाचरण जी पाण्डेय, धर्मोपदेशक की प्रभावशालिनी प्रेरणा से मैं स्वर्गीय आचार्य पं० महावीरप्रसाद जी द्विवेदी के पास दौलतपुर पहुँचा, तब उन्होंने इस

ग्रन्थ के विभिन्न स्थल स्वयं पढ़े और फिर मुझसे पढ़वाकर भी सुने। तदुपरान्त उन्होंने इसके विषय में निम्नलिखित धारणा व्यक्त की :—

"आज पं० सत्यनारायण पाण्डेय ने चलकर मुझे मेरे जन्मग्राम दौलतपुर में दर्शन दिये। उनके क्षणिक समागम से भी मुझे परमानन्द हुआ। जब उन्होंने गोस्वामी तुलसीदास-कृत कुण्डलिया रामायण की हस्तलिखित पुरानी प्रति मुझे दिखाई तब उस आनन्द की सीमा बहुत ही बढ़ गई। मैंने इस आज तक अप्राप्य पुस्तक के कई अंश पढ़कर देखे। इसकी शैली और इसके भाव इस बात के सबूत हैं कि यह रचना गोस्वामी जी ही की है। हम लोगों के लिए यह सौभाग्य की बात है कि यह ग्रन्थ-रत्न आयुष्मान् सत्यनारायण की बदौलत हिन्दी साहित्य की श्री-वृद्धि करेगा। मेरी हार्दिक अभिलाषा है कि यह पुस्तक कोई प्रकाशक सुन्दरता-पूर्वक प्रकाशित करे और थोड़े मूल्य पर सर्वसाधारण को सुलभ कर दे।

दौलतपुर
१ मार्च १९३२

(ह०) "महावीरप्रसाद द्विवेदी"

दौलतपुर से द्विवेदी जी की सम्मति लेने के बाद मैं बनारस गया और वहाँ स्वर्गीय आचार्य पं० रामचन्द्र जी शुक्ल को इस ग्रन्थ की हस्तलिखित प्रति दिखाई। शुक्ल जी ने बड़ी उत्सुकता से कुण्डलिया रामायण के अनेक छन्द पढ़कर देखे और शीतल साँस भरते हुए गर्दन उठाकर गम्भीरता-पूर्वक बोले, "मालूम होता है यह ग्रन्थ हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों के सामने नहीं आया, इसी लिए इसका नामोल्लेख मात्र मिलता है।"—इतना कहते हुए शुक्ल जी उठे और भीतर से अपना हिन्दी साहित्य का इतिहास उठा लाये। उन्होंने गोस्वामी जी के उन दस ग्रन्थों में अंतिम नाम कुण्डलिया रामायण का दिखाया "जिनमें से कई एक तो मिलते ही नहीं।" साथ ही शुक्ल जी ने यह भी संकेत किया कि गोस्वामी जी से पहले किसी भी कवि का लिखा कुण्डलिया छन्द नहीं मिलता। इस विषय में खोज करने के लिए उन्होंने मुझे प्रोत्साहित किया। ग्रंथ की भूमिका में मैंने इस बात को सिद्ध करने का यथासाध्य प्रयत्न भी किया है।

स्वर्गीय आचार्य शुक्ल जी के आदेशानुसार मैं नागरी प्रचारिणी सभाभवन में गया, वहाँ श्री राय कृष्णदास जी से मालूम हुआ कि सभाभवन में उक्त ग्रन्थ की कोई प्रति-लिपि नहीं है। उस समय राय साहब ही सभा के प्रधान मन्त्री थे। तदुपरान्त मैं प्रयाग गया और वहाँ डा० धीरेन्द्र वर्मा के साथ इस ग्रन्थ पर विचार विमर्श किया। मेरे प्रश्न करने पर डाक्टर साहब ने इसके प्रकाशन की चार विधियाँ बताईं।

यहाँ पर यह लिख देना भी युक्तियुक्त होगा कि ग्रन्थ प्रकाशित होने तक मुझे कुण्डलिया रामायण की तीन अन्य प्रतियों का पता लगा। एक तो पूज्य रायबहादुर पण्डित श्रीनारायण जी चतुर्वेदी से प्राप्त हुई जो मुंशी नवलकिशोर के यहाँ से सन् १८९२ में निकली थी। हिन्दी साहित्य सम्मेलन के संग्रहालय में सन् १९०३ वाली बंगवासिनी दूसरी प्रति का पता पं० उदयनारायण जी तिवारी ने ग्रंथ प्रकाशित होने से एक मास पूर्व देशदूत में एक लेख लिखकर दिया था। षोडश रामायणवाली तीसरी प्रति डा० रामकुमार जी वर्मा ने दिखाई थी। कहना न होगा कि उपर्युक्त तीनों प्रतियाँ अशुद्ध, भ्रष्ट, एवं अपूर्ण थीं, फिर भी जो प्रति पूज्य चतुर्वेदी जी ने दी थी वह अन्य दोनों की अपेक्षा कम अशुद्ध और अपूर्ण थी। किन्तु एक विशुद्ध, प्रामाणिक और पूर्ण प्रति के सामने उपर्युक्त तीनों खंडित प्रतियों का कोई मूल्य नहीं है। सन् १९४१ के जून मास की माधुरी और देशदूत में इस विषय पर लेख लिखकर समुचित प्रकाश डाल दिया गया है।

यहाँ पर मुझे इतना ही कहना है कि निरन्तर दस वर्षों तक सभा-सोसाइटियों, कवि-सम्मेलनों तथा साहित्य-सम्मेलन के अधिवेशनों में इस ग्रन्थ के छन्दों का समुचित प्रचार करने के बाद भी मुझे इस सर्वाङ्गपूर्ण तथा सुव्यवस्थित हस्तलिखित प्रति के टक्कर की कोई भी प्रकाशित एवं अप्रकाशित प्रति आजतक किसी के पास उपलब्ध नहीं हुई। इस प्रचार से इतना लाभ भी हुआ कि पूरा ग्रन्थ प्रकाशित होने के पूर्व ही गोस्वामी जी के अन्य ग्रन्थों के छन्दों के साथ उनके कुण्डलिया छन्द भी इलाहाबाद बोर्ड के एफ० ए० के विद्यार्थियों को पढ़ाये जाने लगे। इसका श्रेय मैं नागरी-प्रचारिणी-सभा के प्रधान मन्त्री पण्डित रामबहोरी शुक्ल को दूँगा। क्योंकि उन्होंने ही मुझसे कुण्डलिया रामायण के कुछ छन्द लेकर अपने "काव्यकुसुमाकर" नामक संग्रह में संकलित किये थे। किन्तु यह ग्रन्थ तो बी० ए० और एम० ए० के विद्यार्थियों के लिए उपयुक्त है, अतः इस मार्ग में अभी संतोषप्रद सफलता नहीं मिली है। यह मेरी निर्भ्रान्त धारणा है कि यह ग्रन्थ अपने विशुद्ध एवं पूर्ण रूप में हिन्दी-संसार के साहित्य सेवियों के सामने अब तक नहीं आ सका था। इसी आवश्यकता का अनुभव करके मैंने ग्रन्थ की भूमिका एवं टीका में तुलनात्मक समीक्षा के साथ ही साथ, ग्रन्थ की प्रामाणिकता पर भी प्रकाश डालने का प्रयत्न किया है। मुझे अपने कार्य में कहाँ तक सफलता मिली है इसका निर्णय करना पाठकों का काम है। वास्तव में मैंने तो इसी बहाने तुलसी के राम का किञ्चित् अध्ययन मात्र किया है। यदि साहित्यिक-भक्तों को कुछ भी सन्तोष मिला तो मैं कृतकृत्य हो जाऊँगा। अंत में मैं अपने परम-स्नेही मित्र सेठ किशनचन्द जैन तथा बाबू कृष्णबहादुर श्रीवास्तव को हार्दिक धन्यवाद दिये बिना नहीं रह सकता क्योंकि उन्होंने हस्त-लिखित प्रति के प्राप्त करने में मेरी समुचित सहायता की थी।

श्रीमतेरामानुजायनमः॥ अथलिष्यतेकुंडलियारामायन॥ सकलसुमगलदहनदुघगजसुषसव
सुषदानि॥ सतिगजिरातिरघुपतिचरनविघुनहरनकीवानि॥ विघुनहरनकीवानिजानिसज्जनस
वगावत॥ भक्तिमुक्तिवरदेससेससंकरसुरध्यावत॥ संकरध्यावतसेससुररिपुगनघनघलजन
गहनकहतुलसिदाससंकरसुवनभजनभक्तभवभयदहन॥१॥ दीनदयालदयाकरौदीनजानिसि
वमोहि॥ सीतारामसनेहउरसहजसंतनहोहि॥ सहजसंतनहोहिजथापदलाभदुष्यसुष॥
कर्मविवसजहजाउनहासियरामकमोहुष॥ रामकृपापावनितरहैजगतजानितसंसयहरौ॥
कहतुलसिदाससंकरउमादीनदयालदयाकरौ॥२॥ रामचरितसतकोटिसेससारदसिवभावै॥
नारदसुकसनकादिवेदकहिवीचहिरावै॥ वीचहिरावैचरितपारकहिपावतनाहिन ।
कहिकहिहारेसकलरामजसकहतसिराहिन॥ नहिसिराहिरघुवीरगुनसोतुलसीमनमेंड।
रित॥ भजनभाववेदनकहाकहैंचरितभवनिधितरित॥३॥ पुत्रजन्मनृपकीनजोरिमुनिगन
द्विजकुलवर॥ कहतवसिष्ठसेसिद्धिदीनिहविलेप्रसादकर॥ लेप्रसादकरदीनदेहुभामिनिनृप

नरामकोरूप॥ रामचरितपावनपरमधर्मपवित्रअनूप॥ धर्मपवित्रअनूपंकरियजवलौंजग
जीजै॥ रसनारसकरिचरितसरितनिसिवासरपीजै॥ निसिवासरश्रमतजिमनतुलसिरामपेहि
सुभसुकृत॥ कामधेनुकलिकल्पतरुएकरामगुनगानधन॥३६॥ इतिश्रीगुसांईतुलसीदास
कृतकुंडलियारामायणउत्तरकांडसंपूर्णसमाप्तः॥७॥ क्वारसुदि॥११॥ संवत॥१८९५॥ अस्थानश्री॥
चित्रकूट॥ रामरामरामरामरामरामरामरामरामरामरामरामरामरामरामरामराम॥

साहित्य के विद्यार्थियों एवं लिपि-विशेषज्ञों की सुविधा के लिए हस्तलिखित प्रति के आदिम एवं अंतिम पृष्ठों तथा द्विवेदी जी के लिखे हुए शब्दों के चित्र प्रकाशित किये जाते हैं।

सत्यनारायण पाण्डेय

भूमिका का सूचीपत्र

भूमिका

१—कुण्डलिया रामायण में कुण्डलिया छंद की उत्पत्ति

गोस्वामी तुलसीदासजी की काव्य-छटा आज हिन्दू धर्म के विशाल एवं व्यापक क्षेत्र में कलित कौमुदी के समान जगमगा रही है। अपनी सर्वतोमुखी प्रतिभा के बल पर उन्होंने शुष्क ज्ञान के भ्रांत पथिकों को उपासना का सरल एवं सुबोध मार्ग दिखाकर वेदविहित प्राचीन आर्य-धर्म की डगमगाती हुई नौका के लिए कर्णधार का काम किया। देशभाषा का आश्रय लेकर अनेक शैलियों एवं व्यंजना-प्रणालियों में रामगाथा की चर्चा करके उन्होंने भक्ति का द्वार सर्वसाधारण के लिए खोल दिया। जिस समय निर्गुणवादी संत एवं सूफी कवियों के प्रभाव से तथा विदेशियों के अत्याचारों से तिलमिलाकर हिन्दू-समाज नैराश्य और नास्तिकता की ओर अग्रसर हो रहा था उस समय गोस्वामीजी ने, समाज के आपत्ति-क्लांत हृदय को शान्ति पहुँचाने के लिए, ऐसे राम का अवलम्ब लिया जो एक बार नहीं अनेक बार निशाचरों का नाश करके पृथ्वी का भार उतार चुके थे। आज भी हिन्दू-समाज पीड़ित है और हिन्दी-साहित्य को तुलसी की सेवा वांछनीय है। संभवत: इसी से गोस्वामीजी के एक ऐसे प्रबन्ध-काव्य का पता लगा है, जिसकी ओर आज तक साहित्य के मर्मज्ञों का ध्यान नहीं गया। वह ग्रन्थरत्न है कुण्डलिया रामायण, जिसे लिखकर उन्होंने अपने उपास्य देव का गुणगान तो किया ही, एक और भी काम किया। वह था कुण्डलिया पद्धति का सूत्रपात करना।

भाषा के आदि कवि चन्दवरदाई तथा उनके पुत्र जल्ह ने कुण्डलिया छन्द का उल्लेख तो कहीं नहीं किया, पर उनके पृथ्वीराज रासो में इस छन्द के उपकरण अवश्य मिलते हैं। अपने कथन की पुष्टि के लिए हम 'रासो' के पदमावती-समय से दो छन्द उद्धृत करते हैं। पृथ्वीराज और शहाबुद्दीन की सेनाओं के बीच भीषण युद्ध का वर्णन करते हुए कवि लिखता है—

दूहा—"हुरेव रङ्ग नव रत्त वर, भयौ जुद्ध अति चित्त।
निसि बासर समुझि न परत, न को हार नह जित्त॥

कवित्त—न को हार नह जित्त, रहेइ न रहहिँ सूर वर।
धर उप्पर भर परत, करत अति जुद्ध महा भर॥

कहुँ कमन्ध कहुँ मत्थ, कहूँ कर चरन अंतरुरि ॥
कहुँ कमन्ध बह तेग, कहूँ सिर जुट्टि फुट्टि उर ॥
कहुँ दंति मत हय पुर षुपरि, कुभ भुसुंडह रुंड सब ।
हिंदवान रान भय भान मुख, गहिय तेग चहुँवान जब ॥"

यह दूसरा छन्द वास्तव में छप्पय है पर प्रतीत होता है कि चन्द के समय में छप्पय की गणना भी कवित्त के अंतर्गत होती थी। जो हो, हमें देखना तो यह है कि यदि हम 'दूहा' और 'कवित्त' को मिला दें और एक कवित्त में से आदिम अथवा अन्तिम दो पंक्तियों को निकाल लें तो कुण्डलिया छन्द की झलक अवश्य मिल जायगी; क्योंकि दोहे का अन्तिम चरण कवित्त के आदि में दुहरा दिया गया है, जैसा कि आगे चलकर कुण्डलिया छन्द के लिए आवश्यक हुआ। परन्तु दोहे के आदि का शब्द कवित्त के अन्त में नहीं मिलता। अतः यही कहना होगा कि चन्दवरदाई के समय में कुण्डलिया छन्द का वास्तविक रूप निर्धारित नहीं हो पाया था। हाँ, उसके आवश्यक उपादानों का बीजारोपण अवश्य हो चुका था।

जगनिक के आल्ह-खण्ड में भी हमें कोई कुण्डलिया नहीं मिलती। उनके बाद जिन भाटों और चारणों ने कवित्त और छप्पय छन्दों के द्वारा ही अपने आश्रयदाताओं को प्रसन्न किया, उनकी भी कोई कुण्डलिया हमें उपलब्ध नहीं होती। कबीर और नानक आदि सन्त कवियों ने दोहा, बानी, साखी और पद सुना सुनाकर ही हिन्दुओं और मुसलमानों में एकता स्थापित करने का स्तुत्य प्रयास किया था। जायसी आदि प्रेमाख्यानकारों ने भी पीर की व्यञ्जना दोहों और चौपाइयों में ही की। विद्यापति और सूर आदि गीतिकाव्य-रचयिता कवियों की कृतियों में तो कुण्डलिया छन्द के लिए अवकाश ही नहीं था। सारांश यह कि सोलहवीं शताब्दी तक किसी कवि की कुण्डलिया हमें नहीं मिलती।

उपर्युक्त कारणों के आधार पर हमारी यह दृढ़ धारणा है कि सर्वप्रथम गोस्वामीजी ने ही कुण्डलिया छन्द का सूत्रपात करके हिन्दी में एक मनोहर छन्द को जन्म दिया। कवितावली के अन्तर्गत इने-गिने छप्पय छन्दों की रचना कर उन्हें सांत्वना न मिली; क्योंकि प्राचीन प्रणाली के अनुसार छप्पय-पद्धति में केवल वीररस की ही व्यञ्जना होती आई थी। अन्य रसों की अभिव्यक्ति के लिए तुलसीदासजी को छप्पय छन्द में एक नया उलट-फेर करना पड़ा। रामचरितमानस और दोहावली आदि ग्रन्थों की रचना करके वे सहस्रों दोहे बना चुके थे और इस छन्द पर उनका पूरा अधिकार भी था। अतः छप्पय के रोला छन्द में आदि की दो पंक्तियों की जगह एक दोहा जोड़कर और दोहे के आदि का शब्द छन्द के अन्त में लाकर तथा दोहे का अन्तिम चरण रोला के आदि में दुहराकर गोस्वामीजी ने

एक अभिनव छन्द की सृष्टि की। इन पंक्तियों के लेखक की सम्मति में गोस्वामी जी ही कुण्डलिया-छन्द के आद्य प्रवर्तक हैं। इस धारणा का एक और भी प्रबल समर्थक कारण है। कुण्डलिया-रामायण में प्रयुक्त कुण्डलिया-छन्दों की सम्यक् समीक्षा करने पर उसमें आठ विभिन्न प्रकार के कुण्डलिया-छन्दों की उपलब्धि होती है। दोहा, रोला, सार और उल्लाला इन छन्दों के संयोग से भिन्न भिन्न प्रकार के कुण्डलिया छन्दों का निर्माण हुआ है। उनकी अवयव-रचना का क्रम इस प्रकार है —

(१) जिसमें एक दोहा, दो चरण रोला के और एक उल्लाला छन्द मिलते हैं।

(२) जिसमें एक दोहा और एक रोला छन्द मिलते हैं।

(३) जिसमें एक दोहा और एक सार छन्द मिलते हैं।

(४) जिसमें एक दोहा, दो चरण रोला के और दो चरण सार के मिलते हैं।

(५) जिसमें दो चरण सार के, दो चरण रोला के और एक उल्लाला छन्द मिलते हैं।

(६) जिसमें दो चरण सार के और एक रोला मिलते हैं।

(७) जिसमें छप्पय के रूप में कुण्डलिया के लक्षण मिलते हैं।

(८) जिसमें एक दोहा, एक रोला और एक उल्लाला छन्द मिलते हैं (इसमें आठ पंक्तियाँ हैं)।

इन आठ पृथक् प्रकार के कुण्डलिया छन्दों को देखकर यह धारणा और भी दृढ़ होती है कि कुण्डलिया का वह निर्माण-काल था, उसका कोई व्यवस्थित स्वरूप तब तक स्थिर न हो पाया था। गोस्वामीजी की मौलिक प्रतिभा से प्रसूत यह मनोरम छन्द अभी अपने शैशव की अठखेलियों में ही अटक रहा था। इन्हीं आठ प्रकार के कुण्डलिया-छन्दों में से केवल एक प्रकार—अर्थात् दोहा और रोला के संयोग से निर्मित प्रकार—आगे चलकर गिरधर आदि कवियों द्वारा गृहीत एवं प्रचलित हुआ। ऊपर उल्लिखित आठ प्रकारों में से यद्यपि गोस्वामीजी ने अपनी रचना में पहले प्रकार की कुण्डलिया का ही अधिक प्रयोग किया है, तथापि बाद के छंदःशास्त्रज्ञों ने दूसरे प्रकार को ही कुण्डलिया का ग्राह्य रूप माना। केशवदासजी ने अपनी रामचन्द्रिका में दूसरे प्रकार की ही दो-चार कुण्डलियाँ लिखी हैं। आगे चलकर गिरधर कविराय तथा बाबा दीनदयाल गिरि ने भी नीति और अध्यात्म विषयों को लेकर दूसरे प्रकार की कुण्डलिया में ही अपनी अपनी रचनाएँ कीं। केशव, गिरधर तथा दीनदयालजी की कुण्डलियाँ बहुत परिष्कृत हैं और उनके देखने से पता चलता है कि वह कुण्डलिया का आदि रूप नहीं है, अर्थात् उसके पहले भी पर्याप्त मात्रा में कुण्डलिया छन्द लिखा जा चुका था।

यदि तुलसीदासजी के आविर्भाव काल के पहले कुण्डलिया छन्द बन चुका होता तथा उसका ग्राह्य रूप निर्धारित हो चुका होता तो कोई कारण न था कि वे आठ प्रकार की कुण्डलिया लिखते। पर बात दूसरी ही थी, उन्हें तो एक नई पद्धति का निर्माण करना था। फिर वे उसके विषय में हर प्रकार की छान-बीन क्यों न करते। किसी कुण्डलिया में उसके आदि का वाक्यांश अन्त में ज्यों का त्यों रख दिया गया है तो कहीं आदि का एक शब्द अन्त में दुहरा दिया गया है; पुनः कहीं आदि की पंक्ति का एक शब्द अन्तिम पंक्ति में कहीं भी उद्धृत किया मिलता है। कहीं कहीं ऐसा भी नहीं किया गया है। ऐसा अनुमान होता है कि यह सब गोस्वामी जी ने इसी निर्णय तक पहुँचने के लिए किया कि कुण्डलिया छन्द के सर्वश्रेष्ठ और अधिक प्रियङ्कर रूप का पता लग जाय। उन्हें अपने कार्य में सफलता मिली, इसका स्पष्ट प्रमाण यही है कि बालकाण्ड का पूर्वार्ध समाप्त होते-होते उन्होंने कुण्डलिया का एक रूप (पहला प्रकार) ही चुन लिया और उसी में सारी कुण्डलिया रामायण लिख डाली।

रामचरितमानस में भी हमें ऐसे कई अंश मिलते हैं जिनके पढ़ने से ऐसा प्रतीत होता है कि तुलसीदास जी में कुण्डलिया छन्द लिखने का प्रवृत्ति उस समय भी विद्यमान थी जब वे रामचरितमानस का निर्माण कर रहे थे। यहाँ पर हम एक ऐसा ही उदाहरण देकर अपने कथन की पुष्टि करेंगे :—

चौपाई—"मुदित देवगन रामहिं देखी, नृप समाज दुहुँ हरष विसेषी।

छन्द—अति हरष राज समाजु, दुहुँ दिसि दुन्दुभी बाजहिं घनी।
बरषहिं सुमन सुर हरषि, कहि जय जयति जय रघुकुलमनी॥
एहि भाँति जानि बरात आवत, बाजने बहु बाजहीं।
रानी सुआसिनि बोलि परिछन हेतु मंगल साजहीं॥

दोहा—सजि आरती अनेक बिधि, मङ्गल सकल सँवारि।
चलीं मुदित परिछन करन, गजगामिनि वर नारि॥"

इस उदाहरण में चौपाई के अन्तिम चरण का 'हरष' शब्द छन्द के आदि चरण में दुहरा दिया गया है; और छन्द का अन्तिम शब्द 'साजहीं' दोहे के आदि में 'सजि' के रूप में दुहरा दिया गया है। गोस्वामीजी की यही प्रवृत्ति हमें कुण्डलिया-रामायण में भी स्पष्ट मिलती है, क्योंकि जब वे किसी कुण्डलिया के अन्तर्गत एक छन्द से दूसरे छन्द में उतरे हैं तो प्रथम छन्द का अन्तिम शब्द दूसरे छन्द के आदि में दुहरा दिया गया है। उपर्युक्त उदाहरण में से यदि चौपाई को निकालकर अन्तिम दोहा, छन्द के आदि में रख दें

तो कुण्डलिया की गति स्पष्ट लक्षित होती है; साथ ही साथ दोहे के आदि का शब्द छन्द के अन्त में भी मिलता है। विनयपत्रिका में भी छन्द १३५ और १३६ के अन्तर्गत छः छः पंक्तियों के १७ छन्द ऐसे हैं जिनका प्रवाह कुण्डलिया के ही समान है। प्रत्येक में एक चौपाई और एक हरिगीतिका छन्द का मेल हुआ है और चौपाई का अन्तिम शब्द हरिगीतिका के आदि में दुहराया गया है। पार्वतीमङ्गल और जानकीमङ्गल में तो आद्योपांत ऐसे ही छन्द मिलते हैं जो कुण्डलिया के अनुरूप हैं। इनमें सोहर और हरिगीतिका छन्दों का मेल है, और सोहर के अन्त का शब्द हरिगीतिका छन्द में पुनरावर्तित मिलता है। इन सब कारणों से यही लक्षित होता है कि गोस्वामी तुलसीदास जी में कुण्डलिया लिखने की प्रवृत्ति आरम्भ से ही रही

कुछ हो, हमारा आशय यहाँ पर इतना ही है कि गोस्वामीजी ने कुण्डलिया छन्द का निर्माण करके उसी में एक प्रबन्ध-काव्य की रचना की और विशेष बात यह है कि आज तक और किसी कवि ने कुण्डलिया छन्द में प्रबन्ध-काव्य लिखने का साहस नहीं किया।

कुछ छन्दों को मिलाकर अन्य छन्दों के निर्माण की प्रवृत्ति वैदिक काल के साहित्य में भी स्पष्ट रूप से मिलती है :—

त्रिष्टुभ्० अतिद्रव सारमेयौ श्वानौ

जगती० चतुरक्षौ शबलौ साधुना पथा।

अथापितॄन्सुविदत्राँ उपेहि

यमेन ये सधमादं मदन्ति ॥ ऋ० मं० १० सू० १४

उपर्युक्त मन्त्र में त्रिष्टुभ् और जगती इन दो वैदिक छन्दों का मेल किया गया है। आगे चलकर संस्कृत के द्वितीय उत्थान के समय में तो छन्दों को मिश्रित करने का यहाँ तक प्रभाव पड़ा कि छन्दःशास्त्रज्ञों ने इस प्रकार से बने हुए छन्दों का नवीन नामकरण भी कर दिया। जैसे—

नमो नमः कारणवामनाय
नारायणायामितविक्रमाय।
श्रीशार्ङ्गचक्रासिगदाधराय
नमोऽस्तु तस्मै पुरुषोत्तमाय ॥

इस श्लोक में प्रथम और चतुर्थ पंक्तियों में (ज त ज और दो गुरु) उपेंद्रवज्रा छन्द के नियमों का पालन किया गया है, परंतु द्वितीय और तृतीय पंक्तियों में (त त ज

और दो गुरु) इन्द्रवज्रा के लक्षण मिलते हैं। इन दोनों छन्दों को मिलाकर उपजाति छन्द का निर्माण हुआ है। संस्कृत हिन्दी की उपजीव्य भाषा है, अतः यही प्रवृत्ति हिन्दी के छन्दों में भी अपनाई गई है।

संयुक्त छन्दों में पहले रोला और उल्लाला छन्दों को मिलाकर छप्पय छन्द का निर्माण हिन्दी-काव्य में हो चुका था। छः पदों के छन्द में अधिक गुणों का आरोप करने के लिए कुण्डलिया छन्द की सृष्टि हुई। कुण्डलिया की उत्पत्ति कुण्डल शब्द से हुई है जिसका अर्थ है परिधि या घेरा, जिसका आदि और अन्त आवर्तित होकर मिला रहता है। यही बात कुण्डलिया छन्द में भी स्पष्ट देख पड़ती है। कान में पहने जानेवाले एक आभूषण विशेष को भी कुण्डल कहते हैं। रामचन्द्रजी मकराकृत कुण्डल धारण करते थे। ऐसे कुण्डलों में मगर का मुख और पूँछ दोनों मिले रहते हैं। हो सकता है कि गोस्वामीजी ने रामचन्द्रजी के कुण्डलों का ध्यान करके ही कुण्डलिया छन्द बनाया हो। पर यह अनुमान मात्र है। योगशास्त्र में षटचक्रों में से पहले चक्र मूलाधार के अन्तर्गत कुण्डलिनी का वर्णन मिलता है। इसका स्वरूप धुएँ की एक ऐसी रेखा के समान बताया गया है, जो बाईं ओर घूमकर परिधि बनाती हुई ऊपर की ओर उठती है। हो सकता है कि एक नया छन्द बनाते समय महाकवि ने कुण्डलिनी की कल्पना की हो अथवा उसका ध्यान ही आने से नवजात छन्द का नाम कुण्डलिया रख दिया हो। साथ ही एक ही प्रतिपाद्य विषय को अनेक प्रकार एवं अनेक शैलियों में बार-बार वर्णन करते-करते गोस्वामीजी के अन्तःपटल पर यदि स्वयं उनके भक्ति-भरित भावों ने ही कुण्डल का रूप धारण कर लिया हो और बाद में कुण्डलिया छन्द के रूप में फूटकर प्रवाहित हो चले हों तो कोई आश्चर्य नहीं। जो हो, यहाँ हमें इतना ही कहना है कि कवि जब अपनी पूर्वकथित बातों पर सिंहावलोकन करता चलता है तो उसके मनःपटल पर भावों का एक कुण्डल सा बन जाता है। इसी तरह कुण्डलिया के आदि का शब्द अन्त में दुहरा दिया जाता है। गोस्वामीजी ने दुहरा कुण्डल बाँधा है, अर्थात् द्वितीय पंक्ति के अन्त का शब्द तृतीय पंक्ति के आदि में और चतुर्थ पंक्ति के अन्त का शब्द पञ्चम के आदि में कहा गया है।

छन्दों का कोई अन्त नहीं है। नित्य नूतन छन्दों की सृष्टि होती आई है। आजकल के छायावादी कवि भी नये छन्दों का निर्माण कर रहे हैं। नित्य नवीन छन्दों का निर्माण भी साहित्य के कला-पक्ष की उन्नति करता है। गोस्वामीजी हिन्दी-साहित्य के कुशल कलाकार थे, यह बात किसी से छिपी नहीं है; फिर यदि उन्होंने कुण्डलिया जैसे नये छन्द का निर्माण किया तो उनके लिए यह कोई असाधारण बात न थी।

२—कुण्डलिया रामायण की प्रामाणिकता

किसी ग्रन्थ को प्रामाणिक ठहराने के लिए उसकी भाषा, शैली एवं व्यंजना-प्रणाली का विवेचन करना परमावश्यक है। इस विषय पर समुचित प्रकाश डालने के लिए ग्रन्थ के कथानक का भी एक विशेष स्थान है। कुण्डलिया रामायण के कथानक की तुलना रामचरितमानस, गीतावली, कवितावली, रामाज्ञाप्रश्न तथा जानकीमङ्गल से करने पर हम यह निश्चय-पूर्वक कह सकते हैं कि इस ग्रन्थ की रचना मानस के अधिक समकक्ष है। इस स्थल पर हम गोस्वामीजी की भाषा के विषय में थोड़ा विचार करके कुण्डलिया रामायण की शैली का विवेचन करेंगे और व्यञ्जना-प्रणाली के आधार पर यह सिद्ध करना चाहेंगे कि यह गोस्वामीजी का एक प्रामाणिक ग्रन्थ है।

गोस्वामीजी के प्रायः सभी ग्रन्थों में मिली-जुली भाषा का बड़ा मनोरम प्रयोग हुआ है। अवधी, बुँदेलखण्डी एवं व्रजभाषा इन सब को मिलाकर एक ऐसी व्यापक भाषा का स्रोत प्रवाहित हुआ है जिसमें सारा हिन्दू-समाज बड़े गौरव से सैकड़ों वर्षों से मज्जन करता आ रहा है और इसी व्यापकत्व के कारण आज हिन्दी भारतवर्ष की राष्ट्रभाषा बनने की क्षमता रखती है, जिसका अधिकांश श्रेय गोस्वामीजी को ही प्राप्त है। दासजी अपने काव्यनिर्णय में लिखते हैं —

तुलसी गंग दुऔ भये सुकविन के सरदार।
इनके काव्यन में मिली भाषा विविध प्रकार ।।

यह सब होते हुए भी हमें निःसंकोच भाव से यह बात स्वीकार करनी पड़ती है कि अपने प्रत्येक ग्रन्थ में गोस्वामीजी ने एक न एक भाषा की प्रधानता रक्खी है। रामचरितमानस में पश्चिमी अवधी, तथा रामललानहछू, बरवै रामायण, पार्वतीमङ्गल और जानकीमङ्गल में पूर्वी अवधी एवं गीतावली, विनयपत्रिका और कवितावली में व्रजभाषा की प्रधानता है। इसी प्रकार कुण्डलिया रामायण में, गोस्वामीजी के अन्य ग्रन्थों की भाँति, अवधी और बुँदेलखण्डी के कुछ क्रियारूप और कारक-चिह्नों का प्रयोग होते हुए भी प्रधानता व्रजभाषा की ही है।

हेमचन्द्र ने अपने व्याकरण में जिस अपभ्रंश का उल्लेख किया है उसमें ब्रजभाषा के अंकुर स्पष्ट लक्षित होते हैं। प्रबन्ध-चिन्तामणि और कुमारपाल-प्रतिबोध में भी पश्चिमी भाषा का प्रयोग मिलता है। सारांश यह कि आदिकाल के राजस्थानी कवियों की काव्य-भाषा का ढाँचा आधुनिक ब्रजभाषा से बहुत सम्बन्ध रखता है। चन्द कवि के बाद काव्य-भाषा से क्रमशः प्राकृत के रूप निकलते गये और उनके स्थान पर संस्कृत के शब्द काम देने लगे। संस्कृत के इन नवजात रूपों में ब्रजभाषा के व्याकरण का ही आधार लिया जाता था।

मीर खुसरो की खड़ी बोली की कविताओं में भी ब्रजभाषा के रूपों का पर्याप्त समावेश मिलता है; यथा :—

अति सुंदर जग चाहै जाको, मैं भी देख भुलानी वाको।
देख रूप भाया जो टोना, ऐ सखि साजन, ना सखि सोना ॥

कबीर आदि सन्त कवियों ने पँचरङ्गी भाषा लिखी जिसमें ब्रजभाषा के पर्याप्त उदाहरण मिलते हैं। कहाँ तक कहा जाय, जायसी आदि सूफ़ी कवियों ने यद्यपि टकसाली अवधी-भाषा का प्रयोग किया तो भी उनकी काव्यभाषा ब्रजभाषा से बिलकुल अछूती न बच सकी। मध्यकालीन कवियों ने तो मुख्यतया ब्रजभाषा का ही अवलम्बन लिया, यद्यपि उसमें विभिन्न प्रदेशों की भाषा का मेल भी होता रहा। बात यह है कि ब्रजभाषा का प्रचार ब्रजमण्डल से लेकर राजस्थान और गुजरात तक रहा, अतः समय समय पर अन्य भाषाओं के रूप भी इसमें मिलते रहे। इसका प्रचार सारे उत्तरापथ में था। इसी से ब्रजभाषा हिन्दी-काव्य की सामान्य भाषा के रूप में स्वीकार की गई।

गोस्वामीजी अवधी भाषा के विशेषज्ञ तो थे ही, ब्रजभाषा में भी वे भक्तप्रवर सूरदास जी के टक्कर के थे और बुँदेलखण्ड में रहने के कारण उनकी कविता में यत्र तत्र बुँदेलखण्डी शब्दों का भी मनोहर प्रयोग हुआ है; जैसे "उठन न पैयतु गात" (कुण्डलिया०, अयोध्या० ८१) बहुत से बुँदेलखण्डी शब्द ब्रजभाषा में ऐसे घुल मिल गये हैं कि अलग करना कठिन है जैसे उत्तम पुरुष में 'बाँचियै', 'पाइयै' आदि का प्रयोग 'भूप मरे हम बाँचियै' (कुं० अयोध्या० ८७), 'बयो पाइयै जगत में' इत्यादि। 'केवट भरत बुझाइयौ सुंदर बन गिरि गन मुदित' (कुंड० अयो० ११) और 'तुम सुत सपथ न खाँचियै' में 'बुझाइयौ' तथा 'खाँचियै' बुंदेलखण्डी के ही रूप हैं।

कुण्डलिया रामायण में "लायक", "गनी", "गरीबनिवाज" और "सहर" आदि फ़ारसी के शब्दों का प्रयोग भी मिलता है। संस्कृत भाषा पर तो तुलसीदासजी का पूर्ण

अधिकार ही था, कुछ क्रिया-रूपों को छोड़कर अधिकांश शब्द और विशेषकर कर्म तो संस्कृत रूपों के ही आश्रित हैं। इसका अर्थ यह नहीं है कि तत्सम रूपों की भरमार एवं देशज शब्दों का अभाव है। मानना यह पड़ेगा कि कवि को शब्दों का तद्भव रूप ही अधिक प्रिय रहा है।

कहीं कहीं वर्तमान काल के क्रियारूपों में गोस्वामीजी ने धातु का नङ्गा रूप रख दिया है; जैसे :—

"जान न कोउ याको मरम सिवहिं छाँड़ि को तानिये" (कुं० रा० ७१)।
"नैन तरेरे भाट कह" (कुं० रा०)
"धुजा दीप नव खंड" (कुं० रा०)

'कह तुलसिदास संकर-सुवन भजत भक्त भवभयदहन' (कुण्डलिया १)। भूतकाल के प्रयोग में ओकारांत और एकारांत क्रियारूप मिलते हैं जैसे 'मार्यो', 'कह्यो', 'छल्यो,' 'देख्यो', 'गयो', 'नयो', 'भयो', 'गे', 'भे' आदि। कवि-परम्परा के अनुसार गोस्वामीजी ने अपने समय से सैकड़ों वर्ष पुराने रूपों का प्रयोग भी किया है; जैसे पढ़ाइयौ, समुझाइयौ, बुलाइयौ, मारियौ, बिबाहियौ (हेमचन्द्र के व्याकरण तथा प्रबन्ध-चिन्तामणि आदि में 'औ' की जगह 'अउ' है जैसे 'बुझाइअउ')। उत्तम पुरुष एकवचन में 'हौं' मिलता है जैसे 'चढ़ाइहौं'। भविष्यत् के योग में बकारांत क्रियारूपों का भी प्रयोग हुआ है जैसे 'जाब', 'कहब' इत्यादि। ब्रजभाषा की प्रवृत्ति ओकारांत है और अधिकांश विशेषण और सर्वनाम भी ओकारान्त होते हैं; जैसे—ऐसो, वैसो, छोटो, बड़ो, खोटो, खरो, नीको, आपनो, तुम्हारो आदि। पूर्वकालिक क्रिया के प्रयोग में इकारांत क्रियारूप मिलते हैं—जैसे समुझाइ, गाइ, बुलाइ (=समझाकर, गाकर, बुलाकर)। आज्ञा के योग में अवधी में 'हु' आता है जैसे 'करहु', 'रचहु', परन्तु ब्रज में 'औ' आता है जैसे 'कहौ', 'रचौ', 'छियौ, 'राखौ' आदि। गोस्वामी जी ने दोनों रूपों का प्रयोग किया है। साधारण क्रियारूपों में प्रायः लिंगभेद भी मिलता है; जैसे पु० 'कहत', स्त्री० 'कहति'।

प्रथमा विभक्ति का 'ने' चिह्न नहीं मिलता है। कर्म कारक में 'को' 'कहुँ' 'हिँ' आदि चिह्न मिलते हैं। करण के प्रयोग में 'सो' या 'ते' चिह्न मिलते हैं। सम्बन्ध कारक में 'को', 'के' चिह्न मिलते हैं। अधिकरण के योग में अवध के स्थान पर अवधि मिलता है। हेतु के अर्थ में जाते, याते आदि पाये जाते हैं।

संज्ञा के बहुवचन रूपों में 'न' बढ़ा दिया गया है, जैसे (ए० व०) पति, (बहुवचन) 'पतिन', ए० व० 'सुकृती', ब० व० 'सुकृतन'। इस ग्रन्थ में 'रामहिं' 'आवहिं' 'जाहिं' 'करहिं'

'करहु' आदि जो रूप मिलते हैं उनमें जो अवधीपन दिखाई देता है वह ब्रज की पुरानी परम्परा का अनुसरण मात्र है।

काव्य की यह भाषा बहुत पुरानी है और सैकड़ों वर्षों से उत्तर पश्चिम से लेकर मध्यभारत तक काव्य की सामान्य भाषा मानी जाती है। प्राकृतों के समान देशभेद करने की आवश्यकता इसमें नहीं समझी गई। बहुत प्राचीन काल से ब्रजभाषा में कुछ ऐसे रूपान्तर मिल गये हैं जिनसे अवधी और खड़ी बोली का आभास मिलता है। व्यापक भाषा में कई प्रदेशों के रूप मिल जाते हैं।

गोस्वामीजी की भाषा बड़ी मुहावरेदार है यथा 'बिरंचि हमहीं रच्यौ सुकृत ढूँढ़ि दिसि चार', 'माड़व तरे निहारि लेहु जग जीवन लाहै,' "बात कहौं डरु डारिकै," "माँगहु नाव निहारि कै,' 'रुख जुगवत पल जाहिं' इत्यादि एक से एक अनूठी उक्तियाँ भरी पड़ी हैं। प्रांजल भाषा के निखरे हुए अनेक रूप इस ग्रन्थ में मिलते हैं। आद्योपांत टकसाली ब्रज-भाषा का जीता-जागता रूप दृष्टिगत होता है।

गोस्वामीजी की शैली के विषय में अधिक कहने की आवश्यकता नहीं है। उनका शब्द-भांडार अपरिमेय है और शब्द-चयन कितना सरस और मनोहर है यह बात किसी भी हिन्दी-भाषा-भाषी से छिपी नहीं है। वाक्यांशों की गढ़न उनकी अपनी ही है, जिसके आधार पर हम तुलसी को हिन्दी-साहित्य का अद्वितीय कलाकार कह सकते हैं। वाक्यों की लड़ियाँ कुंडलिया छन्द में ऐसी पिरोकर रख दी हैं कि कहीं से शिथिलता एवं अशक्तता का आभास भी नहीं मिलता। विशेष बात यह है कि हृदय के सच्चे भावों को व्यक्त करने के लिए उन्होंने शब्दों को अपने इच्छानुसार कहीं शुद्ध और कहीं अपभ्रंश रूप में रख दिया और इससे लालित्य का विकास ही हुआ है। बात यह है कि जैसे भावों की व्यंजना करने की आवश्यकता हुई, गोस्वामीजी ने वैसी ही भाषा का भी प्रयोग किया है—

चारों भाइयों की बालक्रीड़ा के वर्णन में लिखा है—

'गिरत परत उठि चलत हँसत पुनि रोवत रहत रिसाई'

राम-वन-गमन में गङ्गापार करते समय नौका माँगने पर निषाद राम से कहता है—

'सुनिए राजिवनैन रावरी पदरज खोटी'

जब राम ने धनुषभङ्ग किया तो सारा ब्रह्माण्ड कम्पायमान हो गया। कैलाश में वृषभ शिव-शिव पुकारने लगा। उस समय—

'सिव सिर सुरसरि धार उछलि आकास गयौ जल।'

रावण की सभा में जब दूत अङ्गद अपना चरण पृथ्वी पर जमाता है और सब राक्षस उसे उठा नहीं पाते, उस समय का वर्णन अच्छा है—

'मेरु हल्यो पग नहिं हल्यो अस्त हल्यो गिरि स्रृङ्ग।
उदय सैल कम्पित भयौ मन्दर हर गिरि भङ्ग ॥
मन्दर हर गिरि भङ्ग सप्त पाताल बिहाले।
सप्त सिन्धु उच्छलत कमठ दिग्गज दिसि चाले ॥'

सारांश यह कि भावों के अनुरूप ही भाषा मिलती है। गोस्वामीजी ने भावों को विकृत करने की अपेक्षा शब्दों का रूप बदलना ही ठीक समझा। यह प्रवृत्ति उनके सभी ग्रन्थों में लक्षित होती है। गोस्वामीजी की सी परिमार्जित शैली हमें हिन्दी के किसी अन्य कवि की कृतियों में नहीं मिलती। मानस और गीतावली आदि ग्रन्थों की शब्द-योजना और भावसाम्य ही नहीं, कहीं कहीं तो उक्तियाँ तक कुण्डलिया रामायण में मिलती हैं—

'तुलसी रघुपति प्रगट भे मास एक को दिन भयो' (कुं० रा०)
'मास एक कर दिवस भा मरम न जाना कोइ'। (मानस)

उपर्युक्त दोनों पंक्तियों में अन्तर केवल इतना ही है कि पहली पंक्ति में 'को' और 'भयो' ब्रजभाषा के कारक-चिह्न और क्रियारूप हैं पर दूसरी पंक्ति में इनके स्थान पर 'कर' और 'भा' अवधी के रूप हैं। कुशल कलाकार में यह विशेषता होती है कि वह एक ही बात को अनेक प्रकार से व्यक्त करके कुछ न कुछ अनोखापन या मस्तिष्क की नई झलक अवश्य दिखा देता है। सारांश यह कि गोस्वामीजी की विविध रचनाओं में शब्दसाम्य और भावसाम्य पर्याप्त रूप में मिलता है—

"भरी चौक गजमुक्त अगर कुंकुम मृगमद घन।
कुसुम सुगन्ध अबीर रहेउ भरि दिसा बिदिस तन ॥"

(कुं० रा०)

"मृगमद चन्दन कुंकुम कीचा। मची सकल बीथिनि बिचबीचा ॥
अगर धूम बहु जनु अँधियारी। उड़इ अबीर मनहु अरुनारी ॥"

(रामचरितमानस)

गोस्वामीजी की व्यंजना-प्रणाली हिन्दी-साहित्य में अपनी सानी नहीं रखती। थोड़े से चुने हुए शब्दों में गहन से गहन भाव हीरों की तरह स्पष्ट झलकने लगते हैं। किसी बात को जब जोर देकर कहना होता है तो प्रश्नवाचक वाक्यों की लड़ी सी पिरो देते हैं और ऐसी उक्तियों में प्रायः भावसाम्य एवं शब्दसाम्य भी मिलता है, चाहे वे विभिन्न ग्रन्थों और दूसरे दूसरे स्थलों की ही क्यों न हों—

"को न क्रोध निरद्द्यो काम-बस केहि नहिं कीन्हों ?
को न लोभ दृढ़ फन्द बाँधि त्रासन करि दीन्हों ?
कौन हृदय नहिं लाग कठिन अति नारि-नयन-सर ?
लोचन जुत नहिं अन्ध भयौ श्री पाय कौन नर ?
सुर नाग लोक महिमण्डलहु को जु मोह कीन्हों जय न ?
कह तुलसिदास सो ऊबरै जेहि राख राम राजिवनयन ?" —कवितावली

"श्रीमद वक्र न कीन्ह केहि प्रभुता बधिर न काहि ।
मृगनैनी के नैन-सर को अस लाग न जाहि ॥" (रा० च० मा०)

का न करहि यह कर्मबल केहि जग जम नहिं लीन ?
पवन मझायौ काहि नहिं को दुख दुखी न दीन ?
को दुख दुखी न दीन मोह मद केहि नहिं बाँध्यो ?
ब्रह्मा जुर नहिं जर्‌यो काम-सर काहि न साध्यो ?
काहि न साध्यो क्रोध दल केहि न छल्यो तरुनी तरल ?
चित चिंता व्यालिनि जथा का न करहि यह कर्म-बल ?॥" (कुं० रा०)

कहीं कहीं पर गोस्वामीजी ने इन प्रश्नों का उत्तर भी एक ही बात से दे दिया है और वह है श्रीरामचन्द्रजी की कृपा। कवितावली के उपर्युक्त उदाहरण में यही बात कही गई है। कहीं कहीं पर यह भी कहा गया है कि जो ऐसा है उसे संसार में कोई जीत नहीं सकता, क्योंकि वह रामस्वरूप है। जैसे—

छिद्यो न कठिन कटाच्छ सर, करेउ न कठिन सनेहु ।
तुलसी तिनकी देह को जगत कवच करि लेहु ॥ —दोहावली ।

अथवा— कंचन को मृतिका कर मानत, कामिनि काष्ठ सिला पहिचानत ।
तुलसी भूलि गयो रस एहा, ते जन प्रगट राम की देहा ।
—वैराग्यसंदीपनी ।

गोस्वामीजी ने स्त्रियों की निन्दा भी की है, किंतु ऐसे वर्णन उन्हीं स्थलों में मिलते हैं जहाँ किसी स्त्री की दुष्प्रवृत्तियों का प्रसंग है। मंथरा के समझाने पर कैकेयी जब कोप-भवन में गई है उस स्थल पर कवि की उक्ति "केहि न छल्यो तरुनी तरल" बड़ी सटीक बैठी है। विलासिनी के रूप में स्त्री अनर्थ की जड़ कही गई है; क्योंकि वह कामोद्दीपन की सामग्री है। कवि का कहना है कि कामदेव से प्रभावित होकर—

"केहि अनर्थ नहिं कीन, चंद सुरपति गति देखौ ।
नृप दिलीप मुनि संभु जजातिहिं चित अवरेखौ ॥ (कुं० रा०)

काम का प्रताप दिखाने के लिए उदाहरण पर उदाहरण बैठते चले जाते हैं। जब कैकेयी ने दशरथजी से दो वरदान देने का वचन ले लिया तो वह मुसकराकर उठ बैठी। उस स्थल पर कवि त्रिया-चरित्र के रहस्य की ओर संकेत करते हुए कहता है—"नारि-चरित के भाय बिधिहु नहिं जाननिहारे"। बात यह है कि जो कैकेयी राजा को रिझाने के हेतु कोप-भवन में गई थी, वही आगे चलकर इतना भयंकर रूप धारण कर लेती है कि दशरथ के यह प्रार्थना करने पर कि सोच-समझकर माँगो, इस प्रकार कहते हुए बिलकुल संकोच नहीं करती कि—

"भगि पताल अवनी घटै रवि ससि रेंगहिं उलटि गति।
बिधि हरि हर आपुहि कहैं ये न बचन टरिहैं नृपति॥"

अथवा—"अनल चंद बरषहि कबहुँ सीतल सूरज होइ।"

सारी सृष्टि की रचना चाहे उलट जाय, पर कैकेयी के वरदान नहीं बदल सकते। उसे अपने स्वाथ के सामने राजा की मृत्यु की भी परवा नहीं है। राजा दशरथ स्पष्ट कहते हैं कि "मीन जियै बिनु बारि राम बिनु जियौं न जामिनि।" प्रकृति की असंभव बातें चाहे संभव हो जायँ पर न तो कैकेयी मान सकता है और न दशरथ ही जीवित रह सकते हैं। ऐसे स्थल पर स्त्रियों की निंदा करने से कवि का अभिप्राय कैकेयी जैसी स्त्रियों की ही निंदा करना है। इसी प्रकार ताड़का या सूर्पनखा के प्रसंग में स्त्रियों की बुराई करके कवि दुष्टा स्त्रियों की दुष्प्रवृत्तियों की ओर संकेत करता है। ऐसे वर्णनों को पढ़ते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि गोस्वामीजी ने सीता, सती, कौशल्या और अनसूया जैसी धर्मपरायणा स्त्रियों की निंदा कहीं नहीं की।

गोस्वामीजी को जिन स्थलों पर अपनी अशक्तता प्रकट करनी पड़ी है, वहाँ उन्होंने अपने लिए 'सठ' और 'कुमति' आदि शब्दों का प्रयोग किया है।

"अगम सनेह भरत रघुबर को, जहँ न जाइ मन बिधि हरि हर को।
सो मैं कुमति कहौं केहि भाँती, बाजु सुराग कि गाँडर ताँता"॥ (रा० च० मा०)

"करत गगन को गेंडुआ सो सठ तुलसीदास।" (दोहावली)

"तुलसिदास के कौन मति राम विवाह बखानई"।
(कुंडलिया रामायण, बा० का०)

"मसक अंत किमि पावई गगन उड़ै करि नेम को।
तुलसिदास सठ क्यों कहै राम भरत के प्रेम को"॥ (कुं० रा०, अ० का०)

विशेष बात यह है कि जहाँ भी 'सठ' शब्द का प्रयोग कवि ने अपने लिए किया है वहाँ उसने पूरा नाम 'तुलसीदास' दिया है, आधा नाम तुलसी नहीं दिया।

३—प्रचार में बाधाएँ

कुण्डलिया-रामायण का अधिक प्रचार इसलिए न हो सका कि इस ग्रन्थ में रामचरितमानस के समान सर्वाङ्गसुन्दर वर्णन नहीं हो सका है। कथावस्तु के कुछ स्थलों में कवि ने संकोच वृत्ति दिखाई है। यद्यपि इसमें रामचरितमानस की प्राय: सभी घटनाएँ आ गई हैं परन्तु घटना-संघटन की प्रणाली में कहीं कहीं विभिन्नता हो गई है। कथा के रूप में कहने के उपयुक्त न होने के कारण कथा-वाचकों, श्रोताओं एवं पाठकों ने उस समय इस ग्रन्थ की उपेक्षा की। गायकों के लिए गीतावली का निर्माण हो ही चुका था, फिर कोई कारण न था कि वे लोग सरल और प्रिय छन्दों को देखकर भी किसी ऐसी पद्धति को अपनाते जो उनके लिए बिलकुल नई थी। किसी नई बात को समाज कठिनता से स्वीकार करता है। जिस छन्द से कोई पाठक परिचित ही न हो, उसे पढ़ते समय हृदय में हिचकिचाहट उत्पन्न होना स्वाभाविक बात है, क्योंकि किसी छन्द का प्रवाह और गति जाने बिना उसका पढ़ना अच्छा नहीं लगता और विशेष रूप से जब एक ही बात दो या तीन बार कही गई हो। कुछ लोगों ने नवजात कुण्डलिया छन्द में पुनरुक्ति दोष माना हो, यह भी सम्भव है। इन्हीं कारणों से लिपिकारों ने भी इस ग्रन्थ की ओर विशेष ध्यान न दिया। इस असाधारण उपेक्षा का फल यह हुआ कि आज सम्पादन की सुविधा के लिए हमें हिन्दी की सुव्यवस्थित संस्थाओं में भी इस ग्रन्थ की कोई दूसरी प्रति न मिल सकी। पुस्तक प्रकाशित होने से दो महीने पहले एक प्रति प्राप्त हुई थी पर उसका पाठ इतना अशुद्ध और भ्रष्ट है कि उससे कोई लाभ नहीं उठाया जा सकता।

हिंदी-साहित्य के इतिहास पर सर्वप्रथम लेखनी उठानेवाले ठाकुर शिवसिंह सरोजकार ने अपने ग्रन्थ में लिखा है कि गोस्वामीजी ने "प्रथम ४९ काण्ड बनाये इस तफ्सील से (१) चौपाई रामायण ७ काण्ड; (२) कवितावली ७ काण्ड; (३) गीतावली ७ काण्ड; (४) छप्पै रामायण ७ काण्ड; (५) बरवै रामायण ७ काण्ड; (६) दोहावली ७ काण्ड; (७) कुण्डलिया रामायण ७ काण्ड।" शिवसिंह सेंगर ने उपर्युक्त छ: ग्रन्थों के छन्द अपने ग्रन्थ में उद्धृत किए हैं परन्तु कुण्डलिया रामायण का कोई उद्धरण उन्हें प्राप्त न हो सका था। आगे चलकर मिश्रबन्धुओं ने अपने साहित्य के इतिहास में उपर्युक्त सात रामायणों का ब्योरा दिया है। पर एक स्थल पर रामललानहछू को अप्रामाणिक मानकर उसी के आधार पर कुण्डलिया रामायण को भी अप्रामाणिक कहना चाहा है। पर इसके

लिए न तो उनके पास कोई दलील है और न उन्होंने इस ग्रन्थ की एक भी कुंडलिया अपने इतिहास म उद्धृत ही की है। हमारी समझ में यह आता है कि या तो मिश्रबन्धुओं को यह ग्रन्थ देखने को नहीं मिला, और यदि मिला भी होगा तो कोई अशुद्ध अंश कभी पढ़ लिया होगा। क्योंकि रामललानहछू के विषय में अपनी राय प्रकट करते समय कुण्डलिया रामायण पर बिना किसी आधार के ही आघात कर देना सङ्गत नहीं प्रतीत होता। रामललानहछू से कुण्डलिया रामायण में आकाश-पाताल का अन्तर है। कथा का निर्वाह, घटना-विधान, भाव, भाषा एवं कविता किसी बात में भी कुण्डलिया रामायण उपर्युक्त ग्रन्थ से नहीं मिलती। पं० रामचन्द्रजी शुक्ल तथा बा० श्यामसुन्दरदास ने कुण्डलिया रामायण को उन ग्रन्थों में रक्खा है जो या तो अप्रामाणिक कहे गये हैं अथवा जो साहित्यक्षेत्र में उपलब्ध नहीं हैं। मैंने इन दोनों महानुभावों के दर्शन किये और वार्तालाप करने पर मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि इन आचार्यों की दृष्टि से भी यह एक अप्राप्य ग्रन्थ है जिसे पूरा देखे बिना उसकी प्रामाणिकता तथा अप्रामाणिकता के विषय में ठीक तरह से कुछ नहीं कहा जा सकता। शुक्लजी ने इस ग्रन्थ के कुछ अंश पढ़कर देखे। उनकी धारणा हमें इस ग्रन्थ की प्रामाणिकता की ओर प्रतीत होती है। पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदी की दृढ़ धारणा थी कि यह रचना गोस्वामी तुलसीदासजी की ही है।

आज पौन शताब्दी बाद एक हस्तलिखित प्रति का पुनरुज्जीवन हो रहा है या यों कहें कि लगभग तीन सौ वर्ष बाद साहित्यक्षेत्र के अद्वितीय महारथी गोस्वामीजी के एक अमूल्य ग्रंथ-रत्न का प्रकाशन हो रहा है; अतः सहृदय समालोचकों से प्रार्थना है कि अपनी लेखनी सँभालकर उठावें, और नीर-क्षीर-विवेचन शक्ति द्वारा इस ग्रन्थ के विषय में अपने-अपने विचार प्रकट करें।

अधिक प्रचार न हो सकने के कारण कुंडलिया रामायण में क्षेपकों का अधिक समावेश न हो सका; किन्तु यह भी नहीं कहा जा सकता कि इस ग्रन्थ में प्रक्षिप्त अंशों का पूर्णतः अभाव है। बात यह है कि इने-गिने भक्तों को छोड़कर साधारण वर्ग को तो इस ग्रन्थ का पता ही न था, और १९ वीं शताब्दी के विद्वानों ने इसलिए उपेक्षा की कि अब तक उनके सामने यह ग्रन्थ अपने पूर्ण विशुद्ध रूप में रक्खा ही नहीं गया था। ऐसी विषम परिस्थिति में भक्तों ने कुछ क्षेपक मिला भी दिये हों तो उनकी ओर निर्देश करना आगे आनेवाले आलोचकों का काम है। हमारी दृष्टि में तो यह एक पूर्ण महाकाव्य है, जो अपने विशुद्ध रूप में हिन्दी-साहित्य की श्रीवृद्धि करने का अधिकारी है।

सच्चा आलोचक बनना किसी न्यायाधीश की पदवी से कम महत्त्व नहीं रखता, क्योंकि दोनों को बुद्धिमान् और निष्पक्ष बनना पड़ता है। यद्यपि हमारे यहाँ ऐसे आलोचकों की

कमी नहीं है, जो पृथ्वीराज रासो को पूर्णतः जाली ग्रन्थ सिद्ध करना चाहते हैं और महाभारत को रामायण से पहले की रचना कहने में ही अपनी विद्वत्ता एवं सत्यपरायणता को सफल समझते हैं और जो भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी के अलौकिक चरित्र पर शंका करते हैं तथा उसे अनेक कृष्ण नामधारी राजाओं की जीवनियों का संग्रह मात्र मानकर अपनी गुणग्राहकता का दिवाला निकाल देते हैं; फिर भी हमें कुछ ऐसे मर्मज्ञ विद्वानों, साहित्य के विशेषज्ञों और विवेकी समालोचकों का भरोसा है जो अपनी तथ्यातथ्य-निरूपिणी शक्ति के द्वारा दूध को दूध और पानी को पानी समझने, कहने और सिद्ध करने की क्षमता रखते हैं। जिनकी लेखनी में बल है उनका लोहा सारा संसार मानता है।

४—कथा-भाग

बालकाण्ड

कुंडलिया-रामायण में राम-कथा का क्रम इस प्रकार है—

मंगलमूल गणेशजी तथा दीन-दयालु शंकर और पार्वतीजी की वन्दना के उपरान्त गोस्वामीजी कथा आरम्भ करते हैं। राजा दशरथ ने पुत्रेष्टि यज्ञ किया और तीनों रानियों को 'हव्य' बाँट दिया। यथासमय शुभ दिन, शुभ योग तथा नक्षत्र में कौशल्या के गर्भ से राम का जन्म हुआ। पश्चात् एक पुत्र कैकेयी से तथा दो पुत्र सुमित्रा से उत्पन्न हुए। राजा दशरथ ने अत्यन्त प्रसन्न होकर याचकों को भर-पूर दान दिया। समस्त नगर-निवासी प्रमुदित हो उठे। घर-घर बधाइयाँ बजने लगीं और देवतागण जयजयकार करने लगे। गुरु वशिष्ठ ने नाम-करण संस्कार किया। माताएँ बड़े दुलार से अपने पुत्रों की सुन्दर छवि को देख-देखकर हर्ष से फूली न समाती थीं।

एक दिन शंकरजी भस्म रमाकर योगी के वेष में रामचन्द्रजी के दर्शन करने पहुँचे। कौशल्या ने योगी से अपने पुत्र के गुण पूँछे। शंकरजी मन ही मन प्रसन्न हो कहने लगे कि हे माता! तुम्हारा पुत्र बड़ा ही भाग्यशाली है। इसके दर्शन से हृदय के दुःख मिट जायँगे। कुछ दिन बाद इसे एक मुनि के साथ कर देना, तब यह शिवजी के धनुष को तोड़ेगा और इसका विवाह हो जायगा। यह ब्राह्मणों, सन्तों तथा देवताओं का हितकारी, अद्भुत कर्म करनेवाला होगा और सदा माता-पिता की आज्ञा मानेगा। कैकेयी के पुत्र के प्रति बोले कि यह मन, कर्म, वचन से राम का भक्त होगा और 'तिरहुति' में इसका भी विवाह होगा। फिर सुमित्रा से कहा कि तुम्हारे पुत्र सुन्दर लक्षणों से युक्त, अत्यन्त वीर और अपने भाइयों पर प्रीति रखनेवाले हैं; इनका भी विवाह जनकपुरी में ही होगा।

सब रानियाँ अत्यन्त प्रसन्न हुईं और मुक्ता-थाल देकर आशीर्वाद माँगने लगीं। योगी, यह कहकर कि तुम्हारे पुत्रों को कभी कोई दुख या रोग न होगा, चला गया।

उपयुक्त समय पर गुरुजी ने चौरकर्म, कर्णवेध, उपनयन आदि संस्कार कराये। उन्होंने उन सबको धर्म, नीति, वेद-पुराण आदि की शिक्षा भी दी। एक दिन महर्षि विश्वामित्र राजा के दरबार में आये। राजा ने बड़े आदर से उन्हें शुभासन देकर आने का

कारण पूछा। विश्वामित्र ने कहा कि राजन्! मेरे आश्रम में राक्षस उत्पात करते हैं अतः राम-लक्ष्मण को मेरे साथ भेज दो तो मेरे सब कष्ट दूर हो जायँ। यह सुनकर राजा सहम गये। उन्होंने कहा कि आप मेरा शरीर, धन इत्यादि माँगें तो मैं सहर्ष दूँगा; किन्तु राम-लक्ष्मण के बिना मैं नहीं रह सकता। पश्चात् वशिष्ठजी के समझाने पर राजा ने राम-लक्ष्मण को विश्वामित्र के साथ कर दिया। ऋषि ने दोनों भाइयों को अस्त्र-शस्त्र देकर वेद-मंत्र सिखलाये जिससे वे शत्रुओं का संहार कर सकें। राम ने बीच में ही ताड़का का वध किया। जब मुनि यज्ञ करने लगे तो दोनों भाई उनकी रक्षा में प्रवृत्त होकर उनकी आज्ञा का पालन करने में तत्पर रहे। सुबाहु और मारीच वहाँ आये। अग्निबाण संधान कर राम ने सुबाहु को तो वहीं समाप्त कर दिया और मारीच को बिना फल का बाण मारकर समुद्र के पार पहुँचा दिया।

यज्ञ के निर्विघ्न समाप्त हो जाने पर ऋषि के साथ राम-लक्ष्मण जनकपुरी में धनुषयज्ञ देखने को चल दिये। मार्ग में पाषाणरूप अहल्या को देखकर राम ने ऋषि से कारण पूछा। विश्वामित्र ने उन्हें सब हाल बताया और उस पर कृपा करने को कहा। भगवान् ने उसे अपने चरण-स्पर्श से पुनर्जीवित कर दिया। वह स्तुति करके चली गई। इस प्रकार अनेक कथाएँ सुनते हुए राम-लक्ष्मण जनकपुरी में पहुँच गये। जनकपुर के उपवन, सुन्दर महल तथा हाट-बाट आदि देखते हुए ऋषि सहित दोनों भाई यज्ञस्थल में आये। उनका आगमन सुन जनकजी ने आकर स्वागत किया। मुनि को प्रणाम कर जनकजी ने बड़े आश्चर्य से दोनों भाइयों का परिचय पूछा कि क्या अलख, अगोचर भगवान् स्वयं प्रकट हो गये हैं? इनका सुन्दर रूप देखकर मेरा मन इन्हीं में बस गया है। विश्वामित्रजी ने कहा कि हे राजन्! आपको सब विदित है। ये राजा दशरथ के कुमार राम-लक्ष्मण हैं। यज्ञ-रक्षा के लिए मैं इन्हें ले आया था, फिर आपके नगर में चला आया। जनकजी अत्यन्त प्रसन्न होकर उन्हें अपने यहाँ ले गये और बड़े प्रेम से उनकी अभ्यर्थना की। राम-लक्ष्मण की अलौकिक छवि को देखकर नगर के समस्त स्त्री-पुरुष उनकी प्रशंसा करने लगे।

प्रातःकाल मुनि से आज्ञा लेकर राम-लक्ष्मण उपवन में पुष्प लेने गये। वहाँ उन्होंने गिरिजा-पूजन के हेतु आई हुई जानकी के दर्शन किये। सीताजी भी रामचन्द्रजी को देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुईं। उन्होंने गिरिजा की पूजा करके अपने मनोरथ के सफल होने की याचना की और घर चली गईं। दोनों भाई भी गुरु के पास चले आये और ऋषि से सारा हाल कह दिया।

पश्चात् सतानन्दजी उन्हें रंगभूमि में ले आये। वहाँ जनक ने आदर-सहित उन्हें आसन दिया। रामजी के स्वरूप को देखकर समस्त राजाओं के मुख की कान्ति

क्षीण हो गई। जिसके हृदय में जैसी भावना थी, उसी रूप में वह भगवान् को देख रहा था। जनक ने सीताजी को रंगभूमि में बुलवा लिया। राम-सीता के रूप को देखकर मिथिलापुर के निवासी विधाता से यही वर माँगते थे कि रामचन्द्रजी का विवाह सीताजी से हो जाय। फिर दस सहस्र भाटों ने आकर समस्त राजाओं को विदेहराज का प्रण सुनाया कि जो इस शिवजी के कठोर धनुष को तोड़ देगा, उसी के साथ सीताजी का विवाह कर दिया जायगा। अपनी घोषणा में भाटों ने धनुष तोड़ने के योग्य श्रेष्ठ राजाओं के लक्षणों का विशद वर्णन किया और कहा कि जिसमें अलौकिक शक्ति होगी और जो अद्भुत पराक्रम-युक्त होगा, वही धनुष को तोड़ सकेगा।

भाटों के वचन सुनकर अभिमानी राजा कमर कस-कसकर उठे और धनुष तोड़ने का प्रयत्न करने लगे। एक के बाद एक अनेक राजाओं ने धनुष को उठाने की चेष्टा की, परन्तु धनुष हिला तक नहीं। जब कोई धनुष को तिल भर भी नहीं हटा सका तो राजा जनक क्रोध-युक्त वचन बोले कि सभी राजा, देवता और राक्षस आदि धनुष को तोड़ने की अभिलाषा से आये, किन्तु किसी से धनुष उठा तक नहीं। इससे मुझे विश्वास हो गया कि पृथ्वी वीर-विहीन हो गई है। अब आप सब अपने-अपने घर को जायँ। विधाता ने जानकी के लिए वर ही नहीं रचा। जनकजी के ऐसे वचनों को सुनकर लक्ष्मणजी अत्यन्त क्रुद्ध होकर प्रभु से हाथ जोड़कर कहने लगे कि इस जीर्ण धनुष के तोड़ने में क्या पुरुषार्थ है? हे भगवन्! यदि आप आज्ञा दें तो चौदहों भुवनों को लेकर समुद्र में डुबो दूँ। लक्ष्मण के इन वचनों को सुनकर जनक सकुचा गये, राजा लोग मन में सहम गये और दिग्गज काँपने लगे। तब कौशिक मुनि ने राम को धनुष तोड़ने तथा राजा जनक का दुःख दूर करने की आज्ञा दी।

रघुवंशमणि रामचन्द्रजी ऋषि को प्रणाम कर सिंह की तरह धनुष तोड़ने चल दिये। उन्होंने सबके देखते-देखते बायें हाथ से धनुष को चढ़ा दिया। समस्त ब्रह्मांड में घोर शब्द भरकर धनुष खंड-खंड हो गया। धनुष टूटने का शब्द सुनकर योगियों का ध्यान उचट गया, शिवजी का वृषभ 'शिव-शिव' पुकारने लगा, दिग्गज और दिक्पाल सब काँप उठे, शिव के सिर से गंगाजी का जल उछलकर आकाश की ओर चला गया; स्वयं शिवजी आश्चर्य में पड़ गये कि क्या हुआ। इधर देवता भगवान् के ऊपर सुमन-वृष्टि करने लगे। सीताजी ने रामजी को जयमाला पहनाई। समस्त नगर मंगल-गान से गूँज उठा। दुष्ट राजाओं के मन निराश हो गये तथा सज्जन-गण अत्यन्त प्रसन्न हुए।

धनुर्भंग सुनकर परशुरामजी फरसा धारण किये और अंग में भस्म रमाये, सभा में आ उपस्थित हुए। सब राजाओं ने अपना-अपना काल समझ उन्हें प्रणाम किया। परशुराम

के पूछने पर कि धनुष किसने तोड़ा है, लक्ष्मणजी ने कहा कि प्रबल प्रतापी रामचन्द्रजी ने उसे तोड़ डाला है। परशुरामजी ने क्रोधित होकर कहा कि मेरे गुरु का धनुष जिसने तोड़ा है, तेरे सहित मैं उसका बध करूँगा। तू जानता नहीं है, मैंने इक्कीस बार इस पृथ्वी को क्षत्रियों से विहीन किया है ? लक्ष्मण ने कहा कि अभी तक तुम्हें कोई वीर क्षत्रिय नहीं मिला। आप ब्राह्मण हैं, नहीं तो मैं क्षत्रियों का बदला अभी निकाल लेता। यह सुनकर जब भृगुनाथ और कुपित हो उठे तो रामचन्द्रजी ने उनसे क्षमा माँगी और कहा कि धनुष मुझसे टूट गया है, आप बालक पर क्रोध न करें। किन्तु इससे तो परशुरामजी और बिगड़ उठे और कहने लगे कि धनुष तोड़ते समय डर नहीं लगा, अब मीठे वचन बनाकर बचना चाहते हो; मैं अनुज सहित तुम्हारा वध करूँगा। इस पर लक्ष्मणजी ने कहा कि तुम अपनी माता का वध कर चुके हो इसलिए 'मनबढ़े' (प्रोत्साहित) हो रहे हो, किन्तु ब्राह्मण होने के कारण कौन तुम्हारा वध करके अपने ऊपर पाप लादे ? लक्ष्मण के वचन सुनकर परशुरामजी ने धनुष उठा लिया। इस पर रामचन्द्रजी ने लक्ष्मण को डाँट दिया। उन्होंने परशुरामजी की प्रशंसा की और लक्ष्मण को उपदेश दिया कि ब्राह्मणों पर श्रद्धा रखना तथा उनका समादर करना क्षत्रियों का परम धर्म है। उन्होंने ब्राह्मणों की महत्ता का वर्णन किया और उनकी चरण-रज को श्रेष्ठ बताया। राम की शिक्षा को ऋषि तथा लक्ष्मण दोनों ने बड़े ध्यान से सुना। परशुरामजी के ज्ञानचक्षु खुल गये और उन्होंने भगवान् को पहचान लिया। पश्चात् उनकी स्तुति करके तथा उन्हें आशीर्वाद देकर परशुरामजी चले गये। सारे नगर में फिर बधाइयाँ बजने लगीं।

इसके अनंतर विश्वामित्र के कहने पर राजा जनक ने सतानन्द को लग्नपत्रिका के साथ राजा दशरथ को बुलाने के लिए अयोध्या भेजा। ऋषि ने अयोध्या पहुँचकर राजा को पत्रिका दी। राम के विवाह का शुभ समाचार पाकर घोड़े, हाथी, रथ आदि सजने लगे। स्त्रियों ने मंगलगान गाये और गुरु की आज्ञा लेकर राजा ने बरात के सहित मिथिलापुर को प्रस्थान किया। राजा जनक ने उनको बड़े आदर-पूर्वक एक सुन्दर स्थान में ठहराया। राम-लक्ष्मण भी खबर पाकर विश्वामित्र सहित वहाँ पहुँचे और सबको प्रणाम किया। सब लोग भगवान् को देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए।

भरत और शत्रुघ्न का हाल सुनकर नगर की स्त्रियाँ आपस में कहती थीं कि हे सखि! सुना है राम-लक्ष्मण की तरह राजा दशरथ के साथ उनके दो पुत्र और हैं। यदि राम और सीता के विवाह के साथ ही साथ इन तीनों भाइयों का विवाह जनक की अन्य तीन पुत्रियों से हो जाय तो बहुत ही शुभ-संयोग रहे। इस प्रकार राम के विवाह का उत्साह

सभी को था। यहाँ तक कि देवता भी अपनी-अपनी पत्नियों के साथ राम-विवाह का समारोह देखने जनकपुर आये थे।

तब बरात के सहित दशरथजी मंदिर में बुलाये गये। वहाँ उनके लिए राजा जनक ने पाँवड़े डाले तथा अन्य विधिवत् कर्म कर दोनों समधी इन्द्र एवं ब्रह्मा के समान सुशोभित हुए। मंडप के मध्य में रामचन्द्रजी मौर धारण किये हुए सूर्य के समान दीप्तिमान् हो रहे थे। अत्रि, अगस्त्य, गर्ग, कश्यप, विश्वामित्र, वशिष्ठ, सतानन्द आदि समस्त ऋषि वेद-मंत्रों का उच्चारण करते थे। शिव, ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र आदि समस्त देवता ब्राह्मण-वेश में राम की छबि का दर्शन कर रहे थे। नवीन भूषणों से आभूषित सीताजी राम के पास बैठाई गईं। शाखोच्चार करके जनकजी ने उनके पाँव पूजकर कन्यादान दिया। सब देवता जनक के भाग्य की सराहना करने लगे, जिन्हें भगवान् राम के चरण पूजने का सौभाग्य प्राप्त हो सका। पश्चात् कुल के नियमानुसार साँवले राम तथा गौरवर्णा सीताजी की भाँवरें पड़ीं। मुनि के कहने से जनकजी ने अपनी तीनों कन्याओं का विवाह भी भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न से कर दिया। इस प्रकार चारों भाइयों का शुभ विवाह सम्पन्न हुआ। राजा दशरथ ने याचकों को दिल खोलकर दान दिया।

सब लोगों के 'जनवासे' चले जाने पर स्त्रियाँ वरों के सहित वधुओं को भवन में लिवा ले गईं। वहाँ परम्परागत उपचार किये गये। रमा, उमा आदि देवियाँ कौशल्या, कैकेयी और सुमित्रा का नाम ले लेकर मङ्गल-गान करने लगीं। रमा ने व्यंग्य-पूर्वक हँसकर सीताजी को आदेश दिया कि रामचन्द्रजी के चरण कभी न छूना, इनमें अनोखी शक्ति है। फिर राम से कहा कि तुमने धनुष तो एक तोड़ा और विवाह चार स्त्रियों का कर लिया, तुम बड़े चतुर हो। हमारी सीताजी तो अत्यन्त सीधी हैं, देखना इनका ऋषि की पत्नी का सा हाल न करना। इस प्रकार हास-विलास एवं विनोद के साथ समस्त 'नेग जोग' कराकर रामचन्द्रजी पालकी पर बैठाकर जनवासे में पहुँचा दिये गये। दशरथजी ने घोड़े, हाथी आदि देकर पुनः याचकों को संतुष्ट किया।

पश्चात् षट्रस व्यंजन तैयार हो जाने पर राजा जनक स्वयं दशरथ को बुला लाये। स्त्रियों के मङ्गल-गान से कर्ण-कुहरों को तृप्त करते हुए सभी ने सुरुचिपूर्ण सुन्दर भोजन किये। इस प्रकार जब तीन महीने व्यतीत हो गये तो राजा जनक ने बिदा की सामग्री सजाई। मुक्ता-मणियों से भरे हुए अनेक रथ, मणियुक्त झालरों से सुसज्जित पचास सहस्र हाथी, दस लाख सुन्दर नवीन घोड़े, भोजन और पकवानों से लदे हुए दस लाख बैल, अनेक देशों से लाई गई दूध की खान वाली सत्तानवे लाख महिषी, कामधेनु के सदृश एक सौ चार लाख गउएँ, सीताजी का अलंकृत दासियों से युक्त बहत्तर लाख पाल-

कियाँ, तोता-मैना आदि पक्षियों से विभूषित सवा लाख सुवर्ण के पिंजड़े तथा अनेक ऊँट, बकरी, श्वान आदि जो सीताजी को अति प्रिय थे, राजा जनक ने दहेज में दिये।

रानियों ने पुत्रियों को पातिव्रत धर्म की शिक्षा दी और उनके पैर छूकर, उन्हें बिदा किया। राजा जनक ने सीता को हृदय से लगा लिया। उनके नेत्रों से प्रेम के आँसू बह निकले। मन्त्री ने उन्हें धीरज बँधाया। सीताजी भी प्रेम-विह्वल होकर कभी पिता के गले और कभी माता के गले लगकर रोती रहीं। इसी बीच रामचन्द्रजी राजा जनक के पास बिदा माँगने आये। रानियों ने उन्हें आसन पर बैठाया और उनसे प्रार्थना की कि हे राम! तुम हम पर कृपा रखना, हमारे हृदय में सदैव वास करना तथा पुत्री सीता को अपनी दासी बना लेना। रामचन्द्रजी ने सबको प्रणाम किया और भाइयों सहित बिदा लेकर चल दिये। सब पुत्रियों को पालकियों पर चढ़ाकर राजा जनक उन्हें पहुँचाने आये। दोनों समधियों ने एक दूसरे से मिलकर बिदा ली।

मार्ग में सुन्दर स्थानों पर रुकते हुए सब लोग पाँचवें दिन अयोध्या पहुँचे। उनका आगमन सुन सारे नगर में आनन्द छा गया। रानियों ने सजकर मङ्गल-आरती उतारी। पुत्र-वधुओं को देखकर माताएँ प्रसन्न हो उठीं। उन्होंने कंचन के थालों में भर-भरकर ब्राह्मणों को दान दिया। सबने बहुओं को आशीर्वाद दिया। इस प्रकार रामचन्द्रजी का शुभ विवाह समाप्त हुआ।

अयोध्याकाण्ड

जब से राजा दशरथ राम का विवाह करके आये तब से अयोध्या में दिन-प्रतिदिन आनन्द और सुख की वृद्धि होने लगी। अवधपुरी, इन्द्रपुरी की तरह समस्त शोभा की खानि हो गई; शोक, दुःख और दारिद्र्य का तो सात समुद्र तक पता न था। भगवान् रामचन्द्रजी की मुख-छवि निरखकर सभी स्त्री-पुरुष अत्यन्त प्रसन्न रहते थे। तभी केकय के राजकुमार ने राजा दशरथ से प्रार्थना की कि भरत को मेरे साथ भेज दीजिए। मुनि के इच्छानुसार राजा ने आज्ञा दे दी और भरतजी शत्रुघ्न के साथ राम के चरणों को अपने हृदय में धारण कर तथा सबको प्रणाम कर चल दिये। इसी के उपरान्त नारदजी ने एक दिन आकर भगवान् रामजी से ब्रह्माजी का सन्देश कह सुनाया। रामचन्द्रजी ने उनको प्रणाम किया और विश्वास दिलाकर बिदा कर दिया; साथ ही उन्होंने सबके हृदय में अपनी माया का प्रकाश कर दिया।

राजा दशरथ ने गुरुजी से कहा कि सबके मन में यह इच्छा है कि रामचन्द्रजी का राज्याभिषेक हो जाय, अतः आप शुभ घड़ी बता दीजिए। वशिष्ठजी ने तुरन्त तिलक की

सामग्री एकत्रित करने का आदेश देते हुए कहा कि वही घड़ी श्रेष्ठ है जिस समय राम राजगद्दी पर बैठें। आज्ञानुसार फल-फूल, जल इत्यादि समस्त अभिषेक-सामग्री इकट्ठी होने लगी, सारा नगर ध्वजा, तोरण-पताका आदि से सजा दिया गया और सड़कों को कुंकुम-अगर से सींचकर सुगन्धित बना दिया गया। सुन्दर मणियों से युक्त दीपकों के प्रकाश से सारा नगर जगमगा उठा।

अयोध्या की इस तैयारी को देखकर देवता चिन्तित हो उठे कि यदि राम का राज्याभिषेक हो गया तो कष्टदायक दुष्टों का नाश कौन करेगा। अत: उन्होंने शारदा को बुलाकर उससे प्रार्थना की कि हे माता, ऐसा उपाय करो कि जिससे राम वन को चले जायँ। शारदा ने कैकेयी की अतिप्रिय सखी मन्थरा के कण्ठ पर बैठकर उसका चित्त फेर दिया। जब मन्थरा ने नगर की शोभा को देखा तो उसके हृदय में क्षोभ उत्पन्न हुआ। उसने जाकर कैकेयी को राम के विरुद्ध उभाड़ा और कहा कि भरत को विदेश में गया समझकर कौशल्या ने राम को राज्य दिलाने की बात राजा से कही है। इससे तुम्हारे ऊपर भारी विपत्ति आने-वाली है। रानी कैकेयी ने उसकी बात सच मानकर उससे उपाय पूछा। उसने कहा कि दुखी होने की आवश्यकता नहीं, राजा ने तुम्हें जो दो वर देने को कहे थे, उन्हें आज ही माँग लो। एक तो राम वन को चले जाएँ और दूसरे भरतजी उनकी जगह पर निष्कंटक राज्य करें।

देवताओं की कुचाल काम कर गई। रानी मन्थरा की बात मानकर कोपभवन में जा बैठी। क्रोध से उसका हृदय क्षुब्ध हो उठा। उधर सारे नगर में बधाइयाँ बज रही थीं, इधर राजा दशरथ रानी को इस दशा को देखकर उसे मनाने की चेष्टा कर रहे थे। काम किसको वशीभूत नहीं कर लेता ? वीर राजा दशरथ पत्नी से उसके क्रोध का कारण पूँछने लगे। वे बोले कि तुम्हारे सुख के लिए ही तो मैंने राम का राजतिलक करना निश्चित किया है, फिर भी तुम दुखी हो। कहो क्या चाहती हो ? तुम जो माँगो वही मैं तुम्हें देने को तैयार हूँ।

स्त्री के चरित्र को विधाता भी नहीं जान सके, फिर सरलहृदय बेचारे दशरथ की तो बात ही क्या थी। कैकेयी ने शपथ को सत्य समझ कहा कि पहले तो भरत को राज्य दे दो और दूसरे राम को चौदह वर्ष के लिये वन में भेज दो। यदि ऐसा न हुआ तो मेरा मरण और आपका अपयश होगा। ये वचन सुनकर राजा वज्राहत की भाँति विकल हो गये। उनके प्राण मानों सूख गये और वे कुछ बोल न सके। उनकी यह दशा देख कैकेयी बोली कि पहले तो सत्य-संध बनकर वरदान देने को कहे, अब क्यों नहीं देते ? क्या राम ही तुम्हारे पुत्र हैं, भरत नहीं हैं जो उन्हें अन्यत्र भेजकर तुमने राम का अभिषेक ठान दिया ! राजा ने

नेत्र खोलकर कहा कि प्रिये! सँभलकर वर माँगो जिससे अयश न हो। तुम राम को वन में क्यों भेजना चाहती हो? वे तो बड़े सज्जन और सबको प्रिय हैं। रानी बोली कि चाहे तुम मर जाओ, चाहे सारा नगर उजड़ जाय, चाहे चन्द्र अग्नि-वर्षा करने लगे और सूर्य शीतल हो जाय, परन्तु मेरे वचन नहीं टल सकते। राजा ने बहुतेरा समझाया कि मैं राम के बिना एक क्षण भी नहीं जी सकता, किन्तु वह हठीली नारि न मानी। वह अपनी बात पर ही डटी रही और शोक-विकल राजा राम-राम रटते हुए रात भर वहीं पड़े रहे।

सबेरे सुमन्त ने जब राजा की इस दुर्दशा को देखा तो वे दौड़कर राम को लिवा लाये। राम के आने पर राजा ने उन्हें हृदय से लगा लिया। प्रेमातिरेक से उनके नेत्रों से अश्रुधारा बह चली, उनका कंठ गद्‌गद हो उठा, वे कुछ कह न सके। राम ने माता कैकेयी से सब हाल पूछकर अत्यन्त प्रसन्नता-पूर्वक राजा से कहा कि थोड़ी-सी बात पर आपको इतना दुःख क्यों हुआ। वन में मुझे आपके चरणों के प्रताप से कुछ भी कष्ट नहीं होगा। वहाँ तो तीर्थों तथा मुनियों के दर्शनों से मेरा परम कल्याण होगा। फिर दिन जाते देर ही क्या लगती है; अवधि समाप्त हो जाने पर शीघ्र ही आपके चरणों में आकर प्रणाम करूँगा। राजा कुछ भी उत्तर न दे सके। राम उन्हें समझाकर वन जाने की तैयारी करने लगे।

कौशल्या के समीप जाकर राम ने उनसे वन जाने की आज्ञा माँगी और कहा कि आप धीरज धारण करें, पिता ने मुझे वन का राज्य दिया है, जहाँ मुझे सब तरह का सुपास है। माँ उनके वचनों को सुनकर सहम गईं। इसी बीच सीताजी भी आ गईं। राम ने उन्हें तथा लक्ष्मण को वन की विपत्तियाँ सुझाईं और उनसे घर पर रहने को कहा। सीता ने धीरज धरके कहा कि यद्यपि वन में अनेक कष्ट हैं, किन्तु तो भी आपके साथ मैं सुखी रहूँगी। अधिक उत्तर देने से मुझे पाप लगेगा, अतः मैं केवल यही कहती हूँ कि यदि आप मुझे जीवित रखना चाहते हों तो अपने साथ ले चलें। राम ने फिर लक्ष्मण को समझाया कि भाई तुम यहीं बने रहो। पिताजी वृद्ध हैं, भरतजी भी इस समय यहाँ नहीं हैं; तुम्हीं सबको सान्त्वना देना। पर लक्ष्मणजी ने न माना और नम्रतापूर्वक कहा कि आप वन में रहें और मैं घर में? मैं तो आपका सेवक हूँ; सदा साथ ही रहूँगा। अन्त में माता को प्रणाम कर सीता-लक्ष्मण समेत राम राजा के पास पहुँचे। उन्हें समझाकर तथा प्रणाम कर वे गुरु के चरणों में नगर की रक्षा का भार सौंपकर वन को चल दिये। नगर के सब लोग विकल हो उठे। राजा के कहने पर सुमन्त उन्हें रथ पर बैठाकर ले चले। सारे नगर में राम के विरह की ज्वाला फैल गई और अवधि-समाप्ति की आशा से सबने जप-तप आदि व्रत करना आरंभ कर दिया।

जब राम गंगाजी के निकट पहुँचे तो उन्होंने सुमन्त को तो समझा-बुझाकर बिदा कर दिया और केवट से नाव लाने के लिए कहा। केवट बोला कि हे रामचन्द्रजी! आपकी चरण-रज को छूकर मनुष्य भी उड़ जाते हैं, फिर काष्ठ तो और भी हलका होता है। यदि मेरी नाव भी मुनि की स्त्री हो जायगी तो मेरा सारा परिवार भूखों मर जायगा। अतः यदि आप पार जाना चाहते हैं तो पहले मुझे पद-प्रक्षालन कर लेने दीजिए। राम ने मुस्करा-कर कहा कि विलम्ब न करो। तब केवट ने बड़े प्रेम से भगवान् के चरण धोकर चरणामृत लिया। इस प्रकार अपने परिवार को संसार-सागर से पार उतारकर वह भगवान् को गंगाजी के उस पार ले आया। जब रामचन्द्रजी ने कहा कि कुछ उतराई ले लो तो केवट बोला कि आपके अत्यन्त पुनीत इन चरणों को धोकर आज मैंने क्या नहीं पा लिया? सचमुच आज मुझे सब कुछ मिल गया। भगवान् उसे अपनी विमल भक्ति का वरदान देकर चल दिये।

नदी-तालाब, पहाड़, वन, गाँव, नगर आदि का अवलोकन करते हुए राम, लक्ष्मण और सीता आगे बढ़े। मार्ग में स्त्री-पुरुष उनकी सुन्दरता को देखकर आपस में विविध प्रकार का वार्तालाप करते थे। कोई कहता—सीता का मुख चन्द्रमा के समान है। वहीं दूसरा कहता—नहीं, चन्द्रमा दिन में फीका हो जाता है। वह घटता-बढ़ता भी है। किन्तु सीता का मुख तो सदैव प्रकाशमान रहता है। जहाँ-जहाँ से होकर वे जाते सभी लोग उनकी प्रशंसा करते और अपने को धन्य समझते। इस प्रकार रामचन्द्रजी सीता और लक्ष्मण सहित प्रयाग में पहुँच गये। वहाँ उन्होंने भरद्वाज के आश्रम में प्रवेश किया। मुनि ने उनका बड़ा समादर किया। प्रातःकाल 'प्रयाग' नहाकर वे फिर आगे चले और वाल्मीकि ऋषि के आश्रम में आये। ऋषि ने उन्हें फल-फूल खिलाये और उनके रहने के लिए चित्रकूट का पवित्र स्थान बतला दिया। सीताजी के साथ राम-लक्ष्मण ने वहीं अपना आश्रम किया और बड़े सुख-पूर्वक रहने लगे।

इधर राम के बिदा कर देने पर सुमन्त अवध की ओर चल दिये किन्तु विरह-वश घोड़े चलते न थे और सुमन्त से भी रथ नहीं हाँका जाता था। केवट ने जैसे-तैसे उन्हें बिदा किया। सुमन्त जब रात में अयोध्या पहुँचे तो राजा दशरथ विकल होकर पूछने लगे कि कहो राम-लक्ष्मण और सीता कहाँ हैं? सुमन्त कुछ उत्तर न दे सके। राजा ने राम-राम रटते हुए अपने प्राण छोड़े। उनकी मृत्यु का समाचार पाकर सब रानियाँ फूट-फूटकर रोने लगीं, सारे नगर में कुहराम मच गया। अवध की ऐसी दुर्दशा देखकर सभी दुष्ट कैकेयी को बुरा-भला कहते थे, जिसके कारण ही यह सब कुयोग हुआ था। वशिष्ठजी ने सबको समझाया और भरतजी को शीघ्र बुलाने के लिए दूत भेजे।

गुरु की आज्ञा सुनकर भरतजी तुरन्त चल पड़े। मार्ग में उन्हें अनेक अपशकुन हुए। अयोध्या में आने पर स्त्री-पुरुष उन्हें देखकर इधर-उधर हो जाते। कैकेयी ने वस्त्रा-भूषण सजाकर अपने पुत्र भरत की आरती उतारी और कहा कि और तो सब ठीक हुआ, तुम्हें निष्कंटक राज्य मिल गया; किन्तु विधाता के कुचक्र से राजा का स्वर्गवास हो गया। मन्थरा ने मेरी बड़ी सहायता की। राम, लषण और सीता तो वन में चले गये और उन्हीं के सोच में राजा मर गये। अब तुम सुख से राज करो। रानी के इन वचनों को सुनकर भरतजी मूर्छित होकर गिर पड़े। फिर उन्होंने उसे बहुत धिक्कारा और कहा—तूने मुझे व्यर्थ जन्म दिया। वर माँगते समय तेरे मुँह में कीड़े भी नहीं पड़ गये। आह! पति को मारकर तथा राम-लक्ष्मण और सीता को वन में भेजकर ऐ पिशाचिनी! तुझे जरा भी भय नहीं लगा। जा, हट, मेरी आँखों से दूर जा। इसी समय दुष्टा मन्थरा भी वहाँ आ गई। शत्रुघ्न ने उसके कूबड़ में एक लात मारकर उसे पृथ्वी पर घसीटना आरम्भ कर दिया किन्तु भरतजी ने जाकर उसे छुड़ा दिया।

वहाँ से उठकर दोनों भाई कौशल्या के पास गये। कौशल्या ने उन्हें हृदय से लगा लिया और कहा कि तुम्हारे बिना हमारी यह दुर्दशा हो गई कि सारा नगर विकल हो गया। भरतजी ने अपने को धिक्कारते हुए कहा कि मैंने संसार में व्यर्थ ही जन्म लिया। कैकेयी बाँझ ही रहती तो अच्छा था अथवा मुझे पैदा होते ही विष खिलाकर मार डालती। उन्होंने अपने को अनेक शपथें दीं और कहा कि यदि मुझे राजतिलक का यह बात मालूम रही हो तो उस पाप के प्रतिफल-स्वरूप परमात्मा मुझे घोरतम कष्ट दे तथा मुझे बड़े से बड़ा पाप लगे। माता कौशल्या ने उन्हें सान्त्वना दी और कहा कि किसी को दोष देना व्यर्थ है; सब विधाता के इच्छानुसार होता है। मुझे विश्वास है कि तुम्हें राम तथा तुम राम को परम प्रिय हो।

प्रातःकाल तड़के ही मुनि वशिष्ठ ने आकर भरत को राजा की मृतक-क्रिया करने का आदेश दिया। सरयू के तट पर उनका दाह-संस्कार किया गया। तिलांजलि देने के उपरान्त भरतजी ने मुनि के कहने से भी कहीं अधिक धेनु, वस्त्र, गज-तुरङ्ग इत्यादि दान में दिये। इस प्रकार शुद्ध हो जाने पर वे दरबार में पहुँचे। वहाँ उन्होंने मंत्री, ब्राह्मण, गुरु आदि सबको इकट्ठा किया। गुरु वशिष्ठ ने मधुर उपदेश दिया कि राजा दशरथ के लिए शोच नहीं करना चाहिए। उन्होंने तो इन्द्र के समान सुख भोग किया और उनका यश तो स्वच्छ चन्द्र की भाँति सर्वत्र व्याप्त है। फिर राम के स्वभाव व स्नेह का तो कहना ही क्या जिन्होंने अपने पिता की आज्ञा पालन करने के लिए तुरन्त वन को प्रस्थान कर दिया। कैकेयी ने ही यद्यपि यह दुष्कर्म किया है, किन्तु भावी तो होकर ही रहती है। उसके लिए

किसी को दोष देने से क्या लाभ ? इसलिए हे भरतजी ! तुम भी अपने पिता के आज्ञा-नुसार राज्यपद ग्रहण करो जिससे सबका दुःख मिट जावे। कौशल्या ने भी भरत से अनुरोध किया कि गुरु का कहना मानकर सबको सुखी करो। यह सुनकर भरत के नेत्रों से अश्रुधारा बह चली। उन्होंने हाथ जोड़कर गुरु तथा माता आदि सबसे कहा कि यद्यपि आप सब मेरे हित की ही बात कहते हैं, किन्तु तो भी मेरे हृदय में तीक्ष्ण घाव लगा है कि बिना पदत्राण धारण किये हुए राम-लक्ष्मण और सीता ने वन को प्रस्थान किया। राजा के मरण का मुझे इतना शोक नहीं क्योंकि उन्होंने अपना प्रण पूरा किया है; किन्तु रामचन्द्रजी को व्यर्थ में इतना संकट उठाना पड़ा, इसका मुझे घोर पश्चात्ताप हो रहा है। इसलिए मैंने यही निश्चय किया है कि चाहे कुछ भी क्यों न हो, मैं शत्रुघ्न के सहित कल प्रातःकाल वन को अवश्य जाऊँगा। मुझे तो विश्वास है कि भगवान् रामचन्द्रजी मुझ नीच को शरण में आया समझकर मुझ पर अवश्य कृपा औ स्नेह करेंगे। भरत के ऐसे प्रेम-रस-पूर्ण वचनों को सुनकर विरह-रूपी तिमिर मानो नष्ट हो गया और सब लोग मानो दुःख की सेज पर से सोकर उठ बैठे। सब भरतजी की बात सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुए और चलने की तैयारी करने लगे।

सभी साज-समाज के साथ कृश-शरीर भरत बिना पदत्राण धारण किये हुए ही चित्र-कूट को चल दिये। साथ में सब माताएँ, भाई व पुरजन थे। उन्होंने पहले दिन तमसा-तार पर निवास किया और दूसरे दिन सबेरे जाकर गंगाजी के दर्शन किये। उनके साथ बड़ी भीड़ देखकर केवट ने समझा कि भरतजी के मन में कुछ कपट है, तभी तो वे ससैन्य रामचन्द्रजी के पास जा रहे हैं। उसने अपने साथी मल्लाहों को सावधान करके कहा कि राम का कार्य्य करने के लिए तैयार हो जाओ और बीच धार में सारे कटक को डुबो दो। इसमें पीछे पैर रखने की आवश्यकता नहीं है। एक तो रामचन्द्रजा का कार्य है, दूसरे गंगाजी का किनारा, दोनों तरह से अपनी मुक्ति है। किन्तु धनुष धारण करते ही छींक हुई। इस पर एक गुणी ने कहा कि शीघ्रता करने से काम बिगड़ जावेगा। मेरी समझ से तो भरतजी के मन में कुछ कपट नहीं है और वे माता-गुरु आदि के साथ राम के दर्शन करने जा रहे हैं। तब केवट जाकर भरत से मिला। राम का सखा समझकर मुनि वशिष्ठ भी उससे मिले। भरतजी ने उसकी कुशल पूछी तो केवट कहने लगा कि प्रभु के तथा आपके दर्शन पाकर मेरी तो कुशल ही है। उसने माताओं को प्रणाम किया, उन्होंने भी लक्ष्मण के समान अपना पुत्र समझ उसे आशीर्वाद दिया।

केवट ने सबको बड़े आराम से ठहराया और सेवकों द्वारा सबकी यथा योग्य परि-चर्य्या की। दूसरे दिन एक ही खेवा में सब को पार लगा दिया। सब लोग फिर प्रयाग

पहुँचे। वहाँ स्नान करके भरद्वाज के आश्रम में गये। ऋषि ने भरतजी की प्रशंसा करते हुए कहा कि तुम राम को प्राणों के समान प्रिय हो, तुम्हारे लिए यह उचित ही है। वहाँ से चलकर सब लोग चित्रकूट पहुँचे। केवट ने वट-वृक्ष के तले बैठे हुए राम-सीता और लक्ष्मण को दूर से ही दिखाया। समीप जाकर भरतजी भगवान् के पैरों पर गिर पड़े और कहने लगे कि हे अशरण-शरण, मेरी रक्षा करो। भरत के प्रेम से शिथिल-शरीर भगवान् अपनी सुधि-सी भुलाकर उठ पड़े। कहीं तो उनका धनुष रहा, कहीं वस्त्र और कहीं तीर। उनके नेत्रों से प्रेमाश्रु बहने लगे और उन्होंने जाकर दोनों हाथों से भरत को उठा हृदय से लगा लिया। प्रेम में मग्न होकर दोनों भाई परस्पर ख़ूब मिले। पश्चात् उन्होंने केवट व शत्रुघ्न को भेंटा। लक्ष्मण ने भी उनसे भेंट की। केवट द्वारा गुरु का आगमन सुनकर सबके साथ रामचन्द्रजी ने जाकर गुरुजी के चरणों में प्रणाम किया। गुरु ने उन्हें हृदय से भेंटा। फिर उन्होंने सब माताओं से भेंट की और सबको आश्रम में लिवा ले आये। सीता ने अपनी माताओं के चरणों को छूकर रोते हुए विलाप किया। गुरु ने राजा दशरथ की मृत्यु का समाचार राम को सुनाया। मुनि के कथनानुसार राम ने शुद्धि-कर्म किया।

समस्त समाज करुणा और हर्ष से परिप्लावित था। माता, मन्त्री, गुरु आदि सभी शोक और आनन्द के सागर में ग़ोते लगा रहे थे। तभी भरत ने उठकर प्रार्थना की कि भगवान् सर्वज्ञ हैं और सबके स्नेह को जानते हैं, अत: अयोध्या को लौट चलें और अपना राज्य ग्रहण करें। रामचन्द्रजी ने कहा कि पिता की आज्ञा हम दोनों को माननी है। तुम्हें उन्होंने नगर का राज्य दिया है और मुझे वन में भेजा है, अत: उनके वचनों को टालना उचित नहीं है। भरत ने हाथ जोड़कर फिर विनय की कि यह सच है कि पिता की आज्ञा माननी चाहिए किन्तु श्रुति यह कहती है कि यदि पिता स्त्री के वश में हो, सन्निपात अथवा वारुणी से अभिभूत हो तो उसकी आज्ञा मानना उचित नहीं। इसलिए जो आप उचित समझें वह करें। प्रभु के रुख़ को समझकर भरतजी गङ्गा-तट पर गये और वहाँ यह सङ्कल्प किया कि यदि रामचन्द्रजी वापिस नहीं चलेंगे तो तृण के समान अपने शरीर को नष्ट कर दूँगा। तब गङ्गाजी ने स्त्री-वेश धारण कर उन्हें उपदेश दिया कि हे पुत्र! तुम राम को केवल अपना भ्राता ही न समझो। वे चराचर विश्व के स्वामी हैं। देवता, पृथ्वी सन्त आदि की रक्षा करके तथा दुष्ट राक्षसों का नाश करके वे अयोध्या में राज्य करेंगे। अत: तुम चिन्ता त्यागकर उनका आदेश मानो। ऐसे वचनों को सुनाकर गङ्गाजी अदृष्ट हो गईं। भरतजी प्रसन्न होकर भगवान् रामचन्द्रजी के पास आये, उन्हें प्रणाम किया और उनकी चरण-पादुकाएँ ले लीं।

इस प्रकार तीर्थ, वन आदि में विचरते-विचरते जब कई दिन बीत गये तो श्रीरामचन्द्रजी ने भरत के बुलाया। गुरु वशिष्ठजी ने सबसे बिदा होने के लिए कहा। सब लोगों ने प्रेम-पूर्वक मिलकर अयोध्या के प्रस्थान कर दिया। सब लोग जाकर अयोध्या में रहने लगे, किन्तु भरतजी नगर से बाहर नन्दिग्राम नामक स्थान पर मुनिव्रत धारण कर निवास करने लगे। रामचन्द्रजी की चरण-पादुकाओं के ही राजा समझकर वे उनका नित्य पूजा करते थे। सब लोग यही मनाते थे कि कब अवधि समाप्त हो और कब राम का समागम हो ?

अरण्यकाण्ड

सीता समेत रामचन्द्रजी सुन्दर स्फटिक-शिला पर विराजमान थे। लक्ष्मणजी सुन्दर पुष्प चुन लाये। सीताजी ने उन्हें भूषण धारण वत् किया। उसी समय इन्द्र का पुत्र जयन्त उन्हें मनुष्य समझकर काग का वेष धरकर आया और सीताजी के चरण में चोंच मार-कर भाग चला। रामचन्द्रजी ने क्रोधित होकर एक पुष्पबाण संधाना। विकल होकर शक्र सुत सभी लोकों में भागता फिरा, किन्तु कहीं आश्रय न मिला। नारदजी के शिक्षानुसार उसने भगवान् के चरणों में ही गिरकर क्षमा माँगी। रामचन्द्रजी ने उसे एक आँख का करके छोड़ दिया। पश्चात् आश्रम की ख्याति हो चुकी है, यह समझकर रामचन्द्रजी चित्रकूट आश्रम से चल पड़े।

पहले वे अत्रि ऋषि के आश्रम को गये। ऋषि आनन्द-पूर्वक उनसे मिले। अनसूया ने सीताजी को नवीन वस्त्र तथा सुन्दर उपदेश दिये। वहाँ से बिदा लेकर भगवान् ने शरभङ्ग ऋषि के दर्शन किये। शरभङ्गजी सीता-राम की छवि हृदय में धारण कर चिता में भस्म हो गये। आगे सुतीक्ष्ण ऋषि ने प्रेम-प्रफुल्लित होकर भगवान् से भेंट की और उन्हें अगस्त्य ऋषि के आश्रम के लिवा ले गये। मुनि ने अति आनन्द-पूर्वक भगवान् का स्वागत किया। पश्चात् उनके निवास के लिए गोदावरी के तट पर पंचवटी का आश्रम बताया। रामचन्द्रजी सीता और लक्ष्मण सहित यहीं कुटी बनाकर रहने लगे।

एक दिन शूर्पनखा रामचन्द्रजी को देखकर मोहित हो गई और उनसे कहने लगी कि हे छविधाम, तुम मुझे अपनी दासी बना लो। मैं रावण की बहन हूँ और मेरे द्वारा तुम्हें सुख-संपत्ति की प्राप्ति होगी। रामचन्द्रजी ने यह कहकर कि मैं विवाहित हूँ, उसे लक्ष्मणजी के पास भेज दिया। लक्ष्मणजी ने उसे निर्लज्जा कहकर डाँट दिया। वह फिर राम के पास गई और निराश होकर अपना भयंकर रूप प्रकट किया। राम का इंगित

पाकर लक्ष्मण ने उसके नाक-कान काट लिये। वह रोती-चिल्लाती हुई खर-दूषण के पास पहुँची और उनसे सब कथा कह सुनाई। वे क्रुद्ध होकर ससैन्य रामचन्द्रजी पर चढ़ आये। भगवान् ने सीताजी को तो लक्ष्मणजी के साथ एक कन्दरा में भेज दिया और स्वयं युद्ध करने लगे। घमासान युद्ध हुआ। शत्रु के दल को देखकर रामचन्द्रजी ने अपने रूप की ही सारी सेना कर दी जिससे सब आपस में ही लड़ मरे। देवता इस कौतुक को देखकर भगवान् की जय बोलने लगे। खर-दूषण और त्रिशिरा को मृत देखकर शूर्पनखा रावण के पास दौड़ी गई और सब हाल कहा। उसने रावण से सीताजी के अनन्य सुन्दर रूप का भी वर्णन किया। रावण यह सुनकर रथारूढ़ हो मारीच के पास आया और उसे कपट-मृग बनने को बाध्य किया।

बहुत कुछ समझाने पर भी जब रावण न माना तो मारीच स्वर्ण-मृग का रूप धारण-कर कुटी के सामने से निकला। सीताजी ने राम से उसे मारने की प्रार्थना की। धनुष-बाण लेकर राम उसके पीछे चल दिये। लक्ष्मण को सीता की रखवाली के लिए छोड़ दिया। कुछ दूर जाकर राम ने हिरन के बाण मारा। 'हा लक्ष्मण' चिल्लाकर और फिर राम का स्मरण कर उसने अपने प्राण त्याग दिये। यहाँ सीताजी ने लक्ष्मण के नाम की पुकार सुनकर उन्हें रामचन्द्रजी की सहायता को जाने के लिए प्रेरित किया। यद्यपि लक्ष्मण ने बहुत कहा कि भगवान् रामचन्द्रजी पर कभी संकट नहीं पड़ सकता, पर जब वे न मानीं तो उनके आस-पास धनुष से रेखा खींचकर वे विवश होकर चल पड़े।

रावण को साधु वेश में देखकर सीताजी ने उसे भिक्षा देने के लिए अपने पास बुलाया और फल-फूल देने लगीं, किन्तु उसने कहा कि मैं बँधी हुई भिक्षा नहीं लेता। भावी-वश सीताजी रेखा लाँघकर बाहर आईं और रावण इधर-उधर देखकर उन्हें रथ पर बैठाकर ले चला। सीता तब राम-लक्ष्मण का नाम ले-लेकर विलाप करने लगीं। जटायु ने आकर दशशीश को भूमि पर गिरा दिया और सीताजी को छुड़ा लिया। मूर्छा टूटने पर रावण ने क्रुद्ध होकर तीक्ष्ण कृपाण से गृद्ध के पंख काट डाले। उसने पुनः सीता को रथ में बिठाकर अपना मार्ग लिया। मार्ग में कुछ वानरों को देखकर सीताजी ने अपने नूपुर डाल दिये। इस प्रकार रावण ने अशोकवाटिका में सीताजी को ले जाकर रक्खा।

उधर लक्ष्मण को अपनी ओर आता देख राम ने कहा कि भाई, तुमने सीताजी को वन में अकेली छोड़कर अच्छा नहीं किया। लक्ष्मण ने विनय-पूर्वक सब कारण कह सुनाया। इस प्रकार सोच करते हुए जब वे आश्रम में पहुँचे तो सीताजी को न पाया। तब उनके नेत्रों से अश्रुधारा बह निकली। वन में सीता को खोजते-खोजते जब वे आगे बढ़े तो गृद्ध ने सब कथा कही कि रावण सीता को हर ले गया है। राम ने गृद्ध की प्रशंसा

की और उसे पुनर्जीवित होने के लिए कहा किन्तु उसने परमधाम जाना ही श्रेयस्कर समझा। रामचन्द्रजी ने स्वयं उसकी अन्त्येष्टि क्रिया की।

आगे वे शबरी के आश्रम में पहुँचे। उसने उनका बड़ा आदर-सम्मान किया और धूप-दीप तथा फलों से उनकी पूजा की। फिर उसने चिता द्वारा अपने शरीर को नष्ट कर सुरगति प्राप्त की। मार्ग में उन्हें अनेक मुनिगण मिले जो अपना अभीष्ट पाकर सफल-मनोरथ हो गये। जब वे पंपासर पर पहुँचे तो सुन्दर स्थान देख उन्होंने वहाँ स्नान किया। नारदजी भी इसी अवसर पर भगवान् रामचन्द्रजी से मिलने को आये।

किष्किन्धाकाण्ड

सीताजी को ढूँढ़ते-ढूँढ़ते जब राम और लक्ष्मण वन में आगे बढ़े तो ब्राह्मण-वेश में हनुमान्‌जी उनसे आकर मिले। परिचय पूछने पर रामजी ने कहा कि हम राजा दशरथ के पुत्र हैं। उन्हीं की आज्ञा से वन में आये हैं। यहाँ मेरी पत्नी सीताजी खो गई हैं। हम उन्हीं को ढूँढ़ते फिरते हैं। तब हनुमान्‌जी ने उन्हें सुग्रीव से मिलाया। सीताजी के नूपुर देखकर भगवान् विरहाकुल हो उठे। सुग्रीव ने उन्हें समझाया। दोनों में परस्पर मित्रता हो गई। रामचन्द्रजी ने सुग्रीव से वन में रहने का कारण पूछा। सुग्रीव ने अपनी सब कथा कह सुनाई। रामचन्द्रजी ने क्रुद्ध होकर, एक ही बाण द्वारा, बालि का वध करने को कहा और सुग्रीव को किष्किन्धा का राजा बनाने का वचन दिया।

फिर सुग्रीव और बालि दोनों भाइयों में द्वंद्व-युद्ध हुआ। रामचन्द्रजी ने अपने शरणागत की रक्षा के हेतु एक बाण मारा और बालि मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। राम की श्यामल मूर्ति को हृदय में धारण कर बालि ने राम से कहा कि आपको तो संसार में कुछ भी अप्रिय नहीं है। आपने ब्रह्मा से लेकर पिपीलिका तक का निर्माण किया है। आपको तो इस तरह का पक्षपात नहीं करना चाहिए। इस प्रकार 'हे राम, तुम्हारी जय हो' कहकर बालि ने अपने प्राण छोड़े। नगर के स्त्री-पुरुष विकल हो उठे। रामजी ने सुग्रीव को बालक का मृत-कर्म करने की आज्ञा दी। लक्ष्मणजी ने सबको समझाया और नगर के समस्त ब्राह्मणों तथा अंगदादि वानरों को बुलाकर उन्होंने सुग्रीव का राजतिलक किया। राम की कृपा से सुग्रीव को अपना खोया हुआ धन, स्त्री और राज्य आदि सब कुछ मिल गया।

भाई लक्ष्मण के साथ रामचन्द्रजी प्रवर्षण शैल पर आकर निवास करने लगे। इसी समय वर्षा ऋतु का आगमन हुआ। आकाश में काले, पीले, लाल, सफेद बादल घिर

आये। बिजली की चमक-दमक से वन-प्रान्त सुशोभित हो गया। बादलों का गर्जन और मोर, पिक आदि पक्षिया का कूजन दुन्दुभि एवं बन्दी-विरदावली के समान प्रतीत होता था। वर्षा की झड़ी लगी थी। ऐसा लगता था, मानो समुद्र ही पृथ्वी पर चढ़ आया है अथवा विरह-व्यथित व्यक्तियों को व्याकुल करने के लिए मानो कामदेव ने संसार में अपना डेरा डाल रक्खा हो।

वर्षा के उपरान्त शरद् ऋतु आई। चक्रवाक, खंजन आदि बोलने लगे। चन्द्रमा स्वच्छ छत्र की भाँति सुशोभित हो गया। नदी-तालाब का जल निर्मल हो गया। शरद्-राज के शुभागमन पर वर्षा ऋतु ने उसका तिलक किया और प्रणाम करके चल दी। अब रामचन्द्रजी ने लक्ष्मण से कहा कि जाकर वानर-राज से सीता की खोज के लिए कहो। उन्होंने सुख-संपत्ति पाकर मेरी सुधि ही भुला दी। उन्हें समझा देना कि सीता की ख़बर लगाओ, नहीं तो जहाँ बालि है वहीं पहुँचा दिये जाओगे।

लक्ष्मणजी के समझाने पर सुग्रीव सब वानरों सहित जाकर रामचन्द्रजी के पैरों में गिर पड़े। रामचन्द्रजी ने उन्हें हँसकर गले लगाया। तब सुग्रीव और लक्ष्मणजी ने सबको सीता की खोज के लिए जाने का आदेश दिया और कहा कि बिना ख़बर लिये हुए एक महीने में हमसे आकर न मिलना। फिर अङ्गद को बुलाकर कहा कि तुम हनुमान्, नल, नील आदि के साथ दक्षिण की ओर जाकर सीता का पता लगाओ। रामचन्द्रजी ने हनुमान् को अँगूठी देकर सब हाल कह दिया। इस प्रकार राम-काज में लवलीन होकर सब वानर चलते-चलते एक वन में पहुँचे। वहाँ रास्ता भूल गये। जब प्यास से सब व्याकुल हो उठे, तो हनुमान्जी ने एक विवर में प्रवेश किया। वहाँ शशिप्रभा से भेंट हुई। उसने फल-फूल आदि से उन्हें तृप्त किया और आप श्री रामचन्द्रजी के पास पहुँची। उन्होंने उसे बदरी-वन भेज दिया। तब समुद्र के किनारे आकर सब वानर सीता की चिन्ता करने लगे। वहाँ जटायु के भाई संपाति ने कहा कि यदि समुद्र के पार जा सको तो सीता का पता लग जायगा। ऐसा कहकर संपाति चला गया। अङ्गद ने कहा कि मैं पार तो जा सकता हूँ, परन्तु लौटने में सन्देह है। ऋक्षेश ने कहा कि मैं वृद्ध हूँ। नल-नील बोले कि जानकी का पता कैसे लगावेंगे। तब जामवन्त ने हनुमान् को जाने के लिए प्रोत्साहित किया।

सुन्दरकाण्ड

ऋक्षपति के वचनों को सुनकर हनुमान्जी पर्वताकार हो गये। उत्साह में आकर वे वहाँ से चल दिये। मार्ग में दुष्ट राक्षस को मार तथा मैनाक पर्वत का स्पर्श-मात्र कर

वे आगे बढ़े। लङ्किनी राक्षसी को पटककर उन्होंने लङ्का में प्रवेश किया। बहुत खोजने पर भी सीताजी उन्हें न दिखाई दीं तब विभीषण ने सारा भेद बताया। हनुमान्जी अशोक वाटिका में गये और वृक्ष पर बैठकर विश्राम करने लगे। इसी समय रावण आया और सीताजी को अपनी रानी बनाने का विचार प्रकट किया; किन्तु सीताजी का उत्तर सुन वह दुष्ट मुँह की खाकर चला गया।

सीताजी को विकल देखकर हनुमान्जी ने उन्हें अँगूठी दी और रामचन्द्रजी का सारा सन्देश सुनाकर कहा कि "हे माता, धीरज धारण करो। रामचन्द्रजी वानरों की सेना के साथ आने ही वाले हैं।" सीताजी ने कहा कि हे पुत्र, तुम्हारे ही समान सब वानर साधारण शक्तिवाले होंगे। इस पर हनुमान्जी ने अपना पर्वताकार रूप दिखाया और रामचन्द्रजी की महिमा का वर्णन किया जिनकी कृपा से मच्छर भी पहाड़ों को उड़ा सकता है और जिनके बाणों से शत्रु कभी नहीं बच सकता। इसके पश्चात् हनुमान्जी ने वाटिका में फल-फूल खाने की आज्ञा माँगी। जानकीजी ने राक्षसों का भय दिखाया तो वे बोले कि आप आज्ञा दे दें; मुझे उनका भय बिल्कुल नहीं है। तब सीताजी की आज्ञा पाकर वे फल-फूल खाने लगे।

रक्षकों ने जब वाटिका को उजड़ती हुई देखा तो वे हनुमान्जी के पास पहुँचे। हनुमान्जी ने उनको मसलकर धूल में मिला दिया। नगर भर में शोर मच गया। रावण ने अक्षयकुमार को भेजा। हनुमान्जी ने एक वृक्ष द्वारा उसको भी मार डाला। इस पर मेघनाद आया। कुछ देर लड़ने के उपरान्त मेघनाद उन्हें ब्रह्म-बाण द्वारा बाँधकर रावण के सामने ले गया। रावण ने कहा कि तू कौन वानर है और किसके बल से तूने फलों को नष्ट किया? हनुमानजी ने कहा कि जिसने सारे संसार का सृजन किया है, जिसके प्रताप से तुमने इतना बड़ा परिवार, धन, धाम सब कुछ पाया है, उन्हीं रामचन्द्रजी का मैं दूत हूँ। तुम्हारे पुत्र ने मेरे साथ छल किया और मुझे बाँध लिया। यह सुनकर अत्यन्त क्रोधित हो रावण ने उनकी पूँछ में तैल-वस्त्र बँधवाकर आग लगवा दी। हनुमान्जी ने भी स्वर्ण-अटारियों पर चढ़कर सारे नगर में अग्नि फैला दी। क्षण-भर में ही, विभीषण के घर को छोड़कर, सम्पूर्ण नगर जल गया। हनुमान्जी ने सीताजी से मणि लेकर बिदा माँगी। वे कूदकर शीघ्र ही इस पार आये और सब साथियों सहित रामचन्द्रजी के पास पहुँचे।

सीताजी की मणि पाकर तथा उनकी दुर्दशा का हाल सुनकर रामचन्द्रजी अति विकल हुए। उनकी आज्ञा से वानरों का असंख्य कटक लंका की ओर चल पड़ा। उनके चलने से दिग्गज डोलने लगे। सबने आकर समुद्र पर डेरा डाल दिया। रावण ने समाचार पाकर सब मंत्रियों से मंत्रणा की। विभीषण ने कहा कि यदि मेरी बात मानो तो सीताजी

को ले जाकर भगवान् रामचन्द्रजी से मिला। इस पर रावण ने अति क्रुद्ध होकर विभीषण के लात मारी। विभीषण बेचारा रामचन्द्रजी की शरण में आया। उन्होंने उस पर कृपा की और अपने हाथ से तिलक करके लङ्का का राज्य उसे दे दिया।

रामचन्द्रजी ने मित्रों से उपाय पूछा कि किस तरह से कपि-सेना समुद्र के उस पार उतरे। अन्त में यह समझकर कि क्षुद्र कभी नहीं पसीजते, उन्होंने समुद्र के हृदय में एक बाण मार दिया। इस पर समुद्र रत्न लेकर भगवान् से मिला और प्रार्थना की कि आप एक उपाय करें। नल-नील दोनों भाई सेतु बाँधें और अन्य वानर शिलाखण्ड ले-लेकर आवें। इस प्रकार आपके प्रताप से मेरे ऊपर सुन्दर मार्ग बन जायगा।

समुद्र के सच्चे वचन सुनकर सुग्रीव ने सब वानरों को बुलाया और पर्वत-वृक्ष आदि लाने की आज्ञा दी। आज्ञा सुनकर वानर चारों ओर दौड़ पड़े और करोड़ों पर्वत ला-लाकर नल-नील को देने लगे, जिन्होंने उनसे समुद्र पर एक सुन्दर पुल बाँध दिया।

लङ्काकाण्ड

समुद्र में पुल बाँधकर वानरों और भालुओं की सेना सहित रामचन्द्रजी लङ्का में आ गये। मन्दोदरी ने रावण को बहुत समझाया पर उसके सिर पर तो काल मँडरा रहा था। उसने एक न मानी। अङ्गद भी रावण को समझाने गया और उसने कहा कि अपनी कुशल चाहो तो सीताजी को साथ लेकर श्रीरामचन्द्रजी से मिलो। जब रावण ने उसकी बात न मानी तो अङ्गद ने भरी सभा में अपना पैर जमा दिया और यह चुनौती दी कि इस सभा में कोई भी मेरा पैर उठा ले तो मैं अपना वचन हार जाऊँगा। रावण ने अपने सब वीरों को अङ्गद का पैर उखाड़ने के लिए प्रोत्साहित किया, किन्तु जब कोई न उठा सका तो रावण स्वयं उठा। मेरु तक हिल गया पर अङ्गद का पैर टस से मस न हुआ। उठने में रावण के सिर चलायमान हुए तो कुछ मुकुट गिर पड़े। उनको अङ्गद ने उठा लिया और वे यह कहकर चल दिये कि मैं तो रामचन्द्रजी का एक छोटा सा दूत हूँ। अङ्गद ने रावण के मुकुट लाकर रामचन्द्रजी के चरणों पर रख दिये और सब हाल कह सुनाया। रामचन्द्रजी ने प्रसन्न होकर अङ्गद को हृदय से लगा लिया।

फिर रामचन्द्रजी ने मन्त्रणा करके लङ्का का क़िला घेर लिया और अपने वीरों को यथास्थान स्थापित कर दिया। राक्षसों की सेना ने घमासान युद्ध किया, पर वह हार गई। वीर मेघनाद ने लक्ष्मण के शक्तिबाण मारा। उन्हें मूर्च्छित देखकर रामचन्द्रजी ने हनुमान्जी को औषध लेने भेजा। हनुमान्जी द्रोणागिरि लिये चले आ रहे थे तब भरतजी ने उन्हें

बाण मारकर पृथ्वी पर गिरा दिया। पर उन्हें जब रामनाम कहते सुना तो भरतजी बड़े स्नेह से उनसे मिले और कहा कि मेरे बाण पर बैठ जाओ तो तत्काल तुम्हें लङ्का भेज दूं; किन्तु हनुमान्‌जी ने कहा कि आपके प्रताप से मैं स्वयं चला जाऊँगा। हनुमान्‌जी शीघ्र ही ओषधि लेकर आ गये। वैद्य ने उसका प्रयोग किया तो लक्ष्मण तत्काल उठ खड़े हुए। रावण ने जब यह सुना तो उसे बड़ा संशय हुआ। उसने कुंभकर्ण को जगाकर सब हाल सुनाया तो कुंभकर्ण ने कहा कि राम मनुष्य नहीं हैं, भगवान् हैं और सब वानर देवताओं के अवतार हैं। उनसे वैर करने पर कौन नष्ट नहीं हुआ। इतना कहकर कुंभकर्ण रण-क्षेत्र में गया। राम ने उसे मार डाला और लक्ष्मण को लङ्का जाकर मेघनाद के मारने की आज्ञा दी। मेघनाद भी मारा गया।

राक्षसों की सेना लेकर रावण रणक्षेत्र में आ उपस्थित हुआ। उसके धनुष उठाते ही सब देवता भयभीत हो उठे। उसके चलने से दिग्गज काँपने लगे, समुद्र क्षुब्ध हो उठे और पर्वतों के शिखर टूट-टूटकर गिरने लगे, मानो पर्वत भी हाहाकार कर रहे थे। उसका युद्ध देखकर सूर्य स्थिर होकर रह गये और सारी पृथ्वी डगमगाने लगी। इसके आगे राम और रावण के युद्ध का वर्णन करने में गोस्वामीजी ने अपनी असमर्थता प्रकट की है; क्योंकि शेष, शारदा, ब्रह्मा और शिव आदि देवता भा उसका यथातथ्य वर्णन नहीं कर सकते।

रावण ने रामचन्द्रजी से घोर युद्ध किया। अन्त में रामचन्द्रजी ने उसका वध कर डाला और उसका तेज उन्हीं के रूप में समा गया। देवताओं ने प्रभु की जय-जय-कार की। इस प्रकार सीताजी के सङ्कट को दूर कर उन्होंने विभीषण को लंका का राज्य दे दिया। फिर सीता-लक्ष्मण तथा कपि-सेना सहित वे पुष्पक विमान पर बैठकर चल दिये। मार्ग में सीताजी को 'सेतु' के दर्शन कराये। पञ्चवटी में अत्रि ऋषि, अनसूया आदि को प्रणाम कर वे चित्रकूट पहुँचे। वहाँ से प्रयाग गये और फिर गङ्गातट पर निषाद से आकर मिले। यहाँ हनुमान्‌जी को भरत से मिलने तथा अयोध्या-निवासी समस्त जनों का सोच निवारण करने के लिए भेज दिया और स्वयं प्रेम-पूर्वक निषाद के घर गये जहाँ उसने उनकी पूजा की।

उधर हनुमान्‌जी ने जाकर भरतजी को देखा। वे निरन्तर 'सीताराम' का जप कर रहे थे। उनका शरीर अत्यन्त कृश हो गया था। जटा और वल्कल धारण किये, कुशा-सनासीन भरतजी अवधि समाप्त होने पर अपने को धिक्कार रहे थे। तभी हनुमान्‌जी ने कहा कि हे भरतजी, भगवान् रामचन्द्रजी राक्षसों को जीतकर सीता-लक्ष्मण समेत अयोध्या में आ रहे हैं। ऐसे मधुर वचनों को सुनकर भरतजी प्रेम-विह्वल होकर उठ बैठे और हनुमान्‌जी को हृदय से लगा लिया। उन्होंने आनन्द-विभोर होकर पुनः-पुनः हनुमान्‌जी

से पूछा कि क्या तुमने स्वयं उन्हें आते देखा है और जब हनुमान्‌जी ने कहा कि मैं तो उनके साथ आया हूँ तो वे पुलकित होकर कहने लगे कि इस अमृत-सन्देश के लिए तुम्हें मैं क्या दूँ ? इसके समान तो संसार में कुछ भी नहीं है !

भरतजी ने आकर माता, गुरु आदि समस्त पुरजनों से रामचन्द्रजी के आने का समाचार कहा। लोगों ने प्रसन्न होकर नगर को बन्दनवार, पताका आदि से सजा दिया। भरतजी हनुमान्‌जी को साथ में लिये हुए आकाश में विमान देखने लगे। विमान उतरा। भगवान् रामचन्द्रजी ने गुरु वशिष्ठ को प्रणाम किया। फिर भरत को बड़े स्नेह-पूर्वक हृदय से लगा लिया। रामचन्द्रजी समस्त पुरजनों से इस प्रकार मिले कि सब लोग यही समझते थे कि भगवान् हमीं से सबसे पहले मिले। इस प्रकार सब से यथा-योग्य मिलने के उपरान्त भगवान् अपनी माताओं से मिले। उनमें भी सबसे प्रथम कैकेयी से भेंट की। भगवान् के दर्शनों से सब की विरह-वेदना मिट गई।

उत्तरकाण्ड

कुशल-पूर्वक रामचन्द्रजी के लौट आने पर अयोध्या को स्वर्ग की शोभा मिल गई। राज्याभिषेक के अवसर पर भरतजी ने नगर को सजाने का काम लिया। देवता, गन्धर्व और ऋषि लोग सभी श्रीरामचन्द्रजी से मिलने आये। मङ्गल-पदार्थ सजा दिये गये, दुन्दुभि बजने लगे और चारों ओर जयजयकार के साथ पुष्पवर्षा होने लगी। श्रीराम और जानकी के विराजने से सुन्दर सिंहासन पवित्र हो गया। भरत आदि भाई चँवर, छत्र और धनुष-बाण आदि धारण किये थे। ब्राह्मणों की अनुमति लेकर सर्वप्रथम वशिष्ठजी ने राजतिलक किया, नवीन दुन्दुभि बजाये गये, माताओं ने मधुर गीत गाकर आरती की, बन्दी और चारण विरुदावली गाने लगे तथा देवता और मुनि जय-जयकार मनाने लगे।

सबसे पहले वशिष्ठजी ने कहा कि हे दशरथनन्दन ! आपने पृथ्वी, देवता, द्विज और सज्जनों की रक्षा करने के लिए दुष्टों का संहार किया और वेद-विहित मार्ग को अक्षुण्ण रखकर अपने अद्भुत चरित्र का विकास करते हुए सुयश प्राप्त किया। आप ही संसार की रचना करके उसका पालन करते हैं और आप ही संहार भी कर देते हैं। इसके उपरान्त ब्रह्मा, शिव, इन्द्र और सूर्य ने क्रम से एक एक छन्द में रामचन्द्रजी की स्तुति की। तब वायु और अग्नि के अधिष्ठातृ देवताओं ने एक ही छन्द में अपनी विनती सुनाई। फिर वेदों ने ब्राह्मणों का रूप धारण कर राम का गुणानुवाद गाया और सरस्वती तथा नारद ने भी हाथ जोड़-कर विनय सुनाई।

जब देवता और ऋषि स्तुति करके चले गये तो रामचन्द्रजी ने भरतजी को बुलवाया और सुग्रीव, जाम्बवान्, विभीषण, नल और नील तथा अङ्गद को स्नान कराने की आज्ञा दी। भरतजी ने स्वयं सबको आभूषणों से सुसज्जित किया। सबको अपने पास बिठाकर रामचन्द्रजी ने वशिष्ठजी से सबकी प्रशंसा की। इस स्थल पर राम ने अपने गुरु को नील-नल, सुग्रीव, विभीषण, जाम्बवान्, अङ्गद और हनुमान्‌जी का परिचय क्या दिया, कवि ने रामचन्द्रजी के मुख से संक्षेप में इन सबका चरित्र-चित्रण करा दिया है। इस प्रकार सबकी कीर्ति का वर्णन करके रामचन्द्रजी सबसे अलग-अलग मिले और बड़े प्रेम से सब को बिदा किया।

तदुपरान्त राम-राज्य का बड़ा विशद और मनोहर वर्णन किया गया है, जिसका सूक्ष्म विवरण अन्यत्र दिया जायगा। राम-राज्य के नैसर्गिक प्रभाव का वर्णन करने के उपरान्त गोस्वामीजी ने दो छन्दों में राम-नाम और राम-चरित्र की अपूर्व महिमा का बड़े अनोखे ढङ्ग से वर्णन किया है। कलियुग में राम-नाम को ही कामधेनु और कल्पतरु सिद्ध करते हुए मङ्गल-कामना के साथ उन्होंने अपना ग्रन्थ समाप्त किया है।

५—तुलनात्मक समीक्षा

पूर्व-पीठिका

कवि-चूड़ामणि गोस्वामी तुलसीदासजी की गणना संसार के सर्वप्रधान महाकवियों में की जाती है। बाह्य प्रकृति के नाना रूपों से अपने हृद्गत भावों का सम्बन्ध स्थापित करने के साथ ही साथ उनमें मनुष्यजाति की अन्तर्वृत्तियों को पहचानने की अपूर्व क्षमता थी। वैयक्तिक जीवन का आदर्श, कवि ने, मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्र के चरित्र में देखा और उनके संसर्ग में आनेवाले अन्य सभी चरित्रों के द्वारा सामाजिक जीवन के रहस्यों का उद्घाटन कराया। कैकेयी का मोह, कौशल्या की ममता, दशरथ का सत्य और प्रेम, लक्ष्मण का भ्रातृस्नेह, सीता का सतीत्व, भरत की भायप भक्ति, हनुमान् की सेवा, सुग्रीव की मित्रता और रावण की शत्रुता आदि सब इसी बात के उदाहरण हैं। मानव-जीवन का कोई पक्ष ऐसा नहीं, जिस पर कवि की दृष्टि न पड़ी हो। अपनी प्रखर प्रतिभा के बल पर उसने सरलातिसरल और गहनातिगहन भावों की मार्मिक व्यञ्जना की है। इसी लिए कवि को एक ही विषय पर अलग-अलग प्रणालियों में अनेक ग्रन्थों के लिखने की आवश्यकता प्रतीत हुई। बात यह है कि कोई भाव किसी एक शैली में अच्छी तरह से कहा जा सकता है तो दूसरा भाव, उसके उपयुक्त न होकर, किसी अन्य पद्धति में अधिक मार्मिकता से व्यक्त हो सकता है। इसी प्रवृत्ति से प्रेरित होकर उसे एक ही ग्रन्थ में अनेक शैलियों का समावेश भी करना पड़ा है; पर अलग-अलग ग्रन्थों में यह कार्य अधिक सुचारु रूप से सम्पन्न हुआ है।

गीतावली और कुण्डलियारामायण में बाललीला तथा माताओं के प्रेम आदि भावों की जैसी मनोहर एवं तीव्र व्यञ्जना हुई है उसे कवितावली, बरवै-रामायण तथा छप्पय रामायण में ढूँढ़ना व्यर्थ है। रामचरितमानस और कुण्डलियारामायण में कथावस्तु की प्रत्येक आवश्यक घटना को सुलझाते हुए चलने की और कथोपकथन की जो प्रवृत्ति लक्षित होती है, वह तुलसीकृत किसी भी अन्य ग्रन्थ में मिलना कठिन है। इसी तरह से कवितावली, मानस, छप्पयरामायण और कुण्डलियारामायण में वीर और दर्प का जो उत्कट रूप मिलता है, उसे वैसे ही स्वरूप में अन्यत्र ढूँढ़ना ठीक नहीं। विनयपत्रिका और वैराग्यसंदीपनी में सांसारिक मोह तथा विषय-वासना की निवृत्ति और चित्तशुद्धि

द्वारा भगवद्भक्ति की दृढ़ स्थापना के साथ ही साथ दैन्य और विनय का जो स्वरूप अङ्कित किया गया है वह दोहावली तथा सतसई में भी नहीं मिलता। बरवै रामायण में अलङ्कार-प्रियता की जो प्रवृत्ति है, वह तुलसी के अन्य ग्रन्थों में ढूँढ़ने पर भी कठिनता से मिलेगी।

एक ही विषय पर लिखे हुए गोस्वामीजी के अनेक ग्रन्थों में जो अन्तर दिखाई देता है, उसका मुख्य कारण है काव्य-पद्धतियों की विभिन्नता। यद्यपि घटनाओं में थोड़ा-बहुत हेर-फेर करना कवि की रुचि और ज्ञान पर ही निर्भर रहता है, किन्तु साधारणतः जो जितना छोटा छन्द होता है, उसमें घटनाओं का सम्बन्ध-निर्वाह करने की उतनी ही अधिक शक्ति होती है। दोहा और चौपाई जैसे छोटे छन्दों में प्रबन्ध का निर्वाह जितने अच्छे ढङ्ग से किया जा सकता है, वैसा गीत, कवित्त और कुण्डलिया में नहीं हो सकता। कुण्डलिया छन्द देखने में बड़ा अवश्य होता है किन्तु उसकी छः पंक्तियाँ दो या तीन छन्दों में विभाजित रहती हैं। गोस्वामीजी की अधिकांश कुण्डलियाँ दोहा, रोला और उल्लाला इन तीन छन्दों के मेल से बनी हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि कई छोटे-छोटे छन्दों का मेल होने के कारण कुण्डलिया-पद्धति में गीत, कवित्त और छप्पय पद्धतियों की अपेक्षा, प्रबन्ध-सूत्र की परम्परा सुलझाने की प्रवृत्ति अधिक पाई जाती है। सफल प्रबन्ध-काव्य की दृष्टि से राम-चरितमानस और कुण्डलिया रामायण के अतिरिक्त गोस्वामीजी ने अन्य काव्य नहीं लिखा।

श्रीराम के अनन्य भक्त होने के कारण गोस्वामीजी ने समस्त हिन्दी-भाषा-भाषी समाज को अपने आराध्य देव की ओर खींचने का पूरा प्रयत्न किया। विभिन्न काव्य-पद्धतियों में अनेक छन्दों का समावेश करके सब प्रकार की रुचिवाले मनुष्यों की काव्य-पिपासा सन्तुष्ट की। इस प्रकार कवि ने सब हृदयों के साथ राम-नाम का रागात्मक सम्बन्ध स्थापित कर लिया। अनेक ग्रन्थों का एक (रामचरित्र) ही प्रतिपाद्य विषय होने के कारण कथा-वस्तु की परिस्थितियाँ प्रायः सब में एक सी हैं। कवि को घटनाओं के साथ भावों तथा विचारों की भी इतनी पुनरावृत्ति करनी पड़ी है कि अधिकांश स्थलों में शब्द-योजना और भाव-व्यञ्जना भी अनेक ग्रन्थों में समान रूप से मिलती हैं। इतना होते हुए भी एक ही स्थल की विभिन्न ग्रन्थों का उक्तियाँ अपनी-अपनी सत्ता और छटा अलग-अलग दिखाती हैं। हर एक में कुछ न कुछ मौलिकता है, नवीनता है और बाँकापन है। कुण्डलिया रामायण में गोस्वामाजी गणेशवन्दना करते हुए कहते हैं—

"मति गति रति रघुपति चरन विघन-हरनि की बानि"

विनयपत्रिका में यही बात इस प्रकार लिखी है—

"मति रामनाम ही सों रति रामनाम ही सों गति रामनाम ही की बिपतिहरनि" तथा "रामनाम गति रामनाम मति रामनाम अनुरागी"।

दोहावली और रामाज्ञाप्रश्न में लिखा है—

"रामनाम रति, रामगति, रामनाम विस्वास।
सुमिरत सुभ मङ्गल कुसल दुहुँ दिसि तुलसीदास" ॥

उपर्युक्त पद्यों के शब्द और भाव इतनी एकरूपता रखते हैं कि एक ही हृदय से निकले हुए स्वयं सिद्ध हो जाते हैं। इसी तरह से कुण्डलिया रामायण में रामजन्म के समय अयोध्या के आनन्दोत्सव का वर्णन इस प्रकार है—

"भरी चौक गज-मुक्त अगर कुंकुम मृगमद घन।
कुसुम सुगन्ध अबीर रहेउ भरि दिसा विदिस तन" ॥

इसी स्थल में रामचरितमानस का वर्णन इस प्रकार है—

"मृगमद चन्दन कुंकुम कीचा, मची सकल बीथिन बिच बीचा।
अगरु धूम बहु जनु अँधियारी, उड़इ अबीर मनहुँ अरुनारी" ॥

और गीतावली में लिखा है—

"बीथिन कुंकुम कीच अरगजा अगर अबीर उड़ाई।"

कुण्डलिया में "भरी चौक गजमुक्त" यह तो अवश्य अधिक है, किन्तु शेष सारी शब्द-योजना मानस और गीतावली की पंक्तियों से बिल्कुल मिलती-जुलती है। जहाँ तक भाषा का सम्बन्ध है, मानस की अपेक्षा गीतावली और कुण्डलिया रामायण में अधिक साम्य है। इस विषय पर 'कुण्डलिया रामायण की प्रामाणिकता' शीर्षक लेख में अधिक प्रकाश डाला गया है। यहाँ पर इतना ही कहना पर्याप्त है कि कुण्डलिया रामायण एक ऐसी व्यापक भाषा का ग्रन्थ है जिसका लोहा प्राय: सभी भारतीय भाषाओं ने माना है। यद्यपि इस ग्रन्थ में अवधी और बुँदेलखण्डी के भी कुछ रूप मिलते हैं, पर साधारणत: यह ग्रन्थ व्रजभाषा में ही लिखा गया है।

अन्य ग्रन्थों के साथ तुलना

कुण्डलियारामायण के आरम्भ में दशरथजी पुत्र-कामना के लिए यज्ञ करते हैं। उसका 'हव्य' पाकर तीनों रानियाँ गर्भवती हो जाती हैं। यथासमय राम, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न उत्पन्न होते हैं। क्षौरकर्म, कर्णवेध आदि संस्कार गुरु वशिष्ठ द्वारा सम्पादित कर दिये जाते हैं। जब सब भाई कुछ बड़े हो जाते हैं, तो विश्वामित्रजी यज्ञ-रक्षा के लिये राम-लक्ष्मण को अपने साथ लिवा ले जाते हैं। रामचन्द्रजी ताड़का और सुबाहु का वध करते हैं और मारीच को बिना फर का बाण मारकर समुद्र-पार पहुँचा देते हैं। अहल्या-

तारण भी मानस के अनुकूल है। पुष्पवाटिका का वर्णन बहुत सूक्ष्म रूप में है, किन्तु दस सहस्र भाटों द्वारा राजा जनक के प्रण की घोषणा पन्द्रह कुण्डलियों में विस्तार-पूर्वक विचित्र रूप से वर्णित है। धनुष टूटने के बाद परशुराम-आगमन और लक्ष्मणजी से उनका संवाद भी अधिकांश 'मानस' के अनुसार ही है। लक्ष्मणजी वीररस के आवेश में परशुराम से युद्ध करने के लिए धनुष उठा लेते हैं, पर रामचन्द्रजी नेत्र के इशारे से निवारण ही नहीं कर देते, वरन् उन्हें बड़ों की अवज्ञा करने पर उपदेशात्मक ढङ्ग से लज्जित भी करते हैं।

'जानकीमंगल' और 'रामाज्ञा' में विवाह दो स्थानों पर वर्णित है पर यह क्रम 'कुंडलिया रामायण' में नहीं है। तुलसी की अन्य रचनाओं में भी विवाह का दोहरा वर्णन नहीं है। 'जानकीमङ्गल' में 'फुलवारी-लीला' भी नहीं है और न जनक का वह निराश वचन ही है, जो उन्होंने राजाओं द्वारा धनुष न टूटने पर कहा था तथा जिसका उत्तर लक्ष्मण ने ओज-पूर्ण भाषा में दिया था। ये सब वर्णन कुण्डलियारामायण में मिलते हैं। मानस तथा 'कवितावली' के अनुसार धनुष टूटने के बाद परशुरामजी स्वयंवर-सभा में ही आ जाते हैं और लक्ष्मणजी से वाद-विवाद भी होता है। 'जानकीमङ्गल' में बारात की बिदाई के बाद परशुराम मार्ग में राम से मिलते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि जानकीमङ्गल से कुण्डलिया रामायण में पुष्प-वाटिका, जनक के निराशा-पूर्ण वचन, लक्ष्मण का ओजपूर्ण उत्तर, स्वयंवर-सभा में ही परशुराम का गर्व-हरण आदि बातों में अन्तर है। कुण्डलिया रामायण में ये सब बातें जयदेव के 'प्रसन्नराघव' से ली गई हैं। इससे हमें ज्ञात होता है कि कुण्डलिया रामायण की रचना जानकीमङ्गल के आसपास की नहीं हो सकती।

'रामाज्ञा' में कथा राजा दशरथ के राज्यकाल से प्रारम्भ होती है और आदि में ही श्रवणकुमार के पिता के शाप का वर्णन है। मानस में यह कथा दशरथ ने मरण-शय्या पर कही थी, जब कि कुण्डलिया रामायण में इसका उल्लेख कहीं नहीं है। 'रामाज्ञा' में अयोध्या से वन जाते समय निषाद से राम की भेंट होने का उल्लेख नहीं है; कुण्डलिया रामायण में इस घटना का बड़ा मनोमोहक वर्णन है। 'रामाज्ञा' के अनुसार कुण्डलिया रामायण में भी चित्रकूट में जनक का आगमन नहीं होता। रामाज्ञा में सीता की सुधि लेने को गये हुए हनुमान्जी की न तो विभीषण से ही भेंट होती है और न उनके समक्ष सीता-रावण-संवाद ही होता है किन्तु कुण्डलिया रामायण में ये दोनों वर्णन विद्यमान हैं। रामाज्ञा में लक्ष्मण को 'शक्ति' लगने की कथा नहीं है, पर कुण्डलिया रामायण में यह विस्तार-पूर्वक कही गई है। रामाज्ञा की तरह कुण्डलिया रामायण में त्रिजटा-सीता-संवाद,

सीता की अग्नि-याचना तथा सेतुबन्ध के अवसर पर रामेश्वर-स्थापना का पूरा वर्णन नहीं आया। रामाज्ञा में रामराज्याभिषेक के उपरान्त 'सीता-राम-वियोग' तथा 'सीता-अवनि-प्रवेश' तक का कथा है; परन्तु कुण्डलिया रामायण में रामराज्याभिषेक, राम का वशिष्ठ को वानर-भालुओं का परिचय देना तथा रामराज्य की महिमा का वर्णन करके ही ग्रन्थ समाप्त कर दिया गया है।

बात यह है कि रामाज्ञा की कथा वाल्मीकि रामायण की कथा पर अवलम्बित है; किन्तु कुण्डलिया रामायण में पुष्पवाटिका लीला, जनक के निराशा-पूर्ण वचन आदि 'प्रसन्नराघव' नाटक के आधार पर है। जनक को लक्ष्मण का ओज-पूर्ण उत्तर 'हनुमन्नाटक' से लिया गया है। राम-वन-गमन के समय निषाद से भेंट 'अध्यात्मरामायण' के अनुसार है, पर यहाँ पर कवि ने अपनी उद्भावना-शक्ति का विशेष उपयोग किया है। हनुमान् की उपस्थिति में सीता-रावण-संवाद 'प्रसन्नराघव' के अनुसार है, पर है अत्यन्त सूक्ष्म रूप में। 'मानस' की कथा में भी 'त्रिजटा-सीता-संवाद' और 'अग्नि-याचना' 'प्रसन्नराघव' के अनुसार ही है, किन्तु सेतुबन्ध के समय रामेश्वर की स्थापना 'अध्यात्मरामायण' से मिलती-जुलती है। ये दोनों कथाएँ कुण्डलिया रामायण में नहीं हैं और न रामाज्ञा में ही हैं। परन्तु पहले में लंका से लौटते समय राम ने सीता को जब सेतु दिखाया है, उस समय वहाँ शंकर का पूजन किया है; इससे समुद्र-पार करते समय रामेश्वर की स्थापना की ओर स्पष्ट संकेत मिलता है।

इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि 'रामाज्ञा' रचते समय गोस्वामीजी ने 'प्रसन्नराघव', 'हनुमन्नाटक' तथा 'अध्यात्म रामायण' में से कोई ग्रंथ न पढ़ा था; कुण्डलिया रामायण का निर्माण करते समय वे 'प्रसन्नराघव' और 'अध्यात्मरामायण' को पूर्ण रूप से समाप्त न कर पाये थे। हाँ, 'हनुमन्नाटक' अवश्य समाप्त कर लिया होगा; क्योंकि उत्तरकाण्ड में राम जहाँ वशिष्ठ को अपने मित्र एवं सहायकों का परिचय देते हैं वहाँ 'हनुमन्नाटक' का प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है। 'मानस' की रचना के समय गोस्वामीजी इन सब ग्रन्थों में पारङ्गत हो गये थे। इस प्रकार कुण्डलिया रामायण की रचना 'रामाज्ञा' और 'रामचरितमानस' के बीच की कही जा सकती है; पर यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि इस बीच में और ग्रन्थ लिखे गये कि नहीं।

गीतावली से तुलना

कथावस्तु में विशेष स्थलों पर तीव्र भाव-व्यंजना का समावेश होना गीत-काव्य और कुण्डलिया इन दोनों पद्धतियों का स्वाभाविक लक्षण है। गीत-काव्य में कथोपकथन नहीं

बन सकता; किन्तु कुण्डलिया पद्धति में कथोपकथन के दो मुख्य प्रकार हैं। या तो एक ही छन्द में प्रश्न और उत्तर दोनों हो जायँ अथवा एक छन्द में कोई बात कहा जाय और दूसरे में उसका उत्तर दिया जाय। गीत-काव्य की रचना मुक्तक-शैली में होती है, पर कुण्डलिया पद्धति किसी शैली के नियन्त्रण में नहीं है। स्फुट-काव्य और प्रबन्ध-काव्य इन दोनों की रचना कुण्डलिया छन्द में हो सकती है। बात यह है कि जो जितना छोटा छन्द होगा, वह प्रबन्ध-काव्य के लिए उतना ही अधिक उपयुक्त होगा। अतः उतनी सफल प्रबन्ध-काव्य की रचना कुण्डलिया छन्द में नहीं हो सकती जितनी दोहे-चौपाई में हो सकती है। गीतावली जैसी मुक्तक-रचना में कथा के कुछ अंश छूट जाना अनिवार्य है; क्योंकि गीत-काव्य में मधुर ध्वनि-प्रवाह के साथ कुछ चुने हुए पदार्थों और मार्मिक दृश्यों की झाँकी दिखा देना ही पर्याप्त समझा जाता है। प्रबन्धात्मक कुण्डलिया-पद्धति में कोई मुख्य घटना न छूटनी चाहिए, पर इससे दोहा-चौपाई की भाँति बृहत्कथाओं की सब गुत्थियाँ सुलझाने की आशा करना ठीक नहीं। अतः कुण्डलिया रामायण में राम के सेतु-पार होते समय रामेश्वर की स्थापना अथवा सीता-त्रिजटा-संवाद आदि का पूर्ण उल्लेख न मिले, जिसका आधिकारिक कथावस्तु से कोई विशेष सम्बन्ध नहीं, तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है। कवि की भावुकता के विकास के साथ ही साथ उसकी रुचि और भावनाओं में परिवर्तन होते रहना स्वाभाविक बात है। यदि ऐसा न हो तो विभिन्न छन्दों तथा शैलियों में एक ही बात को बार-बार कहना आवश्यक न समझा जाय। वस्तु में मौलिकता और भावों में नवीनता लाना महाकवि का विशेष गुण होता है। रामजन्म की शोभा का वर्णन कुण्डलिया रामायण में अपने ढङ्ग का अनूठा हुआ है। उसके उपरान्त, अब शिवजी अङ्ग में भस्म लगाकर अवध-पुरी में राजा दशरथ के यहाँ जा रहे हैं।

"सम्भु चले अवधहिं भूपति के भसम अङ्ग लपटाई।
रामचन्द्र मुख समुझि सुधाकर चित चकोर ललचाई॥
चित चकोर ललचाइ नाद शृंगी को कीन्हे।
घर घर आगम कहत बोलि कौसल्या लीन्हे॥
कौसल्या गृह बोलिकै सुभ आसन आदर कर्‍यो।
सुत पायन तर लाइकै सम्भु हाथ माथे धर्‍यो॥"

शिवजी ने शिशु राम के दर्शनार्थ एक ज्योतिषी का रूप धारण किया है। कैसा सुन्दर बहाना है।

गीतावली में अग्रलिखित बालकाण्ड का चौदहवाँ छन्द है जो इसी प्रसङ्ग का है—

"अवध आजु आगमी एकु आयो।
करतल निरखि कहत सब गुनगन बहुत त परिचौ पायो।
जनम प्रसंग कह्यौ कौसिक मिस सीय-स्वयंबर गायो ॥
राम, भरत, रिपुदवन, लषन को जय, सुख सुजस सुनायो ॥"

बिल्कुल यही कथा कुण्डलिया रामायण में भी है। यहाँ कौशल्याजी बालक के गुण-दोषों के विषय में स्वयं प्रश्न करती हैं और कहती हैं कि तुम जो माँगोगे वही तुमको मिलेगा—

"..
करौ सुधा को भोग जनम भरि राम लषन के पीछे।
सुनि सुनि बचन हँसत मन सङ्कर मातु बैन सुनि आछे ॥"

तदुपरान्त शङ्करजी कहते हैं कि तुम्हारा सुत बड़ा भाग्यवान् है। इसके दर्शन मात्र से ही अन्तर के सब शूल नष्ट हो जाते हैं। कुछ दिन के बाद तुम इन्हें एक मुनि के साथ कर दोगी। फिर ब्याह की पत्रिका आवेगी और दशरथजी बड़े समारोह से इनका विवाह करके घर आवेंगे।

"अद्भुत कर्मनि करी सकल खलगन संघारन।
महि द्विज पालिय संत सोच सुर करिहि निवारन ॥"

फिर धनुषयज्ञ की सूचना देकर भरतजी के विषय में कहते हैं कि यह कौशल्याजी के पुत्र का मनसा वाचा कर्मणा भक्त होगा—

"...................................
मन क्रम बचन विसेषि राम पद प्रीति सुहावनि।
सोवत जागत ध्यान नाम रसना रस पावनि ॥
...."

इन दो पक्तियों में ही कुशल कवि ने भरत का कैसा सच्चा चित्र अङ्कित किया है। अब लक्ष्मणजी के विषय में बाबाजी कहते हैं कि इनकी प्रीति सब भाइयों से होगी और ये रण के प्रबल विजेता होंगे। फिर शिवजी कहते हैं कि सब भाइयों की सगाई राम के साथ जनकपुर में ही होगी।

"सुनती मन रानी मगन मुकता थार भराइ।
लेहु कह्यो हँसि कौसिला रामहिं दीन छुवाइ ॥"

तब सब रानियों ने हाथ जोड़कर विनती की कि मन्त्र पढ़कर इनके सब दोष हर लीजिए, तो शंकरजी बोले—

"बोल्यो जोगी जोगनिधि सुनहु कौसिला माई।
डीठि मूठि अनखानि अनरसानि दैहौं सकल बराई॥"

× × × ×

"शृङ्गी शब्द सुनाय चल्यौ मन हँसिकै जोगी॥"

गीतावली के इसी प्रसंग के अठारहवें छन्द की शब्दावली उपर्युक्त छन्द की दूसरी पंक्ति से बहुत मिलती हुई है—

"रोवनि धोवनि, अनखानि, अनरसानि, डीठि मुठि निठुर नसाइहौं।"

शङ्करजी आशीर्वाद देकर कैलाश को चले गये। महल में आमोद-प्रमोद होने लगे। अपने पुत्रों की अनुपम छवि देख राजा दशरथ और सारा रनिवास फूला नहीं समाता। माताएँ तो तन मन धन सब न्यौछावर किये देती हैं। गुरुजी से समय का विचार करा के राजा ने बालकों का चौर-कर्म करवाया। मँगतों को मुँहमाँगा दान दिया गया। सब लोग आशीर्वाद दे रहे हैं—

"चिरंजीव सब भाइ देत आसिष अनुकूले।
त्रय रानी के सुकृत सुतरु करहे अरु फूले॥" (कुं० से)

गीतावली के बालकाण्ड में २६ वें छन्द की एक पंक्ति यह है—

"दशरथ सुकृत मनोहर बिरवनि रूप करह जनु लाग।"

अर्थात् राजा दशरथ के चार पुत्र क्या हुए हैं, मानों उनके सुकर्मरूपी सुहावने पौदों में सुन्दर कल्ले फूटे हैं। उपर्युक्त दो पंक्तियाँ, जो कुण्डलिया से ली गई हैं, उनमें से दूसरी पंक्ति का भाव और अर्थ भी यही है और शब्द भी अधिकांश वे ही हैं। अन्तर इतना ही है कि "दशरथ" की जगह "त्रय रानी" है। कुण्डलिया की भाषा कुछ अधिक संगठित प्रतीत होती है, क्योंकि उसमें 'करह जनु लाग' की जगह 'करहे' इस एक शब्द से ही काम निकल आता है और 'मनोहर बिरवनि' की जगह 'सुतरु' भी ठीक बैठा है और अधिक परिमार्जित इसलिए है कि 'मनोहर' शब्द का काम 'सु' इस प्रत्यय ने अदा कर दिया है। इसके अतिरिक्त 'फूले' का भाव भी कुण्डलिया में अनूठा है। सारांश यह है कि कुण्डलिया रामायण की छोटी-छोटी पंक्तियों में गीतावली की बड़ी-बड़ी पंक्तियों से अधिक भाव भरा हुआ मिलता है। इस आधार पर हमें आभास मिलता है कि कुण्डलिया रामायण की रचना गीतावली से बाद की है। विशेष ध्यान देने की बात यह है कि गीतावली में जो बहुतेरे छन्द सूरसागर के मिलते हैं, उनका भावार्थ भी कुण्डलिया रामायण में कहीं नहीं मिलता, यद्यपि बाललीला का समुचित वर्णन मिलता है। इससे यह धारणा भी

विस्पष्ट हो जाती है कि गीतावली में जो छन्द सूरसागर के मिलते हैं वे वास्तव में सूरदासजी के ही हैं, जिन्हें राम के कुछ पुजारियों और तुलसी के भक्तों ने थोड़ा उलट-फेर करके गीतावली में मिला लिया है। यदि यह बात न मानी जाय तो हमारी उपर्युक्त दलील में अन्तर पड़ता है; क्योंकि यदि वे छन्द सूर के न होकर तुलसी के ही होते और फिर बाबाजी ने गीतावली के बाद कुण्डलिया रामायण का निर्माण किया होता तो उन छन्दों की झलक कुण्डलिया रामायण में बिना आये न रहती, पर बात तो और ही है। ये छन्द गोस्वामीजी ने स्वयं सूरसागर के उठाकर न रख लिये थे वरन् गोसाईंजी के बहुत बाद में सूरसागर के छन्द गीतावली में मिला लिये गये। हाँ, एक बात और कही जा सकती है। वह यह कि वे दो ब्राह्मणकुमार जो बनारस के किसी मन्दिर में तुलसीदासजी के पास रहते थे और जो अच्छे गायक थे, गुसाईंजी से जब गीत बनाने का अनुरोध करते तो सम्भवतः कुण्डलिया रामायण के आधार पर राग-रागिनियों में गीतों की रचना करके वे उन ब्राह्मण-कुमारों को दे दिया करते थे।

"सोरह सो सोरह विषै कामद गिरि ढिग वास।
सुभ एकांत प्रदेश महँ आये सूर सुदास॥"

बाबा बेणीमाधवदास के 'मूल गोसाईंचरित' में इसी प्रकार लिखा है—

"कवि सूर लिखा यह सागर को
सुचि प्रेम कथा नटनागर को।
तड़के एक बालक आन लग्यो
कल सुन्दर कंठ से गान लग्यो"।

हो सकता है कि उसमें शब्दों का कुछ बाहुल्य हो गया हो और इसी प्रकार गीतावली का निर्माण हुआ हो, पर यह बात कहना उस समय तक सङ्गत प्रतीत नहीं होता जब तक कुण्डलिया रामायण के निर्माणकाल और स्थान के विषय में समुचित रूप से कुछ प्रमाण न हो। अंतरंग सामग्री (Internal Evidence) के आधार पर अभी इतना ही कहना ठीक है कि कुण्डलिया रामायण की रचना गीतावली के बाद हुई।

गीतावली में स्वयंवर के प्रसंग में विश्वामित्रजी राम को धनुष-भंग करने की आज्ञा देते हैं तो जनक कहते हैं 'मेरे जी में द्विविधा है रावण और बाणासुर जिस धनुष को देखकर भाग गये उसे तोड़ने के लिए भला इन सुकुमार बालकों से कैसे कहा जाय! ये जो साहस कर रहे हैं उसका मूल कारण आप ही हैं।' इतना सुनकर दूसरे पद में विश्वामित्रजी ने जनक की मुक्त कंठ से प्रशंसा की। यह सुनकर राम से भी न रहा गया और तीसरे पद में उन्होंने भी जनक की प्रशंसा की, तत्पश्चात् धनुष उठाया। रामचरितमानस की भाँति

कुण्डलिया रामायण में भी उपर्युक्त वर्णन नहीं है। उसमें जनक अपने निराशा-पूर्णवचनों का उत्तर लक्ष्मण से पाकर संकुचित हुए और शीश झुकाकर बैठ गये। उसी समय विश्वामित्रजी ने राम को वाम कर से धनुष उठाने की आज्ञा दी न कि उसे तोड़ने की, जैसा कि मानस में मिलता है। उस समय राम प्रणाम करके मृग-राज की भाँति मञ्च से चले, न कि उदासीन होकर जैसा मानस में मिलता है। फिर मानस की भाँति कुण्डलिया रामायण में भी लक्ष्मण ने राम के मन की बात समझकर धरणीधारियों को सजग होकर पृथ्वी धारण करने के लिए सचेत कर दिया। तदुपरान्त राम ने धनुष को वाम कर से उठा लिया और खींचकर गगनमण्डल की भाँति कर दिया तथा उसके दो टुकड़े करके पृथ्वी पर रख दिये। धनुष टूटने का शब्द सारे ब्रह्मांड में छा गया।

गीतावली में धनुष टूटने पर परशुराम के आने का वर्णन नहीं है; किन्तु अन्य प्रसंगों में परशुराम-मिलन का उल्लेख एक बार बालकाण्ड में, दो बार सुन्दरकाण्ड में, एक बार लङ्काकाण्ड में और दो स्थलों पर उत्तरकाण्ड में हुआ है। अधोलिखित पंक्ति गीतावली उत्तरकाण्ड के ३८ वें छन्द से उद्धृत की जाती है :—

"जनकसुता समेत गृह आवत परसुराम अति मदहारी।"

इस पंक्ति से यह विदित होता है कि जनकपुर से अयोध्या आते समय राह में राम से परशुराम की भेंट हुई। कुण्डलिया रामायण में यज्ञ-स्थल पर ही परशुराम-आगमन होता है और लक्ष्मण एवं परशुराम का वाद-विवाद मानस के अनुसार ही है।

गीतावली में राम और लक्ष्मण का विवाह तो होता है, पर भरत और शत्रुघ्न के विवाह का उल्लेख नहीं है। कुण्डलिया रामायण में चारों भाइयों के विवाह होने का स्पष्ट वर्णन हुआ है। इसके अतिरिक्त गङ्गातट पर केवट और राम के बीच जो मार्मिक संवाद हुआ है और भरत के चित्रकूट जाते समय केवटों ने जो मार्ग रोककर युद्ध करने का प्रयत्न किया है वह भी गीतावली में नहीं है। ये दोनों वर्णन कुण्डलिया रामायण में बहुत अच्छे उतरे हैं और स्थान-स्थान पर मौलिकता की स्पष्ट छाप दिखाई देती है। उदाहरणार्थ—

"माँगी नाउ निहारि कै राम कहे मृदु बैन।
सुनत बात केवट कहै सुनिए राजिवनैन॥
सुनिए राजिव नैन रावरी पद-रज खोटी।
मानुष उड़ि-उड़ि जात काठ की गति है छोटी॥
गति है छोटी मोरि प्रभु बात कहौं डरु डारिकै।
रज मानुष की मूरि कछु माँगहु नाउ निहारि कै॥"

गीतावली में निषाद ने भरत को राम-लक्ष्मण के चित्रकूट से पंचवटी जाने की सूचना पत्रिका द्वारा दी थी। कुण्डलिया रामायण में इस बात का उल्लेख नहीं हुआ और न मानस में ही कोई ऐसा वर्णन आया है। गीतावली में जनक और वशिष्ठजी चित्रकूट नहीं जाते। राम-लक्ष्मण केवल अपने दोनों भाइयों से मिलते हैं और माताओं से भी मिलने का कोई स्पष्ट वर्णन नहीं है; कुण्डलिया रामायण में जनक तो चित्रकूट नहीं आते परन्तु वशिष्ठजी, सब माताएं और अयोध्या के सारे पुरवासी भरत के साथ चित्रकूट आते हैं और राम-लक्ष्मण अपने दोनों भाइयों से मिलकर केवट से मिलते हैं और उससे वशिष्ठजी का आगमन सुनकर दोनों भाई उनके चरणों में जाकर गिरते हैं, फिर सब माताओं से मिलते हैं।

गीतावली में सीताहरण हो जाने पर राम जब लौटकर आये और कुटी को सूना पाया तो बहुत व्याकुल हुए। उस समय देवताओं ने राम को सीता का समाचार दिया परन्तु कुण्डलिया रामायण में राम को सीताहरण की सूचना जटायु से ही मिलती है। सुग्रीव-मैत्री और बालि-वध का वर्णन गीतावली में नहीं है, लङ्का में हनुमान्‌जी और विभीषण की भेंट भी नहीं होती, परन्तु कुण्डलिया रामायण में ये सब प्रसंग मिलते हैं।

गीतावली का सीता-मुद्रिका-संवाद कुण्डलिया में नहीं मिलता। तुलसीसन्दर्भ के लेखक बा० माताप्रसाद गुप्त तो यहाँ तक कहते हैं—"यह प्रसङ्ग नितान्त अस्वाभाविक है और बाल्य-प्रयास ही प्रतीत होता है।" मानस में भी यह प्रसङ्ग नहीं आया। सच तो यह है कि ऐसे बनावटी प्रसङ्ग गोस्वामीजी के लिए अधिक उपयुक्त न होकर चमत्कारवादी केशव की मनोवृत्ति के अधिक निकटस्थ प्रतीत होते हैं।

गीतावली में विभीषण राम की शरण में जाने के पूर्व अपनी माता से मिलकर कुबेर के पास जाता है और वहाँ शिवजी उसे शीघ्र ही राम की शरण में जाने को कहते हैं। यह वर्णन न तो कुण्डलिया रामायण में है और न गोस्वामीजी के किसी अन्य ग्रन्थ में मिलता है। यहाँ पर यह कहा जा सकता है कि गीतावली में यह वर्णन पूर्ण रूप से लिखकर कवि ने अपने अन्य ग्रन्थों में इस प्रासङ्गिक कथा का उल्लेख करना आवश्यक न समझा होगा। भक्ति के आवेश में माता और भ्राता से अनुमति लेने न जाकर विभीषण का सीधे राम की शरण में चला आना अत्यन्त स्वाभाविक है; क्योंकि एक तो रावण ने उसका अपमान किया था और दूसरे वह जानता था कि राम ईश्वर के अवतार हैं।

लक्ष्मण को शक्ति लगने पर हनुमान् धवलागिरि लाते समय भरत का बाण लग जाने से पृथ्वी पर गिर पड़ते हैं। इस स्थल पर गीतावली में माताओं का उल्लेख भी हुआ है और सुमित्रा ने शत्रुघ्न को रण में भेजने के लिए बड़े ओजस्वी वचन कहे हैं, परन्तु कुण्डलिया रामायण में उस समय माताओं की उपस्थिति का कोई वर्णन नहीं है।

गीतावली पर कृष्ण-चरित्र का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है; क्योंकि उत्तरकाण्ड में राम के हिंडोलना तथा फाग का वर्णन है। परन्तु कुण्डलिया रामायण में ऐसी कोई बात नहीं है जिससे उस पर सूरसागर का प्रभाव मालूम पड़े।

गीतावली में सीता के निर्वासन तथा लव-कुश की बाल-क्रीड़ा का वर्णन भी है परन्तु मानस तथा कुण्डलिया रामायण में यह वर्णन नहीं है। ज्ञात होता है कि बाद के ग्रन्थों में सीता-राम के वियोग का वर्णन गोस्वामीजी ने आवश्यक नहीं समझा और इसी लिए राम-राज्य का वर्णन करने के बाद एक ग्रन्थ समाप्त करके दूसरा ग्रन्थ लिखना प्रारम्भ कर दिया।

उपर्युक्त कारणों से हमारी निर्भ्रम धारणा हो जाती है कि कुण्डलिया रामायण का निर्माण गीतावली के बाद हुआ है; क्योंकि गीतावली में जो बाल्य जीवन और मातृ-पक्ष हैं वे भी कवि की आदिम अवस्था के ही द्योतक हैं। कुण्डलिया रामायण का बाल्य-वर्णन तो गीतावली के ही टक्कर का है, परन्तु मातृ-पक्ष-चित्रण इतना अधिक नहीं है। गीतावली में कौशल्या का पुत्र-विरह-वर्णन तीन स्थानों पर आया है—एक तो जब राम-लक्ष्मण को विश्वामित्र यज्ञ-रक्षा के लिए ले गये थे; दूसरे, भरतादि के साथ चित्रकूट में राम को छोड़कर अयोध्या लौटने के बाद और तीसरे वनवास की अवधि समाप्त होने पर। कुण्डलिया रामायण में राम-वन-गमन के बाद भरत के अयोध्या आने पर कौशल्या पुत्र-विरह का पूर्ण विकलता लेकर सामने आती हैं, जब वे इतनी दुर्बल हो गई हैं कि भरत को हृदय से लगाने के लिए उठती हैं तो गिर पड़ती हैं और फिर भरत को छाती से लगाकर आँगन में दूसरी बार गिर पड़ती हैं। माता की यह अशक्तता देखकर भरत और शत्रुघ्न करुणा करके रोने लगते हैं किन्तु 'मानस' में यही एक विवेकमयी माता हो जाती हैं, जिन्हें मोह नहीं व्यापता। इन तीनों ग्रन्थों में कौशल्या के चरित्र-चित्रण में जो अन्तर है उससे हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि कुण्डलिया रामायण की रचना गीतावली और रामचरितमानस के बीच की है।

—

कवितावली

कवितावली एक मुक्तक काव्य है जिसके छन्दों की रचना समय-समय पर होती रही होगी और काण्ड-क्रम से उनका संग्रह गोस्वामीजा के देहान्त के उपरान्त हुआ होगा। बाबा वेणीमाधवदास के अनुसार सं० १६२८ में गोस्वामीजी ने सीतावट के नीचे कुछ सुन्दर कवित्तों की रचना की और कवितावली में ३ छन्द ऐसे हैं भी, जिनमें सीतावट की प्रशंसा की गई है। परन्तु ग्रन्थ को ध्यान-पूर्वक पढ़ने से यह निर्भ्रम धारणा हो जाती है कि इसमें कवि के अन्तकाल तक के कवित्त हैं।

कवितावली में स्फुट रचना होने के कारण कुण्डलिया रामायण के साथ उसका कथा की समुचित तुलना नहीं हो सकती, पर इसमें कुछ छन्द अवश्य ऐसे हैं जिनकी रचना मानस और गीतावली के बीच की प्रतीत होती है और कुण्डलिया रामायण के छन्दों से बहुत कुछ साम्य रखती है। गीतावली में लक्ष्मण-परशुराम-संवाद नहीं है, पर कवितावली में है और कुण्डलिया रामायण के उक्त प्रसङ्ग से बहुत साम्य रखता है। ऐसे ही अनेक प्रसङ्ग और भी हैं।

भावसाम्य के अतिरिक्त कुण्डलिया रामायण और कवितावली की भाषा में विशेष साहचर्य है। बात यह है कि उक्त दोनों ग्रन्थ व्रजभाषा में लिखे गये हैं और दोनों के छन्दों का प्रवाह भी मिलता-जुलता है। इसी लिए इन ग्रन्थों के क्रियारूप और कारक-चिह्नों में जितनी समानता है, उतनी गीतावली में भी नहीं है, यद्यपि वह ग्रन्थ भी व्रजभाषा में लिखा गया है। जैसे कवितावली में कवित्त, सवैया, घनाक्षरी और झूलना छन्दों के अतिरिक्त कुछ छप्पय छन्द भी मिलते हैं, इसी प्रकार कुण्डलिया रामायण में कई प्रकार की कुण्डलियों के अतिरिक्त कुछ छप्पय छन्द भी हैं। इन दोनों ग्रन्थों के अधिकांश छप्पय एक से हैं और शब्दयोजना एवं वाक्यांशों की गढ़न में विशेष समानता है। अन्तर केवल इतना ही है कि एक का प्रवाह कवित्त की भाँति है तो दूसरे में कुण्डलिया का लचीलापन और सिंहावलोकन की छटा स्पष्ट लक्षित होती है। क्यों न हो, तुलसी जैसे अद्वितीय कलाकार की प्रतिभा ऐसी ही बातों से जानी जाती है कि प्रत्येक रचना पर ऐसा रंग चढ़ा दे जिससे यह जानने में सुविधा रहे कि अमुक उद्धरण अमुक ग्रन्थ से लिया गया है। उक्त दोनों ग्रन्थों में सौंदर्य और मधुरता भी पर्याप्त मात्रा में हैं। यहाँ पर इन दोनों ग्रन्थों से एक-एक छप्पय उद्धृत करना असङ्गत न होगा और तुलनात्मक दृष्टि-निक्षेप भी हो जायगा।

जय जयंत जयकर अनंत सज्जन जन-रंजन।
जय विराध-वध-विदुष विबुध मुनिगण भय-भंजन॥
जय निशिचरी विरूपकरन रघुवंश-विभूषण।
सुभट चतुर्दश सहस दलन त्रिशिरा-खर-दूषण॥
जय दण्डकवन पावन करन तुलसिदास संशय शमन।
जग विदित जगत मणि जयति जय जय जय जय जानकिरमण॥

(कवितावली)

भूसुर सुर गो धरनि संत सज्जन के काजे।
प्रभु धार्‌यो तन मनुज दनुज मुनि विकल सुलाजे॥

लाजे खलगण मलिन नलिन द्विज उदय भानुकर।
अघ उलूक छिपि गये तेज अहिपुर सुरपुर धर॥
सुरपुर धर कुसुमावली जयति राम रघुबंस जय।
जय जय दसरथ कुल कलस अवधि नारि नर कहत मय॥

(कुण्डलिया रामायण)

उपर्युक्त दोनों छप्पय विभिन्न स्थलों के हैं परन्तु आत्मा दोनों की एक ही है। दोनों का सारांश यही है कि रामचन्द्रजी सज्जनों के आनन्द देनेवाले तथा दुष्टों का नाश करनेवाले हैं। दोनों छन्दों की भाषा में कितनी समानता है और भक्तिभाव का कितना सामंजस्य है, यह तो एक बार के पढ़ने से ही स्पष्ट हो जाता है। अनुप्रासों की छटा अलग दिखाई देती है। इसके अतिरिक्त 'जयति जय जय' का प्रयोग दोनों में एक सा है और दोनों छन्द एक ही लेखनी से निकले हुए ज्ञात होते हैं।

अब हम कुछ ऐसे क्रियारूप तथा कारकचिह्न उद्धृत करते हैं जो उपर्युक्त दोनों ग्रन्थों में मिलते हैं—कीजै; दीजै; लहौ; कहौ; भजित; भज्जहिं; धर्‍यो; कह्यो; भो; भाय सों; जानिए; विलोकिए; मुक्ख भरि; सुक्ख भरि।

——

६—वर्णाश्रमधर्म

मर्यादावादी गोस्वामी तुलसीदासजी वर्णाश्रम-धर्म के कट्टर अनुयायी थे। उनकी समझ में साम्यवाद सभ्य समाज के उपयुक्त कदापि न था। इस प्रकार के विचारों को वे कलियुगी मद के लक्षण मानते थे। इसी से कुण्डलिया रामायण में कलियुगी राजाओं का वर्णन करते हुए वे कहते हैं—

"दान न कौनेहु काल देव गुरु पितृ न मानहिं।
श्रीमद ते मति अन्ध वेद के पंथ न जानहिं॥"

इस प्रकार के विचार और व्यापार गोस्वामीजी के समय में अवश्य फैल रहे होंगे। उन्हीं का निराकरण करने के लिए अपने सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हुए वे बड़ी भावुक शैली में कहते हैं कि अन्य वर्णों के लोगों को ब्राह्मणों पर श्रद्धा और भक्ति करनी चाहिए। धनुषयज्ञ के स्थल पर श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणजी को समझाते हुए कहते हैं कि वीर और पुण्यात्मा पुरुष को मनसा, वाचा, कर्मणा ब्राह्मण-भक्त होना चाहिए—

यहै जाग जप नेम कपट तजि मन वच कायक।
सोइ सुकृती सोइ सूर जाहि द्विज-भक्ति अमायक॥

वे यह भी कहते हैं कि ब्राह्मणों की चरणरज ग्रहण करने से सब प्रकार से कल्याण होता है और अर्थ, धर्म, काम आदि सुखों की प्राप्ति होती है, मनुष्य के सङ्कट दूर हो जाते हैं और वह आशीर्वाद पाने से निर्भय हो जाता है। इसे हम गोस्वामीजी का पक्षपात या अपनी जाति का गुणगान कदापि नहीं कह सकते; क्योंकि एक तो वे वैरागी थे, दूसरे वे स्वयं दीनता के तो मानो अवतार ही थे; अतः उन्हें अपने पैर पुजवाने की आवश्यकता भी न थी। तीसरी बात यह कि उन्होंने तो प्राचीन प्रणाली का अनुसरण करते हुए वेद-विहित रीति-नीति का उपदेश मात्र कराया है। वह भी अपने उपास्य देव राम के द्वारा—

"गावत बेद पुरान कल्पतरु सम सुखदाता।"

इतना ही नहीं, वे ब्राह्मणों के भक्तों का भी गुणानुवाद करते हैं और उन्हें परम पवित्र मानते हैं—

सो त्रिलोक पावन परम जिनके द्विज-पद प्रीति।
विभ्रम श्रम ताको नहीं दिशा विदिस सब जीति॥

दिसा विदिस सब जीति मोह रिपुकटक भगावै।
जसदायक गुनग्राम राम अनुजहिं समुझावैं॥

जब समाज के हृदय में श्रद्धा की प्रवृत्ति होती है, तभी भक्ति का अंकुर फूटता है। अपने गुरुजनों में गुण देखकर उनके प्रति पहले श्रद्धा का विकास होता है, जिसका अवलम्ब पाकर अथवा जिसके प्रभाव से भक्ति प्रस्फुटित होती है। भक्त अपने सब कर्म उपास्यदेव को अर्पण कर देता है, तभी तो गोस्वामीजी अपने उपास्य देव श्रीरामचन्द्रजी से केवल इतना ही चाहते हैं—"बारक कहिए कृपालु तुलसिदास मेरो"।

श्रीरामचन्द्रजी स्वयं शिव के भक्त हैं। इस भक्ति का परिपाक भी उस श्रद्धा का फल है जो श्रीराम और लक्ष्मण को अपने गुरु विश्वामित्र के प्रति थी—

चले हरषि मुनि संग राम लछिमन मग माहीं।
बन उपबन मृग बिहँग बिटप लखि पूछत जाहीं॥

कैसा भोलापन है इस पूछने में। अपनी अनभिज्ञता प्रकट करना शील का लक्षण है। फिर गुरुजी इतिहास और पुराणों की कथाएँ सुनाते हैं और रामचन्द्रजी बहुत ध्यान-पूर्वक सुनते हैं। यह केवल संकोच नहीं है। इसी अवस्था में भक्ति-भावना प्रस्फुटित होती है; क्योंकि दोनों राजकुमार ब्रह्मचर्याश्रम व्यतीत कर रहे हैं। गोस्वामीजी ने ब्राह्मणों का आदर्श तो कई स्थलों पर समझाया है और क्षत्रियों को भी कई जगह शिक्षा दी है। साधु और दुष्ट राजाओं के गुण-दोषों का उल्लेख गोस्वामीजी ने दोहावली, सतसई, मानस आदि ग्रन्थों में कई स्थलों पर किया है; वही प्रवृत्ति यहाँ पर भी लक्षित होती है। धनुषयज्ञ के स्थल पर भाटों और चारणों ने लगभग पन्द्रह कुण्डलियों में जनकजी का प्रण सुनाते समय दुष्ट राजाओं के दोषों का उल्लेख करके ऐसे क्षत्रियों को धनुष उठाने से मना किया है जो अपने धर्म-कर्म में निरत नहीं हैं। फिर अच्छे राजाओं के गुणों का वर्णन करके उन्हें धनुष उठाने का साहस करने के लिए उत्साहित किया है। यहाँ पर गोस्वामीजी ने क्षात्र-धर्म का रहस्य बड़े अच्छे ढङ्ग से समझाया है। उदाहरणार्थ—

....

राखहिं नहीं सभीत मीत मन्त्री हित तोरैं।
पितु को बाँध्यो सेतु पुन्य सरि सर व्रत फोरैं॥
मान मर्दि द्विज धन हरैं त्रिय बालक बध कुल दहौ।
कहौं पुकारि पसारि कर ऐसे नृप धनु ना गहौ॥

अथवा "रिपु बल देखि भगाइ गाइ द्विज सन्त न मानहिं।
पर त्रिय पर धन हेतु देत सठ हठ बस प्रानहिं॥

जब कि मनु महाराज क्षत्रियों का धर्म बताते हुए कहते हैं—

"संग्रामेष्वनिवर्तित्वं प्रजानां चैव पालनम्।
शुश्रूषा ब्राह्मणानां च राज्ञां श्रेयस्करं परम्"॥ —मनुस्मृति

फिर अच्छे राजाओं का वर्णन बड़े गौरव से किया है—

यहि प्रकार के नृप धरैं शिव-पिनाक परचंड।
जिनके सत्य-प्रताप की ध्वजा दीप नव खंड॥
ध्वजा दीप नव खंड भूप हरिचन्द सु होई।
पृथु, रघु बेनु दिलीप सगर नागर सम कोई॥
भूप ययाति सुगाधि से सिवि दधीच नृप उच्चरैं।
बार बार प्रन उच्चरौं यहि प्रकार के धनु धरैं॥

इस प्रकार तुलसीदासजी ने विधि और निषेध दोनों मार्गों का दिग्दर्शन कराया है।

और भी "राम बुझावै अनुज को छत्रि बंस याही धरम।
द्विज पद रज नित सिर धरै सो त्रिलोक पावन परम॥"

फिर सीताहरण के उपरान्त वनों और पर्वतों से सेना एकत्र करके रावण जैसे शत्रु का संहार करने में राम ने जो अतुल पराक्रम और विजयोल्लास की गङ्गा-यमुना प्रवाहित की है उसमें क्षात्र-धर्म घुल गया है।

वैश्यों की सत्य-साधना, प्रेम-परायणता एवं कर्त्तव्य का निदर्शन भी कई स्थलों पर कराया गया है। राम-वनगमन के समय अयोध्या के नगरनिवासी भी अपना व्यापार त्यागकर उनके साथ हो लेना चाहते हैं। फिर भरतजी के साथ अनेक सेठ-साहूकार भी रामचन्द्रजी से लौटने की प्रार्थना करने के लिए चित्रकूट जाते हैं। रामचन्द्रजी के अयोध्या न लौटने पर बहुतेरे वहीं रह जाते हैं। इसके प्रमाण-स्वरूप चित्रकूट के आसपास और बाँदा ज़िले भर में अयोध्यावासी वैश्यों के हज़ारों घर आज तक बसे हुए हैं। अयोध्यावासी सुनार भी समृद्ध दशा में हैं। उच्च वर्ण के लोगों पर समाज के प्रति कर्तव्य और उत्तर-दायित्व का अधिक भार है, इसी लिए वे अधिक श्रद्धा और सम्मान के पात्र हैं।

तेज, शौर्य और अर्थ से प्रभावित होकर शूद्रों की सेवाविधि और द्विजातियों के प्रति उनके श्रद्धा के भाव तो उस एक ही घटना से स्पष्ट हो जाते हैं, जब निषाद ने 'प्रेम लपेटे अटपटे' वचन कहकर श्रीरामचन्द्रजी के चरण धोये थे। इसके अतिरिक्त द्विजातियों और शूद्रों का पारस्परिक प्रेमभाव भी एक ही उक्ति से प्रमाणित हो जाता है कि—

"राम-सखा रिसि बरबस भेंटा, जनु महि लुटत सनेहु समेटा।"

निषादराज वशिष्ठजी के चरण छूने में भी सङ्कोच करता था, पर मुनि ने उसे ज़बरन् उठाकर हृदय से लगा लिया।

रही आश्रमों की बात सो ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास इन चारों आश्रमों का विधान रामायण के पात्रों और चरित्रों में कूट-कूटकर भरा है। बात यह है कि गोस्वामीजी के समय में बहुत से लोग वर्णाश्रम-धर्म की निन्दा करना सभ्यता का चिह्न समझने लग गये थे। इसी से उन्होंने अपनी रचनाओं में अपने समय की झलक स्थल-स्थल पर दे दी है—

"बरन धरम नहिं आस्रम चारी, स्रुति विरोध रत सब नर-नारी।"

वेद-विहित मार्ग की उपेक्षा हो रही थी, लोग धर्म का वास्तविक रूप भूल चले थे, सबको अपना-अपना स्वार्थ अभीष्ट था—

कहत असत्य विचारि नारि वध ब्राह्मण कीन्हों।
आगत को संकल्प ऐंचि द्विज मुख ते लीन्हों॥ —कुं० रा०

लोक का यह धर्म-विरोधी रूप देखकर उन्हें बड़ा खेद हुआ। साथ ही ब्राह्मण और संन्यासी भी, जो धर्म के स्तम्भ माने जाते थे, कर्त्तव्य-भ्रष्ट हो रहे थे—

"विप्र निरच्छर लोलुप कामी, निराचार सठ वृसली स्वामी।
× × × × ×
बहु दाम सवारहिँ धाम जती, विषया हरि लीन्ह नहीं विरती॥"

अज्ञानी और आचारभ्रष्ट ब्राह्मणों को शठ कहा है और आडम्बरी यतियों तथा आसक्त वैरागियों की ओर संकेत करने में समय का प्रभाव भी निहित है। सत् और असत् के मेल का नाम ही संसार है। उसकी स्थिति के लिए उभय-पक्ष आवश्यक है। बात इतनी ही है कि कलियुग में असत् का पक्ष बलवान् बताया गया है, पर उसकी निन्दा की गई है। त्रेता में 'सत्' का प्रभाव अधिक व्यापक और दृढ़ था, इसी से रामायणों में तत्कालीन समाज का चित्र अंकित करते हुए गोस्वामीजी ने वर्णाश्रम-धर्म के तत्त्वों पर अधिक शुभ्र और विस्तृत प्रकाश डाला है।

ब्रह्मचर्याश्रम का दिग्दर्शन राम और लक्ष्मण की गुरु-सेवा तथा यज्ञ-रक्षा में हो चुका है। गार्हस्थ्य जीवन का चरम उत्कर्ष हम सीता और राम के शील, व्यवहार और पवित्र प्रणय में पाते हैं। उन्हें देखकर मार्ग के सब स्त्री-पुरुष सहानुभूति में तन्मय ही नहीं हो जाते, प्रत्युत पवित्र छटा पर सच्चे भाव से विमुग्ध भी हो जाते हैं। उनमें सौन्दर्य है तो आकर्षण, कर्त्तव्य है तो उसके निर्वाह की शक्ति, और शील है तो चरित्र में भी दृढ़ता दिखाई देती है।

गृहस्थावस्था के विषम पक्ष का दिग्दर्शन दशरथजी के चरित्र से सम्बन्ध रखनेवाली दुर्बलता, स्त्रैण प्रवृत्ति तथा सपत्नी-कलह में कराया गया है। जनकजी के चरित्र में गृहस्थ और वानप्रस्थ जीवन का अपूर्व, किन्तु स्वाभाविक मिश्रण मिलता है और अत्रि तथा अनसूया के आश्रम में विशुद्ध वानप्रस्थ की स्वच्छ ज्योति दृष्टिगोचर होती है। संन्यासाश्रम में राम-मय जीवन व्यतीत करनेवाले सुतीक्ष्ण, अगस्त्य, विश्वामित्र और वशिष्ठ आदि ऋषियों की सात्त्विक प्रवृत्ति धर्म की सुषमा का मनोहर रूप प्रकट कर देती है।

रामराज्य में हम इस धर्म का अत्यन्त प्रांजल और निखरा हुआ रूप पाते हैं। तमोगुण पर विजय प्राप्त करने के बाद सत्त्व का विशद स्वरूप सामने आता है, जो रजोगुण के संसर्ग से लोकनीति की स्थापना करके मर्यादावाद का आदर्श स्थिर कर देता है। यहाँ पर समाज को राम के नारायणत्व का पूरा परिचय मिल जाता है।

अलङ्कार-विधान

कविता को कमनीय कामिनी कहें तो राग, कल्पना और बुद्धि इन तीनों से निर्मित उसकी आत्मा होगी, शैली या व्यञ्जना-प्रणाली के शरीर पर भाषा का वस्त्र होगा और अङ्ग-प्रत्यङ्ग को आकर्षक बनाने के लिए अलङ्कारों को आभूषणों का स्थान मिलेगा। काव्य के लिए अलङ्कार अनिवार्य तो नहीं हैं पर उसे मनोहरता या प्रभावोत्पादकता प्रदान करने के लिए आवश्यक हैं; अन्तरात्मा के स्थायी धर्म न होते हुए भी बाह्य शरीर को सजानेवाले साधन हैं—उसके उपकारक या शोभाधायक हैं। विक्रम की छठी शताब्दी से नवीं शताब्दी के प्रारम्भ तक भामह, उद्भट, रुद्रट, रुय्यक आदि प्राचीन आचार्य्यों का तो यह मत था कि काव्य में अलङ्कार ही प्रधान हैं। इस धारणा का यही कारण कहा जा सकता है कि उस समय रस, औचित्य और व्यंग्य की ओर उनका समुचित ध्यान न जा सका था। वामन आदि रीतिवादी और दण्डी प्रभृति चमत्कारवादी आचार्य्यों ने "काव्यशोभाकरान् धर्मान् अलङ्कारान् प्रचक्षते" काव्य को सुशोभित करनेवाले धर्मों को ही अलङ्कार माना है। किन्तु इस परिभाषा में अतिव्याप्ति दोष है; क्योंकि माधुर्य आदि गुण भी काव्य की शोभा बढ़ाते हैं। मम्मट ने शब्द और अर्थ के उत्कर्ष को बढ़ानेवाले धर्मों को अलङ्कार माना है। पं० विश्वनाथ का कहना है कि अलङ्कार, रस का उपकार करनेवाले शब्द और अर्थ के अस्थिर धर्म हैं। पण्डितराज जगन्नाथ ने काव्य के चार भेद किये हैं—ध्वनि, गुणीभूत व्यंग्य, शब्दचित्र और अर्थचित्र, जिनमें से अन्तिम दो अलङ्कारमूलक ही हैं। आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्लजी के अनुसार 'भावों का उत्कर्ष दिखाने और वस्तुओं के रूप, गुण और

क्रिया का अधिक तीव्र अनुभव कराने में कभी कभी सहायक होनेवाली युक्ति ही अलङ्कार है।' यों तो प्रायः अलङ्कार-विधान कल्पना पर ही अवलंबित रहता है, क्योंकि अप्रस्तुत-योजना प्रस्तुत करना उसी का काम है; परन्तु कहीं-कहीं भावों की यथेष्ट व्यञ्जना करके रागों को पूर्णता प्रदान करने में भी अलङ्कार सहायक होते हैं। जिस प्रकार कल्पना की स्वाभाविक उड़ान ही काव्य का आवश्यक अङ्ग है (अतिरञ्जित, प्रयत्न-साध्य और अस्वाभाविक कल्पना से उक्ति में चमत्कार भले ही आ जाय, पर रस की श्री-वृद्धि नहीं हो सकती) इसी तरह से जिस कविता में अलङ्कारों का स्वाभाविक प्रयोग होता है, पाण्डित्य या चमत्कार प्रदर्शित करने की अपेक्षा प्रधानतः भावों की अभिव्यक्ति की ओर कवि का ध्यान रहता है, उसी में अलंकारों का प्रयोग उपयुक्त समझा जाता है। इसके उपरान्त उनका दुष्प्रयोग होने से कविता के अङ्ग शिथिल पड़ जाते हैं और भाव-व्यंजना विकृत हो जाती है। कुछ भी हो, अलङ्कारों के पक्ष और विपक्ष में आचार्यों ने चाहे जैसी दलीलें दी हों पर उनका पूर्ण बहिष्कार अब तक कभी नहीं हुआ।

गोस्वामीजी ने अलङ्कारों का बहुत तुला हुआ प्रयोग किया है, या यों कहिए कि कविता करते समय जिस स्थल पर अपने आप कोई अलङ्कार आ गया है उसे सँवार भले ही दिया हो, परन्तु ऐसा प्रयोग कहीं नहीं किया जहाँ उसने रस का प्रभाव दबा दिया हो। उत्कृष्ट कोटि के कलाकार होने के नाते उन्होंने अलङ्कारों का प्रयोग एक निर्दिष्ट विधान के अनुसार ही किया है। छन्दों की व्याख्या करते समय हमने यथास्थान अलङ्कारों की ओर भी समुचित निर्देश किया है, अतः यहाँ पर दो-चार उदाहरण देकर ही यह विषय समाप्त किया जायगा। सादृश्य-मूलक अलङ्कारों की योजना में तो गोस्वामीजी सिद्ध-हस्त थे। उपमा, उत्प्रेक्षा और रूपक आदि अलङ्कार गोस्वामीजी की कविता में मोतियों की तरह जगमगाते हैं। राम, लक्ष्मण और जानकी वन में चले जा रहे हैं। ग्रामवधूटियाँ सीताजी के मुखारविन्द का वर्णन करती हैं—

एक कहति मुख कमल सो और न पटतर ताहि।
अरुन सुबासित अति मृदुल सो सिय मुख अवगाहि॥

इस पूर्णोपमा में लालिमा, सुगन्ध और कोमलता मुख और कमल के साधारण धर्म हैं।

"भोर प्रयाग नहाइ कै राम लषन सिय साथ।
चले मनोहर मनहरन बन्दि चरन मुनिनाथ॥
बन्दि चरन मुनिनाथ मदन रति ऋतुपति मानौ।
ब्रह्म जीव के मध्य लसति माया छबि जानौ॥

माया छबिमय देखि धौं उमा सम्भु-गननायकै।
चले किधौं सुरपति सची भोर जयन्त लिवाइ कै ॥"

राम, जानकी और लक्ष्मण के सौन्दर्य में रसमग्न होकर कवि पहले कामदेव, रति और वसन्त की उत्प्रेक्षा करता है, फिर भक्ति में तल्लीन होकर विशिष्टाद्वैत की भावना से सीता माया की छवि का प्रसार ब्रह्म और जीव के बीच में देखकर तीनों को ब्रह्म, माया और जीव मानता है। अभी कवि को सन्तोष नहीं हुआ; क्योंकि वह नित्य अपनी आँखों से समाज में शैवों और वैष्णवों की 'तू-तू मैं-मैं' देखता है। इसी लिए तीसरी बार सीता, राम और लक्ष्मण के रूप में उमा, शम्भु और गणेश की स्थापना कर दी है। अब भी उसे सन्तोष नहीं। बात यह है कि गोस्वामी तुलसीदासजी स्मार्त थे। वे सब देवताओं को मानते थे, अत: ध्याता (कवि) अपने हृदय में ध्येय (राम) के प्रति भक्ति का परिपाक होने के बाद राम, जानकी और लक्ष्मण के रूप में इन्द्र, शची और जयन्त की उत्प्रेक्षा करता है। इन चारों उपमाओं में श्रद्धा और प्रेम का निर्मल स्रोत बहता हुआ प्रत्यक्ष सा प्रतीत होता है। यहाँ पर उत्प्रेक्षा और सन्देह से पुष्ट मालोपमालङ्कार है।

ग्राम-वनिताएँ सीताजी के मुख की उत्प्रेक्षा चन्द्रमा से करती हैं—

'सीता कलित सजोहि स्याम रेखा ससि माँहीं।
सिय मुख पर लट स्याम सुभग बरनत कवि ताही ॥'

सीताजी के मुख पर एक लट क्या बिखर पड़ी है, मानों चन्द्रमा में श्याम रेखा दिखाई देती है।

जनक की यज्ञशाला में जब रामचन्द्रजी पहुँचे तब उनका तेज देखकर अन्य राजाओं के मुख पर हवाइयाँ उड़ने लगीं—

'राम-रूप नृप देखि कै दुति मुख की भई छीन।
रवि-प्रताप निरखत मनहु उड़गन जोति मलीन ॥'

राम को देखकर राजागण ऐसे तेजोहत हो गये मानों सूर्य के उदय होते ही तारागणों का प्रकाश क्षीण पड़ गया हो। यहाँ पर केवल हेतु की उत्प्रेक्षा की गई है।

सीता और राम की भाँवरें पड़ रही हैं। इस स्थल पर श्रीरामचन्द्रजी की शोभा का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

'माथे मुकता मौर छबि नखत सहित दिनराज।'

यहाँ उपमान में विरोधाभास का समावेश किया गया है; किन्तु पूरी उक्ति में प्रतीयमान उत्प्रेक्षा के ही स्पष्ट दर्शन होते हैं।

रूपक बाँधने में तो गोस्वामीजी अपना कोई सानी ही नहीं रखते। सीताराम के विवाह के समय उन्होंने पावस का कैसा साङ्ग रूपक बाँधा है, देखिए—

'मघा मेघ दसरथ भये जाचक दादुर मोर।
सर सरिता द्विजगन भये बाढ़ि चले चहुँ ओर॥
बाढ़ि चले चहुँ ओर सलिल जनकादिक रानी।
पुर परिजन सब कृषी सुखी सुख सुन्दर पानी॥
सुन्दर पानी बुन्द मनि भूषन पट बरषत नये।
राम सिया पावस सुखद मघा मेघ दसरथ भये॥'

ऐसे ही अनेक रूपक कुण्डलिया रामायण में भरे पड़े हैं। छोटे छोटे रूपक तो एक ही एक पंक्ति में बहुत अच्छी तरह से सजा दिये गये हैं—जैसे—'रघुपति मुख छबि सरद ससि नैन चकोरनि लखि लगे।' शरत्-पूर्णिमा के चन्द्रमा की शोभावाले मुख को देखने के लिए चकोर जैसे नेत्रों की ही आवश्यकता है।

सीताजी के मुख के लिए जब कोई उपयुक्त उपमान नहीं मिलता, उस समय कवि अकस्मात् यह घोषणा करा देता है —

'सीता मुख सो मुख कहीं'।

इस उक्ति में अनन्वय अलंकार है; क्योंकि सीताजी के मुख के समान वही मुख है। चन्द्र और कमल आदि उसके उपमान नहीं हैं; वह अपना उपमान आप ही है। यह सब होते हुए भी कवि-कल्पना भला निश्चेष्ट होकर कैसे रह सकती है? उसे तो उपमान की हेयता दिखाकर उपमेय की महत्ता सिद्ध करनी है :—

चन्द मन्द दिन माहिँ राहु हिम सत्रु सदाई।
सीता-मुख रिपु नाहिँ लोक तिहुँ खोजहु जाई॥

यहाँ पर व्यतिरेक अलंकार है; क्योंकि चन्द्रमा जो सौन्दर्य में आदर्श (Standard of Beauty) समझा जाता है, सीताजी के मुख की समता नहीं कर सकता।

कुछ स्थल ऐसे भी हैं जहाँ कवि ने वर्ण्य विषय को अगम्य माना है और अपनी हीनता प्रकट करने के लिए निदर्शना की शरण ली है, यथा :—

मसक अंत किमि पावई गगन उड़ै करि नेम को।
तुलसिदास सठ क्यों कहै राम भरत के प्रेम को॥

राम और भरत के प्रेम का वर्णन करने में कवि उसी तरह से असमर्थ है, जैसे एक मच्छर चाहे जितना उड़ता रहे, आकाश को पार नहीं कर सकता।

श्रीरामचन्द्रजी गङ्गापार करने के लिए निषाद से नौका लाने के लिए कहते हैं, तो केवट उत्तर देता है—

'सुनियै राजिवनैन रावरी पदरज खोटी।
मानुष उड़ि-उड़ि जात काठ की गति है छोटी ॥'

आपकी चरण-रज बड़ी खोटी है, जिसे छूते ही मनुष्य उड़ जाते हैं, फिर काठ की तो गति ही क्या है ? इस उक्ति में व्याजस्तुति है क्योंकि निंदा के बहाने रामचन्द्रजी की चरण-रज की प्रशंसा की गई है।

रामराज्य में दुःख नाम को भी नहीं रह गये—

'रामराज राजत भयो गये सकल दुख भागि।
रोग दोष अपगति कुगति काल कर्म गुन त्यागि ॥'

यहाँ पर राग, दोष और अपगति आदि सब प्रस्तुतों में एक धर्म का संबंध है, वह है अपने-अपने गुण छोड़ना; अतः इस पद्य में तुल्ययोगिता अलङ्कार है।

वैसे तो गोस्वामीजी ने अपनी कविताओं में प्रत्येक शब्द चुनकर रक्खा है किन्तु आलङ्कारिक दृष्टि से स्थल-स्थल पर विशेष्य अथवा विशेषण का साभिप्राय प्रयोग करके परिकरांकुर तथा परिकर अलङ्कारों का बड़ा स्वाभाविक समावेश किया है; यथा—

'दीनदयाल दया करौ दीन जानि सिव मोहिं।
सीताराम सनेह उर सहज संत गुन होहिं ॥'

कवि शंकरजी से प्रार्थना करता है कि दीन जानकर मुझ पर दया कीजिए; क्योंकि आप दीनदयाल हैं। यहाँ पर 'दीनदयाल' शब्द का साभिप्राय प्रयोग हुआ है, इसलिए परिकरांकुर अलङ्कार है।

कुण्डलिया रामायण में सादृश्यमूलक अलङ्कारों के अतिरिक्त विरोधाभास, विभावना, विषम, असंगति और व्याघात आदि अलङ्कारों का भी अच्छा प्रयोग हुआ है। स्थान-संकोच के कारण यहाँ दो-एक उदाहरण ही दिये जाते हैं। विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा करते समय राम ने मारीच को बिना फल का बाण मारा—

'बान चलाहै अफल सफल करि होमविधानै।
बरषत सुर सुभ कुसुम असीसत कृपानिधानै ॥'

अफल बाण से यज्ञ को सफल करने में विरोधाभास अलङ्कार है।

राम-विवाह के स्थल पर लक्ष्मीजी राम से हँसकर कहती हैं—

'नारी चारि बिबाहियौ धनुष एक दलि गथ लहौ।
रमा कहति रघुनाथ सों सिय सूधी तुम चतुर हौ ॥'

धनुष तो एक ही तोड़ा, किन्तु चार स्त्रियों के साथ चारों भाइयों ने विवाह कर लिया। इसमें विषम अलंकार है।

निषाद ने राम को गङ्गा पार उतारने से पहले ही अपने वंश को भवसागर से पार कर दिया—

'कीन्ह पार परिवार को चरन-सुधा जल प्याइ।
पाछे पार उतारियौ निज कर कौसल-राइ॥'

यहाँ पर विभावना अलंकार है; क्योंकि कार्य करने से पहले ही निषाद को उसका फल मिल गया।

इस ग्रंथ में शब्दालंकारों की भी यथेष्ट योजना हुई है। गोस्वामीजी ने जैसी सानुप्रास भाषा लिखी है वैसी अन्यत्र ढूँढ़ने पर भी न मिलेगी। कुण्डलिया छंद में लाटानुप्रास होना तो एक साधारण बात है, वृत्त्यनुप्रास और छेकानुप्रास की छटा देखने योग्य है। नीचे दिये हुए उदाहरणों में वृत्त्यनुप्रास देखिए—

'कुमति कुकर्म कुरेख कपट कलि-कलुष-नसायक।'

अथवा

'काटि-काटि कण्ठनि कुतरु रे कुठार कुण्ठित भयो।'

छेकानुप्रास का अधोलिखित उदाहरण भी अनूठा है—

'गाजि गाजि धनु कर धर्‌यौ लाजि लाजि गे भाजि।
साजि साजि बल दल सबै राजा राज-समाजि॥'

ध्यान-पूर्वक देखने से उपर्युक्त उदाहरण में अनुप्रास के तीनों प्रकार मिलते हैं।

कहीं कहीं यमक की भी अद्‌भुत झलक दिखाई देती है; जैसे—

'धनु धनु सब को हर लयो'।

यहाँ 'धनु' शब्द में कैसी व्यंजना भरी है। धन का वाच्यार्थ तो सम्पत्ति है पर उससे सम्बन्ध रखनेवाला ऐश्वर्य लक्ष्यार्थ है। यहाँ पर 'धनु' शब्द बल की ओर संकेत करता है, अत: बल 'धन' का व्यंग्यार्थ है; क्योंकि बल का बोध कराने के लिए ही लक्षणा के द्वारा 'ऐश्वर्य' अर्थ ग्रहण किया गया है। धनुष ने सब राजाओं का बल हर लिया क्योंकि उसे कोई उठा भी नहीं सका। मानो धनुष के छूते ही राजाओं के पराक्रम और पौरुष का लोप हो गया हो।

गङ्गा पार करने के लिए जब राम ने केवट से नाव मँगाई तो वह सहम कर बोला—

'रावरी पद-रज खोटी'।

यहाँ पर 'खोटी' शब्द में अपूर्व व्यंजना है। विपरीत-लक्षणा द्वारा यहाँ केवट के प्रेम का आतिशय्य व्यंजित हो रहा है। निषाद स्वयं राम की चरणरज धोकर पवित्र

होना चाहता है, फिर वह खोटी कैसे हो सकती है ? वस्तुतः कहने का ढङ्ग ही वक्र है, जिसमें व्यंग्य निहित है। बात यह है कि निषाद साफ़-साफ़ यह नहीं कहना चाहता कि मुझे आपके चरण धोकर चरणोदक लेना है। उसके पास तो यह बहाना है कि 'पद-रज' के स्पर्श से पत्थर की चट्टान भी स्त्री बनकर उड़ गई, फिर मेरी नाव तो काठ की है। इसी लिए तो वह कहता है—

'रज मानुष की मूरि कछु माँगहु नाउ निहारि कै।'

महाराज, आप की चरणरज तो मनुष्य बनाने की जड़ी-बूटी के समान है, इसलिए सोच-विचारकर मेरी नाव माँगिए। यहाँ भी 'निहारि' का साधारण अर्थ है 'देखकर'; किन्तु मुख्य अर्थ का बोध होने से दूसरा अर्थ 'सोच विचारकर' ग्रहण किया गया है जो 'निहारि' शब्द का लक्ष्यार्थ है।

एक के बाद दूसरा राजा धनुष उठाने के लिए जाता है, पर जब धनुष तिल भर भी नहीं हटता तो लौटकर अपने आसन पर बैठ जाता है। ऐसे ही राजाओं को देखकर कोई भाट धीमे स्वर में व्यंग्य करते हुए कहता है—

'नैन तरेरे भाट कह मातु जने कहुँ तरु तरे।
कोदौं कने अहार कै एक तजै एकै धरै॥'

माताओं ने कुदई और कने खा-खाकर इन राजाओं को उत्पन्न किया है। इस उक्ति में कोई गूढ़ व्यंग्य नहीं है; क्योंकि माताओं के कुदई आदि साधारण धान्य खाने से संतान के निर्बल होने की ओर संकेत किया गया है। उक्ति के शब्दार्थ से ही अभिप्रेत अर्थ का अनुसरण सा निकलता प्रतीत होता है। व्यंग्य का क्रम स्पष्ट दिखाई देता है, इसी से यहाँ पर अर्थ-शक्तिमूलक संलक्ष्यक्रम व्यंग्य है।

—सत्यनारायण पाण्डेय

काण्ड-सूची
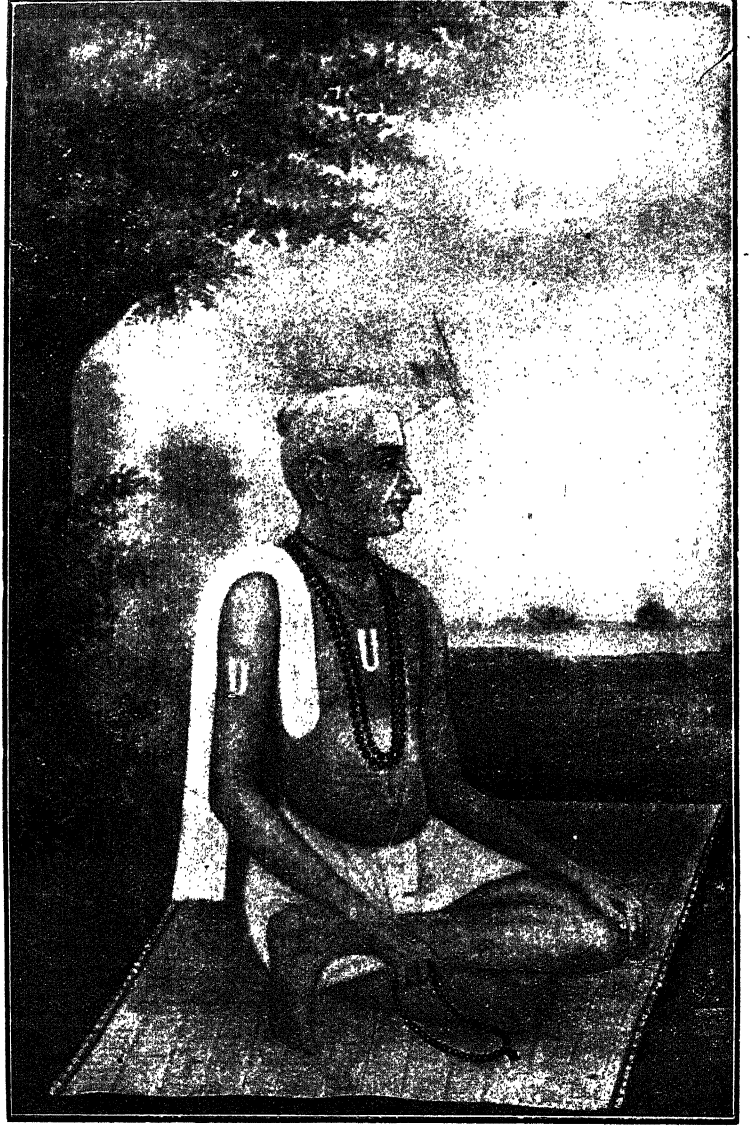
गोस्वामी तुलसीदास

बालकाण्ड

कुण्डलिया

* सकल अमंगल दहन दुख, गजमुख सब सुखदानि।
मति गति रति रघुपति चरन, बिघन हरन की बानि॥
बिघन हरन की बानि जानि, सज्जन सब गावत।
भुक्ति मुक्ति बरदेस, सेस संकर सुर ध्यावत॥
संकर ध्यावत सेस सुर, रिपुगन घन खल जन गहन।
कह तुलसिदास संकर-सुवन, भजत भक्त भवभयदहन॥१॥

दीनदयाल दया करौ, दीन जानि सिव मोहिं।
सीता राम सनेह उर, सहज संत गुन होहिं॥
† सहज संत गुन होहिं, जथाप्रद लाभ दुःख सुख।
‡ कर्म बिबस जहँ जाउँ, तहाँ सियराम कृपा रुख॥
राम कृपा रुख नित रहै, जगत जनित संसय हरौ।
कह तुलसिदास संकर उमा, दीनदयाल दया करौ॥२॥

---

* "राम नाम गति राम नाम मति राम नाम अनुरागी" (विनयपत्रिका ६५)

(१) अमंगल दहन दुख = अमंगल और दुःख को हटानेवाले। गजमुख = गणेश जी। मति = बुद्धि। गति = चाल, शरण, पहुँच। रति = प्रेम। बानि = बाना, आदत, प्रण। भुक्ति = भोग। बरदेस = 'बरदायक बरदानि', वर देनेवालों के स्वामी। घन = बहुत से। दहन = जलानेवाले। भवभयदहन = संसार का डर दूर करनेवाले। यहाँ पर दीपक अलंकार है। द्वितीय पंक्ति में चार बार 'ति' आने से तथा कई बार 'न' आने से वृत्त्यनुप्रास है।

† "जथा लाभ संतोष सदा काहू सों कछु न चहौंगो" (विनयपत्रिका १७२)

‡ "जनम जनम जहँ जहँ तनु तुलसिहिं देहु,
तहँ तहँ राम निबाहब नाम सनेहु।" (बरवै रामायण, उ० कां० ७६)

(२) सहज = स्वाभाविक, सरल। बिबस = वशीभूत होकर। कृपा रुख = दया-दृष्टि। जथाप्रद लाभ दुःख सुख = दुःख और सुख में समान भाव रहे। प्रथम पंक्ति में वृत्त्यनुप्रास है।

* रामचरित सत कोटि सेस सारद सिव भाषे ।
नारद सुक सनकादि बेद कहि बीचहि राखे ॥
बीचहि राखे चरित पार कहि पावत नाहिन ।
कहि कहि हारे सकल राम जस कहत सिराहि न ॥
नहिं सिराहिं रघुबीर गुन, सो तुलसी मन मैं डरित ।
भजन भाव बेदन कहा, कहे चरित भवनिधि तरित ॥३॥

† पुत्रजज्ञ नृप कीन जोरि मुनि गन द्विज कुलवर ।
कह बसिष्ठ भै सिद्धि दीनि, हवि लै प्रसाद कर ॥
लै प्रसाद कर दीन देहु भामिनि नृप जाई ।
सुनि दसरथ मन हर्ष सकल प्रिय नारि बुलाई ॥
नारि बुलाई कौसिला, कैकेई जुग भाग करि ।
मन प्रसन्न रानी नृपति, दीन सुमित्रहिं हाथ धरि ॥४॥

---

* "रामचरित सतकोटि महँ लिय महेस जिय जानि" (रा० च० मा०, बालकाण्ड २५)
"रामचरित सत कोटि अपारा, स्रुति सारदा न बरनै पारा" (रा० च० मा०, उ० कां०)

(३) बीचहि राखे = बीच ही में छोड़ दिये, पूर्ण रूप से न कह सके। सिराहि न = समाप्त नहीं होते। मन मैं डरित = मन में संकोच तथा भय होता है। भवनिधि तरित = संसार-सागर पार हो जाता है।

† "पुत्र जागु करवाइ ऋषि राजहिं दीन्ह प्रसाद,
सकल सुमंगल मूल जग भूसुर आसिरबाद"। (रामाज्ञा, सप्तक २)
"यह हवि बाँटि देहु नृप जाई, जथा जोग जेहि भाग बनाई।
कौसल्या केकई हाथ धरि, दीन सुमित्रहिं मन प्रसन्न करि" ॥ (रा० च० मा०).
इस छंद में स्वभावोक्ति अलंकार है।

(४) पुत्रजज्ञ = जो यज्ञ पुत्र की इच्छा से किया जाय। भै सिद्धि = सफलता प्राप्त हो गई। हवि = आहुति की सामग्री।

मंगलमई बिचित्र दुति, प्रगट भई गृह आनि।
ब्रह्म सच्चिदानन्द उर, प्रगट भये सुख खानि॥
प्रगट भये सुखखानि हानि दारिद दुख नास्यो।
देवन लहेउ अनन्द मही मन मोद प्रकास्यो॥
महीमोद द्विज सकल सन्त सज्जन जस गावत।
ब्रह्मादिक सब देव अवधि नृप घर चलि आवत॥
आवत बरषत सुमन घन, तुलसी कहि जै जै जई।
नाक नगर अहिपुर भुवन, प्रगट भई मंगलमई॥५॥

छप्पय

* मास भयो सुभ बार जोग बर नखत बिराजत।
तिथि नभ जल महि बिमल दिसाबिदिसा सब भ्राजत॥
भ्राजत सरजू अवधि देवगन जै उच्चारत।
बरषत सुमन प्रसंस हंस निज बंस निहारत॥
हारत खल गन मन मलिन, प्रगट भये सुख दुख गयो।
तुलसी रघुपति प्रगट भे, मास एक को दिन भयो॥६॥

---

(५) मंगलमई=कल्याण करनेवाली। दुति (द्युति)=प्रभा, प्रकाश। नाक=आकाश। अहिपुर=पाताल। 'मही मन मोद' में वृत्त्यनुप्रास है। 'जै जै' में वीप्सा अलंकार है। अंतिम पंक्ति में द्वितीय अल्प अलंकार है; क्योंकि एक ही काल में विचित्र द्युति आकाश पाताल और पृथ्वी में प्रकट हुई।

* "जोग लगन ग्रह बार तिथि सकल भये अनुकूल।
चर अरु अचर हरष जुत, राम जनम सुख मूल।"
"मास दिवस कर दिवस भा मरम न जानइ कोइ,
रथ समेत रवि थाकेउ निसा कवन बिधि होइ।" (रा० च० मा०)

(६) मास भयो सुभ बार जोग=उस दिन का योग एक महीने का हो गया। बर=श्रेष्ठ, अच्छे। हंस=सूर्य।

* सुनि भूपति सुत जन्म मगन नहिं देह सम्हारत।
उठे भवन कहँ दौरि बोलि कुलगुरुहिं प्रचारत॥
गुरुहिं प्रचारत चले बिप्र सँग लै मुनिनायक।
भूत भौष्य ब्रतमान ज्ञान सब जानन लायक॥
† लायक सुत मुनि समुझिकै, जात कर्म सब विधि कियो।
हेम हीर नीरज सुपट महि हय गय भूपति दियो॥७॥

‡ जाचक जो जेहि काज ताहि नृप पूछि दिवावत।
बृन्द बृन्द बर नारि बिमल सुर सोहिल गावत॥
गावत सोहिल सुनत भूप हँसि हेरि बुलावत।
पट भूषन मनि माल लाल सुख ते पहिरावत॥
पहिरावत गज तुरग रथ, सर्बस दै दै छाँड़ि छल।
पुनि तुलसी जहँ तहँ भरो रामकृपा सब वाहि थल॥८॥

---

* "सुनि दसरथ सुत जन्म लिये सब गुरु जन बिप्र बुलाई।" (गीतावली ४)
† "जातकर्म करि पूजि पितर सुर दिये महिदेवन दान॥" (गीतावली ७)

(७) प्रचारत=(प्रसन्न होकर) ज़ोर से बुलाते हुए। नायक=श्रेष्ठ। जात कर्म=जन्म के समय के कर्म, नान्दीमुख श्राद्ध आदि। हेम=सुवर्ण। नीरज=मोती गय (गज)=हाथी। यहाँ पर स्वभावोक्ति अलंकार है।

‡ "देत भूप अनुरूप जाहि जोइ सकल सिद्धि गृह आई।" (गीतावली ६)

(८) जाचक (याचक)=माँगनेवाला। बृन्द=समूह, झुंड। सोहिल=सोहर छंद, यह गाना पुत्र होने पर गाया जाता है। पट=वस्त्र, कपड़े। सर्बस दै दै छाँड़ि छल=कपट छोड़कर सब कुछ दे रहे हैं। 'बृन्द बृन्द' और 'दै दै' में वीप्सालंकार है। अनुप्रास तो प्रत्येक पंक्ति में है।

पुरी मगन नर नारि बर्ण चारिउ प्रसन्न सब।
प्रति गृह गावत गीत कलस मनि बंद भरी छब॥
* भरी चौक गज मुक्त अगर कुंकुम मृगमद घन।
कुसुम सुगन्ध अबीर रहेउ भरि दिसा बिदिसि सब॥
दिसा बिदिसि सुख भरि रह्यो, भामिनि बहु प्रगटी दुरी।
अहि नाक भूमितल सुख भरयौ, जिमि सुख भौ रघुपतिपुरी॥९॥

भूप भामिनी दोऊ सुखद सुत सुंदर जाये।
† कर्म क्रिया सो करे तोषि जाचक पहिराये॥
पहिराये मन मोद चारि सुत लखि सुख राजा।
रानी परम हुलास दास दासी सब साजा॥
साजा सहर अनन्द सब बाजा बहु बाजन लगे।
सब कोउ कहत सराहिकै भाग भाल सुख के जगे॥१०॥

---

* "बीथिन बीच अरगजा अगर अबीर उड़ाई।" (गीतावली ८)
"मृग मद चंदन कुंकुम कीचा, मची सकल बीथिन बिच-बीचा।
अगर धूम बहु जनु अँधियारी, उड़इ अबीर मनहु अरुनारी॥" (रा० च० मा०)

(९) वर्ण चारिउ=ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। मनि बंद=मणियों के बंदनवार। छब (छबि)=शोभा। कुंकुम=केसर। मृगमद=कस्तूरी। प्रगटी दुरी=आईं और चली गईं।

† "बेद-बिहित करि क्रिया परम सुचि आनँद उर न समाई।" (गीतावली ४)

(१०) तोषि=संतुष्ट करके। सराहिकै=प्रशंसा करके।

इस पद्य में अनुप्रासों की अच्छी छटा है। रामचन्द्र जी के जन्म से सबके भाग्य खुल गये।

* भूसुर सुर गो धरनि संत सज्जन के काजे ।
प्रभु धारयो तन मनुज दनुज मुनि बिकल सुलाजे ॥
लाजे खल गन मलिन नलिन द्विज उदै भानुकर ।
अघ उलूक छिपि गये तेज अहिपुर सुरपुर धर ॥
सुरपुर घन कुसुमावली, जयति राम रघुबंस जै ।
जय जय दसरथ कुल कलस, अवधि नारिनर कहत भै ॥११॥

† गृह गृह बजत बधाव नारि नर अवध अनन्दित ।
चौक कलस प्रतिद्वार लसत सुरतियगन बन्दित ॥
बन्दित सुरगन सुमुखि बन्दि मन बिप्र बेद धुनि ।
भरि भरि मुक्ता थार देखि सुत भागि अधिक गुनि ॥
अधिक गान सोहत भवन, राम जन्म मङ्गल सजत ।
नर नारि बारि तन धन सबै पुर सुर जै दुन्दुभि बजत ॥१२॥

---

* "सुखी भये सुर, संत, भूमिसुर, खल गन मन मलिनाई ।" (गीतावली १०)

(११) भूसुर=ब्राह्मण । 'भूसुर सुर' में यमक अलंकार है । काजे=लिए । दनुज=राक्षस । नलिन=कमल । द्विज (द्विजाति)=ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य ; पक्षी ; चन्द्रमा । भानुकर=सूर्य की किरणें । अघ=पाप । अहिपुर=(नागलोक) पाताल । सुरपुर=स्वर्ग । धर=(धरा) पृथ्वी ; धारण किया । कुसुमावली=फूलों की पंक्ति=लाइन । कहत भै=कहा । कवितावली उत्तरकांड छंद ११३ से तुलना कीजिए । छेकानुप्रास ।

† "गृह गृह बाज बधाव सुभ प्रगटे सुषमा कंद ।" (रा० च० मा०)

'बजत', ब्रजभाषा का रूप है और बाज अवधी का है ।

(१२) गृह=घर । बजत बधाव=बधाइयाँ बजती हैं । प्रतिद्वार=हर एक दरवाज़े पर । लसत=शोभित हैं । सुरतियगन=देवताओं की स्त्रियों के समूह । सुमुखि=(अच्छे मुखवाली) स्त्रियाँ ।

नाम धरयो मुनि हेरि राम पुनि भरत लखन बर।
सत्रु समन सुभ नाम दीन्ह मुनि लिखि भूपति कर॥
भूपति रानिन दीन्ह मगन तन लहेउ सकल सुख।
गान निसान प्रमान धरनि आकास एक रुख॥
एक टेक बरषत सुमन, मन मलीन खल गन भये।
* चारि चारु सुन्दर सुवन सुकृत भूप तरु फल नये॥१३॥

सुन्दर सुत बर गोद मोद भरि मातु दुलारत।
निरखि बदन छबि सिन्धु सकल तन मन धन बारत॥
बारत तन मन देव भूप के भाग सराहत।
सिव सनकादिक ब्रह्म छिनहि छिन मन सुख चाहत॥
चाहत नित आवत अवधि, मङ्गलमय मूरति लखत।
राम जन्म सुख रस रसिक, तुलसिदास नैननि चखत॥१४॥

---

* "तनु पुलक पुनि पुनि देखि अपने सुकृति सुरतरु फल नये" (रा० च० मा०, बा० कां० ३२४)
"दसरथ रूप मनोहर बिरचनि रूप करह जनु लाग।"
(गीतावली, बा० कां०, छंद २६)

(१३) भूपति कर=राजा (दशरथ) के हाथ में। निसान=नगाड़े की चोब। धरनि आकास एक रुख=पृथ्वी और आकाश में एकसा (शब्द गूँज रहा था)। एकटेक=लगातार। सुकृत (अच्छे कर्म)=पुण्य। राजा के पुण्य-वृक्ष में चार पुत्ररूपी नये फल लगे हैं।

(१४) बर=श्रेष्ठ। मोद भरि=आनन्द में विभोर होकर। दुलारत=प्यार करके खिलाती है। बदन=मुख। छबिसिंधु=सौंदर्य का सागर। बारत=निछावर करती है। सराहत=प्रशंसा करते हैं। सनकादिक (ब्रह्मा के ४ पुत्र) सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार। चाहत=अभिलाषा रखते हैं।

"नैननि चखत" कैसा सुंदर प्रयोग है। 'चखत' का अर्थ लक्षणा से 'पीता है', स्वाद लेता है।

कुण्डलिया

* माई बालक अनरस्यौ, दूध पियत नहिं आजु ।
रोवत सोवत नेकु ना, दुष्ट नजरि की साजु ॥
दुष्ट नजरि की लगी रहै नहिं बैठे ठाढ़े ।
बड़ौ सोच उर भयौ नीर नैननि ते बाढ़े ॥
बाढ़े करुणा कौसिला, हाथ दिवावत धाइकै ।
पालन गोद पियाइ पय, राम सुवाये आइकै ॥१५॥

† संभु चले अवधहिं भूपति के भसम अंग लपटाई ।
रामचन्द्र मुख समुझि सुधाकर चित चकोर ललचाई ॥
चित चकोर ललचाइ नाद भृङ्गी को कीन्हे ।
घर घर आगम कहत बोलि कौसिल्या लीन्हे ॥
कौसिल्या गृह बोलिकै, सुभ आसन आदर कर्यौ ।
सुत पायन तर लाइकै, सम्भु हाथ माथे धर्यौ ॥१६॥

---

* आजु अनरसे हैं भोर के पय पियत न नीके ।
रहत न बैठे ठाढ़े पालने झुलावत हू ।
रोवत राम मेरो सो सोच सबही के ॥ (गीतावली, बा० कां०, छंद १२)

(१५) अनरस्यौ = रूठ गया है, मलिन है । नेकु = थोड़ा भी । नजरि = नज़र लगना । रहै नहिं = रोना बंद नहीं करता । हाथ दिवावत = हाथ से थपकी देती है, राम जी के सिर पर बूढ़ी स्त्रियों से हाथ फिरवाती है ।

† "अवध आजु आगमी एकु आयो ।
करतल निरखि कहत सब गुनगन बहुत न परिचौ पायो ॥" (गी० बा० छंद १४)

(१६) सुधाकर = चंद्रमा । भृंगी = मुँह से फूँककर बजाया जानेवाला एक बाजा । आगम = भविष्य की बात, ज्योतिषशास्त्र । बोलि लीन्हे = बुला लिया । पायन तर लाइकै = पैरों के तलुए छूकर ।

साईं याके गुन कहौं, जो कछु यामैं होय।
सब गति जानत सबहि की, तुमहिं कहत सब कोय॥
सब कोई परिचौ कहत, बड़े जोगनिधि जोगी।
जो मगिहै दैहौं सोइ तोको करौं सुधा को भोगी॥
करौ सुधा को भोग जन्म भरि राम-लषन के पाछे।
सुनि सुनि बचन हँसत मन संकर मातुवचन सुनि आछे॥१७॥

माई बालक तोर यह, बड़ो भाग को मूल।
याके दरसन जातु है, सब अन्तर को सूल॥
सब अन्तर को सूल हरी याते सुख पैहौ।
कछु दिन बीते सुनौ एक मुनि सँग करि दैहौ॥
दैहौ मुनि सँग लाइ ब्याह पुनि पाती आई।
दसरथ सहित विवाहि कुसल घर अइहैं माई॥१८॥

---

(१७) परिचौ = परिचय। निधि = खानि। सुधा = अमृत। आछे = अच्छे।
"सँग सिसु सिष्य सुनत कौसल्या भीतर भवन बुलायो।
पायँ पखारि पूजि दियो आसन, असन बसन पहिरायो॥ (गीतावली)

(१८) 'भाग को मूल' = भाग्य की जड़। अंतर को सूल = हृदय का ताप, दुःख, काँटा। हरी = हर लेगा। सहित = (श्लेष) साथ; प्रेमयुक्त।

लै लै गोद कमल कर निरखत, उर प्रमोद न अमायो।
जनम प्रसंग कह्यो कौसिक मिस सीय स्वयंबर गायो॥ (गीतावली १४)

छप्पय

अद्भुत कर्मनि करी सकल खलगन संघारन।
महि द्विज पालिहि संत सोच सुर करिहि निवारन॥
करिहि निवारन दोष मातु पितु आज्ञाकारी।
तोरिहि सिव कोदण्ड सुजस तिहुँ पुर बिस्तारी॥
बिस्तारी सुख संपदा, सुनु कौसिल्या तोर सुत।
वचन मृषा बोलत नहीं, मानु प्रतीति सनेह जुत ॥१९॥

कहौं केकई सुवन को, लक्षण सब कर देखि।
कौसिल्या सुत भक्त यह, मन क्रम बचन विसेषि॥
मन क्रम बचन विसेषि राम पद प्रीति सुहावनि।
सोवत जागत ध्यान नाम रसना रस पावनि॥
पावनि तिरहुति ब्याहिहौ, याते सुख सम्पति लहै।
सुजस सिन्धु साँचो सुवन समुझि रेख आगम कहै ॥२०॥

---

(१९) संघारन = नाश करनेवाला। द्विज पालिहि संत = द्विजाति और संत दोनों की रक्षा करेगा। यहाँ देहरी-दीपक अलंकार है। करिहि निवारन = दूर कर देगा। कोदण्ड = धनुष। बिस्तारी = फैलावेगा। मृषा = झूठ। प्रतीति = विश्वास। जुत = साथ।

(२०) लक्षण = ज्योतिष के अनुसार गुण-दोष। कर देखि = हाथ देखकर। मनक्रम-बचन = मनसा-वाचा-कर्मणा। विसेषि = विशेष रूप से। नाम रसना रस पावनि = नाम के रस में (डूबकर) जीभ पवित्र रहती है। तिरहुति = जनकपुर में। रेख = हाथ की रेखा। आगम = भविष्य में होनेवाली घटना ; शास्त्र।

सुनहु लखन की मातु सुलच्छन सुवन तुम्हारे।
निज भाइन से प्रीति प्रबल रन के जितवारे ॥
जितवारे बलबाहु गुननि पूरे सब भाई।
रामसङ्ग सुभपुरी तहाँ सब होइ सगाई ॥
होइ सगाई जनकपुर, जनक कन्यका आनिकै।
सत्य जानु रानी बचन झूठ न कहौं बखानिकै ॥२१॥

कुण्डलिया

सुनतै रानी मन मगन, मुक्ता थार भराइ।
लेहु कह्यौ हँसि कौसिला, रामहिं दीन छुवाइ ॥
रामहिं दीन छुवाइ माथ धरि देउ असीसै।
बालक करहु कल्यान डीठि मुठि डारहु खीसै ॥
खीस करहु प्रभु रोग सकल मन्त्रनि पढ़ि बानी।
बोली डारे सुवन हाथ जोरे सब रानी ॥२२॥

---

(२१) गुननि = गुणों में। आनिकै = लाकर।

(२२) कल्यान = मङ्गल। डीठि = कुदृष्टि, नज़र लगना। मुठि = टोना। डारहु खीसै = नष्ट कर दो। डारे सुवन = गोद में पुत्रों को लिये हुए, अथवा शिव के चरणों में पुत्रों को डाल दिया।

बोल्यौ जोगी जोगनिधि, सुनहु कौसिला माई।
* डीठि मूठि अनखानि अनरसनि दैहौं सकल बराई॥
दैहौं सकल बहाय बाल कबहूँ नहिं रोई।
पलका गोद हिँडोल सुमुख सब थल सिसु सोई॥
सब थल सिसु सुख रही होइ नहिं कबहूँ रोगी।
भृङ्गी सब्द सुनाय चल्यौ मन हँसिकै जोगी॥२३॥

भूपति रानी मन मगन, सिसु सब अतुल निहारि।
गोद मोद मन गावतीं, राम दुलारि दुलारि॥
राम दुलारि दुलारि वारि तन मन सब डारैं।
छौर कर्म को सुदिन बैठि कुलगुरुहिं हँकारैं॥
गुरुहिं हँकारि विवेक सुफल करि मङ्गल वानी।
गावहिं गीत विचित्र मोदमय भूपति-रानी॥२४॥

---

* "रोवनि धोवनि अनखानि अनरसनि, डिठिमुठि निठुर नसाइहौं।"

(गीतावली—बालकाण्ड—छन्द १८)

(२३) अनखानि = खीझ कर रोना। अनरसनि = गुस्सा होना, मचलना। बराई = हटा दूँगा।

(२४) अतुल = जिनकी तुलना नहीं हो सकती। मोद मन = मन में आनन्द भरकर। छौर कर्म = मूड़न। हँकारैं = बुलाते हैं। 'विवेक सुफल करि मङ्गल वानी' = मङ्गलवाणी को ज्ञान से सफल करके। भूपति-रानी = राजा (दशरथ) की रानियाँ, तत्पुरुष समास।

सन्तोषे मागन सकल, गुरु तिय द्विज पहिराइ ।
बालक कौसल राय के, चिरञ्जीव सब भाइ ॥
चिरञ्जीव सब भाइ देत आसिष अनुकूले ।
* नृपरानी के सुकृत सुतरु करहे अरु फूले ॥
फूले अवध नारि नर जेते अति आनद सो पोषे ।
नाकनगर महिनगर नारिनर मनवांछित सब तोषे ॥२५॥

आँगन रानी चलन सिखावति चारयौ सुत कर लाई ।
गिरत परत उठि चलत हँसत पुनि रोवत रहत रिसाई ॥
रोवत रहत रिसाय झाँगुली टोपी डारै ।
मुकतन माल विदारि नैन भरि नीर निहारै ॥
नीर निहारै हँसत सुनत अति तोतरि बानी ।
भजत भौन को पैठि धरति लै आँगन रानी ॥२६॥

---

* "दसरथ सुकृत मनोहर बिरवनि रूप करह जनु लाग ।" (गीतावली, बा० का० २६)

(२५) सन्तोषे = सन्तुष्ट कर दिये । मागन = माँगनेवाले । चिरञ्जीव = बहुत दिन तक जीवित रहें । सुकृत सुतरु करहे = पुण्यरूपी वृक्ष में कल्ले निकल आये । पोषे = भरे पूरे हो गये, पुष्ट कर दिये । नाकनगर = आकाश । इस छन्द में कवि ने राजा और रानी के पुण्य को वृक्ष और अयोध्या के स्त्री-पुरुषों को फूल बनाकर रूपक अलंकार का प्रयोग किया है । मनवांछित = मन की इच्छा के अनुसार ।

(२६) झाँगुली = जामे की तरह का एक वस्त्र जो अन्नप्राशन के दिन बच्चों को पहनाया जाता है । विदारि = तोड़कर । बाललीला का अनूठा वर्णन है । भावुकता सराहनीय है ।

* भूप हरषि करवायो रुचिकै करनवेध उपवीत।
छोटे धनुष बान कर लीन्हे समुझन लागे नीत ॥
समुझन लागे नीति वेदविद्या गुरु दीन्ही।
धर्म्म कर्म्म गति अगति श्रुति स्मृति मग जेहिं कीन्ही ॥
श्रुति मग जेहि कीन्ही जगत, जाहि सिखाये सब सिख्यौ।
धर्म्म प्रगट जग करन को, परब्रह्म नृप घर बस्यौ ॥२७॥

† जाके नाम प्रभाव ते, जन्म मरन दुख जाइ।
वेद सेस सारद सिवा, सिव को अगम दिखाइ ॥
सिव को अगम दिखाइ भेद ब्रह्महु नहिं पायो।
भक्तन के हित आप कौसिला उर महँ आयो ॥
कौसिल्या के उर बसे, दसरथ सुत कहि गावते।
काम क्रोध मद लोभ दुख, नासै नाम प्रभाव ते ॥२८॥

---

* करनवेध चूड़ाकरन श्रीरघुवर उपवीत। (रामाज्ञा, सतक ३, दोहा २)

(२७) रुचिकै = भली भाँति। करनवेध = कनछेदन। उपवीत = जनेऊ। नीत = राजनीति। विद्या १४ हैं—ऋक्, यजु, साम, अथर्वण; शिक्षा, छन्द, कल्प, ज्योतिष, निरुक्त, व्याकरण, पुराण, मीमांसा, न्याय और धर्मशास्त्र।

† "स्वारथ को परमारथ को कलि राम को नाम-प्रताप बली है।" (कवितावली, ८५)

(२८) सारद = सरस्वती। सिवा = पार्वती। प्रभाव = महिमा। भेद = रहस्य। मद = घमण्ड।

"बिगरी जनम अनेक की सुधरै अबहीं आजु। होहि राम को नाम जपु तुलसी तजि कुसमाजु" ॥

(दोहावली २२)

गोस्वामीजी ने अपने सभी ग्रन्थों में रामनाम की महिमा मुक्त कण्ठ से गाई है।

बिस्वामित्र महाऋषय, बिपिन बसै मुनि संग।
* जोग जज्ञ होमादि ब्रत, करत दनुज खल भंग॥
करत दनुज खल भंग हृदय मुनि मंत्र बिचार्यौ।
हरि अवतरे सुअवधि हरन महि भारन भार्यौ॥
भार्यौ सुख उपजाइ कै, हरि होई नैननि बिषै।
सरजू सरि अस्नान करि, गे दरबार महाऋषै॥२९॥

सुनि राजा सहसा उठे, मिले पाँइ परि धाइ।
लै आये भीतर भवन, सुभ आसन बैठाइ॥
सुभ आसन बैठाइ नारिजुत मुनिबर पूजे।
† उदय भयो निज भाग मोहिं सम सुकृत न दूजे॥
दूजो आपु न जानिये, पद रज को सेवक सदा।
‡ कहिय कृपा करि काज निज, करहुँ तुरत मंगल पदा॥३०॥

---

* "चहत महामुनि जाग जयो।
नीच निसाचर देत दुसह दुख, कृस तनु ताप तयो॥" (गीतावली, बा० का० ४५)

(२९) दनुज=राक्षस। भङ्ग=खण्डित। हरन महि भारन भार्यौ=पृथ्वी का भारी बोझ उतारने के लिए। हरि होई नैननि बिषै=नेत्रों को रामजी के दर्शन होंगे।

† "चरन पखारि कीन्हि अति पूजा। मो सम आजु धन्य नहिँ दूजा॥" (रा० च० मा०)
"पूजि पहुनई कीन्हि पाइ प्रिय पाहुन। कहेउ भूप "मोहि सरिस सुकृत किए काहु न॥"
(जानकीमङ्गल, छन्द १७)

‡ चरन बन्दि कर जोरि निहोरत कहिय कृपा करि काज। (गीतावली, बा० का० ४७)

(३०) सहसा=एकाएक। सुकृत=पुण्यात्मा। दूजो आपु न जानिये=आप कोई दूसरी बात न समझिए।

छप्पय

सुनु भूपति द्विज मित्र गाइ महि सोच निवारन।
मम आस्रम खल दनुज करत उतपात अपारन॥
पार न पावहिं मुनि विकल रैन दिवस सङ्कट परै।
धर्म जात श्रुति सेतु सकल बल खल हरै॥
हरै विपति दारुण जबै, राम लषन जो देहु मति।
* तुम कहँ जसु इनको सुफल, आन गुनहु जनि भूमिपति॥३१॥

कुण्डलिया

† सुनतै राजा सूखि गौ, कमल वदन कुम्हिलान।
नाहक मुनि दाह्यौ हृदय, मागहि जीवन प्रान॥
मागहि जीवन प्रान राम लछिमन किमि देऊँ।
जाहि निरखि रह नैन, पलक निरखत नहिँ लेऊँ॥
लेउँ अजस पातक सबै, सुनु मुनि मन में गुनि कहौं।
माँगहु तन धन धेनु महि, राम दिये किमि तनु रहौं॥३२॥

---

* "राजन राम लषन जौ दीजै।
जस रावरो लाभ ढोटनिहू मुनि सनाथ सब कीजै।" (गीतावली)

(३१) निवारन=दूर करनेवाले। उतपात=ऊधम। अपारन=अनेक। श्रुतिसेतु=वेद का मार्ग। जो देहु मति=जो विचार करके दे दो।

† "सुनि राजा अति अप्रिय बानी। हृदय कम्प मुख दुति कुम्हिलानी॥" (रा० च० मा०)

(३२) दाह्यौ=जला दिया। किमि=किस प्रकार। गुनि=विचार करके। किमि तनु रहौं=शरीर में किस प्रकार रह सकता हूँ?

* कह बसिष्ठ राजा सुनौ सुत मुनि पति कहँ देहु ।
इनकी कृपा कृपाल की, कुसल आइहैं गेहु ॥
कुसल आइहैं गेहु दनुज सब करहिं सँघारन ।
सिद्ध सुद्ध करि होम सुजस जग में बिस्तारन ॥
बिस्तारन मङ्गल सुवन, आन भाँति नहिं मन गुनौ ।
सौंपहु बिस्वामित्र को, कह बसिष्ठ भूपति सुनौ ॥३३॥

गुरु बसिष्ठ के बचन को, कैसे तजै नृपाल ।
राम लषन को बोलि कै, सौंपे मुनिहिं कृपाल ॥
सौंपे मुनिहिं कृपाल सीस सब सभा नवायो ।
कौसिक दियो असीस मनहुँ जय जप फल पायो ॥
मन मलीन वारिजनयन, उठे मौन धरि भवन को ।
† ऊतर कछू न मुख कढ्यौ, गुरु बसिष्ठ के बचन को ॥३४॥

---

* "तब बसिष्ठ बहु बिधि समुझावा । नृप सन्देह नास कहँ पावा ॥" (रा० च० मा०)

(३३) आइहैं = लौट आवेंगे । गेहु = घर ।
सौंपहु बिस्वामित्र को—कर्मकारक के प्रयोग में 'को' का चिह्न—ब्रज का रूप है जो कविता-वली लङ्काकाण्ड छन्द ३९ में भी प्रयुक्त हुआ है ।

† "आयउ न उतरु बसिष्ठ लखि बहु भाँति नृप समुझायऊ ।" (जानकीमङ्गल, २७)

(३४) कौसिक = विश्वामित्र । वारिजनयन = कमल के समान नेत्रवाले (दशरथ) । कढ्यौ = निकला ।

छप्पय

वेद मन्त्र दै सकल अन्त सत्रुन के मारन।
* नींद भूख अरु प्यास त्रास सब असुभ निवारन॥
असुभ निवारन पंथ सुपथ मंगल-मय सुन्दर।
बड़ो भाग निज समुझि करत आयसु प्रभु सादर॥
सादर पूछत वेद गति, मृग तरु भूधर भूमितल।
पाठ करावत गुन कहत, वेदमन्त्र दै दै सकल॥३५॥

कुण्डलिया

† मार्‌यौ बीचहि ताड़का, एक बान श्री राम।
मुनि चितवत चक्रित खरे गई हरषि सुरधाम॥
गई हरषि सुरधाम राम को मुनि मन चीन्हों।
आस्रम निज प्रभु पूँछि जज्ञ आरंभित कीन्हों॥
कर्‌यौ जज्ञ आरम्भ प्रभु, धनु धरि बान सुधारि कै।
खल सुबाहु मारीच सँग, धाये धूम निहारि कै॥३६॥

---

* "तब रिषि निज नाथहिँ जिय चीन्हा। बिद्यानिधि कहँ बिद्या दीन्हा॥
जातें लाग न छुधा पिपासा। अतुलित बल तनु तेज प्रकासा॥" (रा० च० मा०)

(३५) आयसु = आज्ञा। वेद गति = वेदों की मर्यादा। विश्वामित्र राम लक्ष्मण को वेदमन्त्रों की शिक्षा देते जा रहे थे।

† "एकहि बान प्रान हरि लीन्हा। दीन जानि तेहि निज पद दीन्हा॥" (रा० च० मा०)
"एक तीर तकि हती ताड़का, बिद्या बिप्र पढ़ाई।" (गीतावली ५०)

(३६) चक्रित = चकित। धनु धरि बान सुधारि कै = धनुष पर सँभालकर बाण चढ़ाया। धूम निहारि कै = (यज्ञ का) धुआँ छाया देखकर।

छप्पय

*जारयौ अनल प्रचंड बान उर मारि सुबाहै।
पुनि मारीचहिं उदधि पार करि बान चलाहै॥
बान चलाहै अफल सुफल करि होम-विधानै।
बरषत सुर सुभ कुसुम असीसत कृपानिधानै॥
कृपानिधानहिं जानिकै जज्ञ भाग दै अमिय फल।
†धनुष यज्ञ थल जनक के चले राम ऋषि त्यागि थल॥३७॥

कुण्डलिया

गौतम तिय की भामिनी, तनु पषानि जिहिं ठौर।
गये लषन रघुबंसमनि, मुनि कौसिक सिरमौर॥
मुनि कौसिक सिरमौर पूछि, बूझयौ सब कारन।
दारुन दाह विचारि पाउँ धरि, कीन्ह निवारन॥
‡कीन्ह निवारन पाप को, जय कहि उठि दुति दामिनी।
तुलसी विनती मृदु करति गौतम ऋषि की भामिनी॥३८॥

---

* "पावक सर सुबाहु पुनि मारा। अनुज निसाचर कटक सँवारा॥" (रा० च० मा०)

† "धनु मख कौतुक जनकपुर, चले गाधिसुत साथ।" (रामाज्ञा, सं० ६, दो० ४)

(३७) अनलबान = अग्निबाण। अफल = बिना गाँसी का बाण। विधानै = नियम को। अमिय फल = अमृत के समान मीठे फल। राम को ब्रह्म जानकर मुनि ने यज्ञ का भाग दिया।

‡ "सिलाछोर छुअत अहिल्या भई दिव्य देह।" (गी० बा० ६५)

(३८) भामिनी = स्त्री। पषानि = पत्थर। बूझयौ = मालूम किया। दारुन दाह = अत्यन्त दुःख। दुति (द्युति) = चमक। दामिनी = बिजली।

*जय जय जग दातार प्रभु, हरन घोर महिभार।
दीनबन्धु दानव दहन, सब गुन रूप उदार ॥
सब गुन रूप उदार भजत सिव सुक सनकादी।
पावत थाह न चरित मध्य अन्तहु नहिं आदी ॥
आदि जन्म जड़ कुकृत करि, भई स्राप पापिनि मयी।
आजु परसि पद-पद्म-रज राम सुकृत मन्दिर मयी ॥३९॥

छप्पय

स्राप पाप को दुर्ग कठिन, रचि कर्मनि राख्यौ।
मन बुधि चित तन शृंग, भरे अघ वस्तुनि चाख्यौ ॥
वस्तु सकल मल रासि, काम मद दंभ सुभट घन।
सुकृत सत्रु रन जीति, कर्म को अमल सबै तन ॥
तन पग सुरँग लगाइ, प्रभु रज बरूद रुष अनल गहि।
रिपुहिं सहित मम कर्म नृप स्राप पाप को दुर्ग दहि ॥४०॥

---

* "राजीव विलोचन भवभय मोचन पाहि पाहि सरनहि आई।" (रा० च० मा०)

(३९) सब गुन रूप उदार=सब गुणों से और स्वरूप से सम्पन्न। सुक=शुकदेव (वेदव्यास के पुत्र)। कुकृत=बुरे कर्म। पापिनि मयी=पापों से भरी हुई। रज=धूलि।

(४०) रचि कर्मनि राख्यौ=कर्मों ने बना रक्खा है। चाख्यौ=चीखा, देखा। घन=अनेक। अमल=स्वच्छ।

यहाँ पर गोस्वामीजी ने अद्वितीय साङ्ग-रूपक बाँधा है।

अभिमत फल दातार, देवतरु वर सम कारन।
कर्म कुमति मल लाग, कृपा करि कीन्ह निवारन॥
कीन्ह निवारन पापमयी, मुनि-घर की भामिनि।
* अब वर दीजिय मोहिं, चरन रति दिन अरु जामिनि॥
दिन अरु जामिनि रत रहौं चरन, हरन महि-भार हौ।
तुलसिदास वर पाइ कहि, जय रघुपति दातार हौ॥४१॥

लखि गति सुर मुनि हरष, वरष सुभ सुमन सराहत।
† असरन सरन समर्थ घोर भव सिन्धु निबाहत॥
सिन्धु निबाहत अगम सुगम बरदायक लायक।
‡ कुमति कुकर्म कुरेष कपट, कलि कलुष नसायक॥
कलुष नसायक राम प्रभु, तुलसिदास भज तजि करष।
मन वच अरु कर्मनि भजहु, लखि गति सुर मुनि मन हरष॥४२॥

---

* "पद-कमल-परागा रस अनुरागा मम मन-मधुप करै पाना।" (रा० च० मा०)

(४१) अभिमत = मनवांछित। दातार = देनेवाला। देवतरु = कल्पवृक्ष। रति = प्रेम। जामिनि = रात्रि।

† "राम! रावरे निबाहे सबही की निबहति।" (विनयपत्रिका २४६)

‡ "दीनबन्धु दीनता-दरिद्र-दाह-दोष-दुख दारुन-दुसह-दर-दरप हरन।" (विनयपत्रिका २४८)

(४२) गति = हाल। असरन = जिसे किसी का सहारा नहीं। निबाहत = निर्वाह करते हैं अथवा पार करते हैं। कुरेष = भाग्य में लिखी हुई (ब्रह्मा के अङ्कों की) बुरी रेखा। कलुष = पाप। करष = कपट।

पञ्चम पंक्ति में वृत्त्यनुप्रास की अच्छी योजना है।

* चले हरषि मुनि संग राम लछिमन मग माहीं।
वन उपवन मृग विहँग बिटप लखि पूछत जाहीं ॥
पूछत मुनि सब कहत न्हाइ सुरसरि रघुराई।
कहत कथा इतिहास जनकपुर पहुँचे जाई ॥
पहुँचे प्रभु पुर निकट लखि, बाग तड़ागनि अति भले।
खग मृग मधुप समाज युत जनक नगर देखन चले ॥ ४३ ॥

कुण्डलिया

† वापी सुभग सरोज युत, सरवर विविध मराल।
मानौ अगनित मान सर, सोभा देत विसाल ॥
सोभा देत विसाल विमल जल सुधा सुपूरे।
मनिगन पुरट बँधान नारिनर मज्जत भूरे ॥
मज्जत सुर मुनि आइ जनु, पर्व मानसर पाइ जग।
लहत चारि फल परसि जल, जापी वापी सर सुभग ॥४४॥

---

* "सैल सरित सर बाग बन, मृग विहङ्ग बहु रङ्ग।
तुलसी देखत जात प्रभु, मुदित गाधि सुत सङ्ग॥" (रामाज्ञा, सप्तक ५, दोहा ६)

(४३) उपवन = बाग़। विहँग = पक्षी। विटप = वृक्ष। सुरसरि = गङ्गा। इतिहास = रामचन्द्रजी के पुरखों का हाल। मधुप = भौंरा। जुत (युक्त) = सहित।

† "बापी कूप सरित सर नाना। सलिल सुधा सम मनिसोपाना।" (रा० च० मा०)

(४४) वापी = बावड़ी। सुभग = सुन्दर। सरोज = कमल। विविध = नाना प्रकार के। मराल = हंस। अगनित = न गिने जाने योग्य; अनगिनत। सुधा = अमृत। पुरट = सोना। मज्जत = नहाते हैं। भूरे = बहुत से। पर्व = त्योहार। जापी = जप करनेवाले।

यह पद्य जनकपुर के प्रकृति-निरीक्षण का अच्छा उदाहरण है।

सुन्दर चहुँदिसि बाग बन, कुसुमित फलित अपार।
जनु सुरधर की बाटिका, बसी सहित परिवार ॥
बसी सहित परिवार कीर कोकिल धुनि राजै।
पथिकन लेत बुलाय त्रिविधि विधि पवन समाजै।
पवन समाजै सुरभि सुख, जनु वसंत-ऋतु-गृह-सघन।
कह तुलसिदास प्रभु पुर निरखि, सुन्दर चहुँदिसि बाग बन ॥४५॥

छप्पय

* परे नृपति सजि सैन मत्त गजरथ हैं राजत।
नृत्य गान सुख थान सुभग दुन्दुभि वर बाजत ॥
बाजत बन्दी सूत जूथ जूथनि भट गाजैं।
वनितादिक सुभगान करहिं सुरतिय लखि लाजैं ॥
लाजै लखि अमरावती, पुर सुर की सोभा हरे।
विविध इन्द्र वृन्दादि सुर सैन साजि जमपुर परे ॥४६॥

---

(४५) कुसुमित = फूले हुए। सुरधर = इन्द्र। कीर = तोता। राजै = शोभित होती है। त्रिविध = शीतल-मन्द-सुगन्ध (वायु)। सुरभि = सुगन्ध। वसन्त-ऋतु-गृह-सघन = वसंत ऋतु का सघन घर है।

* "पुर बाहिर सर सरित समीपा। उतरे जहँ तहँ बिपुल महीपा ॥" (रा० च० मा०)

(४६) परे = पड़ाव डाले पड़े हैं। मत्त = मतवाले। थान = स्थान। जूथ = समूह। भट = वीर। गाजैं = गरजते हैं। वनितादिक = स्त्रियाँ। सुरतिय = देववधू। अमरावती = देवलोक।

कुण्डलिया

* धवल धाम चित्रित खचित, कलस मनहु रवि जोति ।
जगमगात खम्भनि पुरट, प्रगट दामिनी होति ॥
प्रगट दामिनी होति मोति मनि झलक झरोखनि ।
भामिनि भूषन सजत मनहु सुरतिय तन धोखनि ॥
धोखनि तन सुरवाम सब, धाम धाम सब थल नचति ।
जनक नगर छवि मय चकित, हाट बाट मनिमय खचित ॥४७॥

छप्पय

† सुनि स्रवननि नरपाल रिषय आगमन अनन्दित ।
भूसुर वर गुरु ज्ञाति साथ मुनिपद सिर वन्दित ॥
वन्दित नृपहिं विलोकि मिले कौसिक मुनिनायक ।
भये विदेह विदेह निरखि दोउ सुत सब लायक ॥
सब लायक रघुनायकहिं, नरपति निरखि विसाल को ।
देखि भानुकुलभूषनहिं, मन तन बसि नरपाल को ॥४८॥

---

* "मङ्गलमय मन्दिर सब केरे । चित्रित जनु रतिनाथ चितेरे ।" (रा० च० मा०)

(४७) धवल = सफ़ेद । चित्रित खचित = तरह तरह के बेलबूटे खिँचे हुए हैं । दामिनी = बिजली । झरोखनि = खिड़कियों में ।

† "सुनि राउ आगे लेन आयउ सचिव गुरु भूसुर लिये ।" (जानकीमङ्गल ४५)

(४८) भूसुर = ब्राह्मण । वर = श्रेष्ठ । ज्ञाति = जान-पहचानवाले । कौसिक = विश्वामित्र । भये विदेह = शरीर की सुधबुध भूल गये । विदेह = जनक ।

* बिबस राउ भे प्रेम थके निरखत छबि सोभा ।
लोचन भये चकोर राम मुख ससि रस लोभा ॥
लोभा सकल समाज परसपर चाहत रामै ।
धीरज धरि नृप कहत बूझि मुनि सब गुन धामै ॥
सब गुन तेज प्रताप मय, काके सुरतरु फल नये ।
† कहिय कृपा करि कृपानिधि, ये बालक काके भये ॥४९॥

कुण्डलिया

‡ कै मुनिमनि नृपमनि किधौं, योग-यज्ञफल आहिं ।
गनपति पसुपति लोकपति, मम संसय मन माहिं ॥
मम संसय मन माहिं ज्ञान गति गिरा बिनासी ।
बरबस इन बस होत तजत सुख-रस अबिनासी ॥
अबिनासी अवलोकिये, जुगल रूप निज सगर धौं ।
कहिय प्रगट, सन्देह मन, कै मुनिमनि नृपमनि किधौं ॥५०॥

---

* "कहहु नाथ सुन्दर दोउ बालक । मुनि-कुल-तिलक कि नृप-कुल-पालक ।"
(रा० च० मा०)

† "देखि मनोहर मूरति मन अनुरागेउ, बँधेउ सनेह विदेह, विराग विरागेउ ।"
(जानकीमङ्गल ४७)

(४९) बूझि = पूछकर । सब गुन धामै = सब गुणों के स्थान (राम) को ।

‡ "मुनिसुत किधौं भूप बालक, किधौं ब्रह्मजीव जग जाये ।" (गीतावली, बा० का० ३३)

(५०) मुनिमनि = मुनियों में मणि के समान श्रेष्ठ । पसुपति = महादेवजी । संसय = सन्देह । ज्ञान गति गिरा = ज्ञान को शरण देनेवाली वाणी ; अथवा ज्ञान की पहुँच और वाणी । बरबस = ज़बरदस्ती । सुख रस अबिनासी = ब्रह्मानन्द का रस जो नाशरहित है । प्रगट = स्पष्ट । इस पद्य में सन्देह अलङ्कार है ।

छप्पय

जप तप व्रत रत धर्म जगत जहँ लगि सुभ कर्मनि।
दया क्षमादिक नेम क्रिया आचार चार गनि॥
चार वेद सब भेद जोग सिधि साधत जोगी।
आतम अनुभव रूप ब्रह्मसुख पावत भोगी॥
पावत भोगी जोग बस सो प्रकटत कबहुँक हिये।
सो फल मुनिनायक किधौं, जप तप बल प्रकटित किये॥५१॥

कुण्डलिया

अलख अगोचर रूप हरि, जो बरनत श्रुति सेस।
जाके हित विधि देव मुनि, ध्यावत गनप महेस॥
ध्यावत गनप महेस जोग जतननि नहिं पावत।
जप तप व्रत कृत-कर्म धर्म धन हृदय बसावत॥
हृदय बसति वह रूप जब, सकल सिद्धि सब सुक्ख भरि।
प्रगट कीन सोइ रूप मुनि, अलख अगोचर भूप हरि॥५२॥

---

(५१) सारे शुभ कर्म करके योग साधने पर जिस अखंड सत्ता की झलक कभी कभी दिख जाती है उसी का फल विश्वामित्रजी ने जप और तप के बल से प्रकटित किया है। क्रिया चार हैं—भक्ति, तपस्या, सेवा और श्रद्धा।

धर्म = धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्॥

(५२) अगोचर = इन्द्रियों से परे। विधि = ब्रह्मा। गनप = गणेशजी।

'सुक्ख भरि' के समान कवितावली के ग्यारहवें छप्पय में 'मुक्खभरि' आया है। विश्वामित्रजी ने मानो योगबल से निर्गुण ब्रह्म को साकार रूप में प्रकट कर लिया है।

"ए परमारथ रूप ब्रह्ममय बालक।" (जानकीमङ्गल ५१)

कीधौं मदन बिसेषि सँग, मुनिनायक बसि कीन।
 रिषि तप तेज प्रताप लखि, सेवत पद लवलीन ॥
सेवत पद लवलीन सम्भु कर बैर सम्हारयौ।
 चाहत आपु सहाय मन्त्र मन माँझ बिचारयौ ॥
चारयौ बिधि सेवा सजै, जुगल रूप छबि देखिये।
 बार बार भूपति कहै, सुनि मुनि मदन बिसेषिये ॥५३॥

* सदा ज्ञान बैराग सों, रत्यो रहत मन मोर।
 ब्रह्म सच्चिदानंद मन, चितवत चन्द चकोर ॥
चितवत चन्द चकोर रूप हरि सुथल थिरानो।
 निरखत बालक नैन तीन सुख जात न जानो ॥
† जात न जानो ब्रह्म सुख, छक्यौं प्रेम अनुराग सों।
 सो मन इनके बसि रह्यौ, लह्यौ न ज्ञान बिराग सों ॥५४॥

---

(५३) मदन विसेषि सँग = कामदेव को उसके विशेष साथी (वसन्त) के साथ। यहाँ कवि ने उत्प्रेक्षा के आधार पर एक अपूर्व रूपक बाँधा है।

* "सहज विराग रूप मन मोरा। थकित होत जिमि चन्द चकोरा ॥"

....

"इन्हहिं बिलोकत अति अनुरागा। बरबस ब्रह्मसुखहिं मन त्यागा।"

(रा० च० मा०)

† "विषय विमुख मन मोर सेइ परमारथ। इन्हहिँ देखि भयो मगन जानि बड़ स्वारथ ॥

(जानकीमङ्गल, छन्द ५०)

(५४) रत्यो रहत = लगा रहता है। सुथल = अच्छा स्थान। थिरानो = स्थिर हो गया है। सगुण रूप के सामने ज्ञान और वैराग्य फीका लगता है। राम का बालरूप देखते ही जनकजी का मन ज्ञान और वैराग्य की सब बातें भूल गया।

* सुनत भूप के प्रिय बचन, पुलकि कह्यौ मुनिराज।
जो कछु कह्यौ सो सत्य सब, तुमहिं विदित सब काज ॥
तुमहिं विदित सब काज राज दसरथ के जाये।
मख हित आने माँगि आपके नगर सिधाये ॥
नगर सिधाये आपके, राम लषन धनु सर धरे।
महि-रक्षक भक्षक असुर, सुनत भूप आनँद भरे ॥५५॥

भाग जानि अनुराग नृप, चले लिवाय निकेत।
† आदर आश्रम आनिकै, पूजे प्रेम समेत ॥
पूजे प्रेम समेत निरखि नर नारि सुखारी।
रघुकुलभूषन देखि सराहत सुकृत सम्हारी ॥
सुकृत-पुंज राजा जनक, कहि पुरनर पद लागहीं।
को जानै काके सुकृत, जाग भाग अनुरागहीं ॥५६॥

---

* "कहेउ सप्रेम पुलकि मुनि सुनि महिपालक।" (जानकीमङ्गल, ५१)

(५५) पुलकि = प्रसन्न होकर ; रोमाञ्चित होकर। विदित = ज्ञात। मख हित = यज्ञ की रक्षा के लिए। महि = पृथ्वी। रक्षक = रक्षा करनेवाले।

† दोहा—"जनक पाइ प्रिय पाहुने, पूजे पूजन जोग।
बालक कोसलपाल के, देखि मगन पुर लोग ॥
(रामाज्ञाप्रश्न, ४ सर्ग, ६ सप्तक)

(५६) भाग = सौभाग्य। अनुराग = प्रेम से। निकेत = घर। आदर आश्रम आनिकै = आदरपूर्वक घर में लाकर। सुकृत-पुंज = पुण्य की राशि। जाग भाग = भाग्य जाग उठा है।

* कमलनयन श्रीराम छबि, मरकत मनि घनस्याम।
सुभग गौर लछिमन बदन, दामिनि बरन ललाम ॥
दामिनि बरन ललाम अंग अगनित छबि सोहै।
जनक नगर नर नारि चकृत अद्भुत छबि जोहैं।
जोहैं मन मोहै सकल को है पावै पार कवि ॥
तुलसिदास बैननि कहै कमलनयन श्रीराम छबि ॥५७॥

देखे मुनि सँग आजु री, बालक जुगल अनूप।
स्याम गौर सुन्दर बदन, मनहुँ मदन जुग रूप ॥
मनहुँ मदन जुग रूप विरचि विधि सुकर बसाये।
निज सुकृतन के पुंज जनकपुर देखन आये ॥
देखन आये कुँवर दोउ, विधि रचि राख्यौ काजु री।
† सियवर जोग सँजोग यह, समुझि देखु सखि आजु री ॥५८॥

---

* "काकपच्छ सिर सुभग सरोरुह लोचन, गौर स्याम सत कोटि काम मद मोचन।"
(जानकीमङ्गल, ५६)

(५७) छबि=शोभा। मरकत=पन्ना; एक हरा रत्न; नीलम। वदन=मुख। ललाम=सुन्दर। चकृत=अचरज में आकर। जोहैं=देखते हैं।

† "बर मिलौ सीतहिँ साँवरो हम हरषि मङ्गल गावहीं।" (जानकीमङ्गल)

(५८) जनकपुर की वनिताओं का रामरूप वर्णन। अनूप=(अनुपमेय) अद्वितीय। मदन=कामदेव। विरचि=रचकर। सुकर (स्वकर)=अपने हाथ से।

अपर कहति सखि सत्य है, एक कठिन हठ कर्म।
प्रन विदेह को धनुष यह, उठै न गिरि सम धर्म ॥
* उठै न गिरि ते गरू बाल मृदु आत सुकुमारे।
सो असमंजस कठिन मेटि को जोग सवाँरे॥
† साँवर कुँवर प्रताप बल, मुनिगन कहत सुमत्य है।
संभु प्रताप विदेह को, पुन्य भंजि धनु सत्य है ॥५९॥

‡ आयसु पाइ मुनीस को भोर लषन रघुराय।
सुमन हेतु उपवन गये, राम लषन दोउ भाय॥
राम लषन दोउ भाय जानकी जाय निहारे।
गिरिजा पूजन हेतु मध्य उपवन पग धारे॥
पग धारे नयननि लखे राजकुमार निहारि कै।
सो सुख तुलसी कहै किमि, कहि न जात मुख चारि कै ॥६०॥

---

* "कुँअर किसोर कठोर सरासन असमञ्जस भयो आइकै।" (गीतावली, ६८)

† "सो कि रहहिँ बिनु सिव-धनु तोरे। यह प्रतीति परिहरेउ न भोरे॥" (रा० च० मा०)

(५६) अपर = दूसरी। मृदु = कोमल। असमंजस = सन्देह। प्रताप = ऐश्वर्य। साँवर कुँवर....................सत्य है = साँवला कुमार अपने ऐश्वर्य के बल से तथा शङ्करजी के प्रताप और जनकजी के पुण्य के कारण इस धनुष को तोड़ डालेगा, यह सत्य है क्योंकि मुनियों के वचन ठीक ही होते हैं।

‡ "समय जानि गुरु आयसु पाई। लेन प्रसून चले दोउ भाई।" (रा० च० मा०)

(६०) आयसु = आज्ञा। सौन्दर्य तीन प्रकार से देखा जाता है। नेत्र सुन्दर पदार्थ को देखते हैं तो उनमें विकार उत्पन्न होता है, फिर सौन्दर्य की छाप हृदय पर अङ्कित हो जाती है तो प्रेम उत्पन्न होता है, फिर बुद्धि विवेक द्वारा उस पर विचार करती है तो मन तन्मय हो जाता है। यह आनन्द अनिर्वचनीय होता है। अन्त की दो पंक्तियों में यही भाव है।

राम सिया के मिलन सुख, वेद न पावहिं पार।
प्रीति प्रेम परमिति सुमति, प्रीतम गति रतिसार॥
गति रतिसार विचार कहत थकि रहत बिचारी।
सो मैं कहौं विवेक कवन मति गति संसारी॥
मति गति संकर सारदा, कहि न सकत सुख सरस को।
तुलसिदास केहि विधि कहै, राम सिया सुख दरस को॥६१॥

पूजि बिबिध बिधि पायँ परि, विनती सिया सुनाइ।
आदि अन्त त्रयलोक तू, स्वबस विहारिनि माइ॥
* स्वबस विहारिनि माइ मनोरथ जानहु ही के।
प्रगट प्रभाव प्रताप अगम वरदान सची के॥
सची सारदा हरि त्रिया, सेइ देइ सब सुक्ख भरि।
जय जय जय गिरिजा सुता विविध विनय सिय पायँ परि॥६२॥

---

(६१) परमिति = हद। प्रीतम गति रतिसार = प्रियतम के पास पहुँचना ही प्रेम का सार है। विवेक = अच्छे और बुरे का ज्ञान। मति गति संसारी = (मेरी) बुद्धि की पहुँच तो संसार तक ही है। सीता और राम के परस्पर दर्शन का सुख वर्णन करने में गोस्वामीजी अपनी असमर्थता प्रकट करते हैं।

* "मोर मनोरथ जानहु नीके। बसहु सदा उर पुर सबही के॥" (रा० च० मा०)

(६२) बिबिध बिधि = अनेक प्रकार से। आदि अन्त त्रयलोक तू = तीनों लोकों में आदि से अन्त तक तू ही है। स्वबस = स्वतन्त्र। ही के = हृदय के। सची (शची) = इन्द्राणी। सुता विविध विनय सिय पायँ परि = पुत्री सीता नाना प्रकार से बिनती करके तुम्हारे पैर पड़ती है।

वचन प्रसाद सुपाइ सिय, चली हरषि निज धाम।

※ सो छवि हृदय निरूप करि, गुरु पहँ गवने राम॥

गुरु पहँ गवने राम जानकी भवन सिधाई।

सुमन दये मुनि हाथ राम कहि कथा सुहाई॥

कथा सुहाई सुनत मुनि, सतानन्द आवत भये।

जनक बिनय कहि मोद लहि, राम निरखि आसिस दये॥६३॥

† आजु भूप बनि बनि चले, रंगभूमि सिरमौर।

पावक पानी पवन महि, सुर नर मुनि इक ठौर॥

सुर नर मुनि इक ठौर आपुको जनक बुलायो।

‡ कौतुक देखिय चलिय सतानँद वचन सुनायो॥

वचन कहे मुनि राम सों, चलौ तात औसर भले।

काको जस दस दिसि बिदित, आजु भूप बनि बनि चले॥६४॥

※ "हृदय सराहत सीय लुनाई। गुरु समीप गवने दोउ भाई॥" (रा० च० मा०)

(६३) निरूप करि = निरूपण करके; स्थापित करके। जनक बिनय कहि = जनक की (कही हुई) बिनती सुनाकर। मोद = आनन्द। लहि = प्राप्त कर।

† "राजा रंगभूमि आज बैठे जाइ जाइकै,
आपने आपने थल आपने आपने साज आपने आपने बर बानिक बनाइकै।"
(गीतावली, ८२)

‡ "सतानंद पद बंदि प्रभु, बैठे गुर पहँ जाइ।
चलहु तात मुनि कहेउ तब, पठवा जनक बुलाइ॥" (रा० च० मा०)

(६४) पावक = अग्नि। कौतुक = खेल।

राम लषन कौसिक सहित, सतानन्द अगवान।
चले रङ्गभूमिहिं सकल, मङ्गल मोद निधान ॥
* मङ्गल मोद निधान नारि नर गृह तजि धाये।
नगर बगर गै बात भूप-सुत देखन आये ॥
देखि जनक चरननि परे, पूरि प्रेम आनँद लहित।
आसन आदर देइ करि, राम लषन कौसिक सहित ॥६५॥

† राम रूप नृप देखिकै, दुति मुख की भइ छीन।
रवि-प्रताप निरखत मनहु, उड़गन ज्योति मलीन ॥
उड़गन ज्योति मलीन दीन बलहीन विराजत।
जड़ खल दल दलमलेउ साधु सुर सज्जन गाजत ॥
गाजत दुन्दुभि सुमन सुर, मगन नारि नर पेखिकै।
थकित चकित पल नहिं लगति, राम रूप नृप देखिकै ॥६६॥

---

* "चले सकल गृह काज बिसारी। बाल, जुवान जरठ नर नारी॥" (रा० च० मा०)

(६५) मङ्गल = कल्याण। नगर बगर गै बात = यह बात जनकपुर भर में फैल गई।

† अरुणोदय सकुचे कुमुद, उड़गन ज्योति मलीन।
तिमि तुम्हार आगमन सुनि, भये नृपति बलहीन॥" (रा० च० मा०)
"नित्य नेम-कृत अरुन उदय जब कीन। निरखि निसाकर-नृप मुख भए मलीन॥"
(बरवै रामायण १३)

(६६) दुति (द्युति) = शोभा। उड़गन = तारागण। ज्योति = कान्ति। दलमलेउ = तहस-नहस हो गया। पेखिकै = देखकर। इस छन्द के दोहे में उत्प्रेक्षा अलङ्कार है।

* जो जाके उर भावना, देखै राम सरीर।
कोउ सिसु कोउ प्रभु मित्र अरि, स्वामि सखा बलवीर॥
स्वामि सखा बलवीर धीर धरि प्रभुहि निहारैं।
बरषत सुर सुभ कुसुम देव मुनि जयति उचारैं॥
जयति उचारि समाज लखि, जनक बुलाई जानकी।
सतानन्द आनी तुरत खानि सकल कल्यान की॥६७॥

मिथिला पुर के नारि-नर, सिय रघुवीर निहारि।
† बिनती करहिं बिरञ्चि सन, अञ्चल अञ्जुलि धारि॥
अञ्चल अञ्जुलि धारि देहि बरदान बिधाता।
राम जानकी जोग जोरि मिलवहि यह नाता॥
नात जुरै नृप प्रन टरै, भूपति जाइँ लजाइ घर।
‡ यह संयोग बिचारि कह, मिथिलापुर के नारि-नर॥६८॥

---

* "जाके रही भावना जैसी। प्रभु मूरति देखी तिन तैसी॥" (रा० च० मा०)

(६७) भावना = विचार। अरि = दुश्मन। लखि = देखकर। तुल्ययोगिता अलङ्कार।

† "पुर नारि सकल पसारि अंचल, बिधिहिँ वचन सुनावहीं।" (रा० च० मा०)

‡ "यह सँजोग बिधि रच्यो बिचारी।" (रा० च० मा०)

(६८) अञ्जुलि = दोनों हाथों की संपुट।

छप्पय

* माल जलज जुग हाथ अतुल छबि सिय पगु धारी।
जगत जननि सुख-खानि निरखि मोहे नर-नारी॥
नारि मध्य वर जानकी, रघुपति पद अनुराग हिय।
† देखत सुर नर मुनि मगन, दीन्हे नैन निमेष सिय॥
त्यागि सकुच रामहिं लखे, नैन मूँदि छबि हृदय भरि।
रङ्गभूमि सिय पगु धरे, माल जलज जुग हाथ धरि॥६९॥

कुण्डलिया

‡ जनक बोलि बंदी सकल, कहेउ कहौ प्रन जाइ।
देव दनुज मुनि महीपति, सबको देउ सुनाइ॥
सबको देउ सुनाइ भाट दस सहस सिधाये।
चहुँ दिसि हाथ पसारि सुनहु भूपति चित लाये॥
चित लाये प्रन जनक को, धनुष धरयौ यह रङ्गथल।
कर उठाइ भंजै नृपति, बरै जानकी याहि थल॥७०॥

---

* "रंगभूमि जब सिय पगु धारी। देखि रूप मोहे नर नारी॥" (रा० च० मा०)

† "नैनन मग रामहिँ उर आनी। दीन्हे पलक कपाट सयानी॥" (रा० च० मा०)

(६९) जलज = कमल। संकुच = सङ्कोच। निमेष = पलकें।

‡ "कह नृप जाइ कहौ पन मोरा। चले भाट हिय हरष न थोरा॥" (रा० च० मा०)

(७०) बोलि = बुलाकर। बंदी = भाट। भंजै = तोड़ डाले।

* हरगिरि ते गुरु जानिये, कमठपृष्ठि ते घोर।
महि गहि रचेउ बिरंचि जनु, सकल वज्र तन तोर ॥
सकल वज्र तन तोरि मोरि मुरि गये दसानन।
† बानासुर से सुभट भये भञ्जित कहु जान न ॥
जान न कोउ याको मरम, सिवहिँ छाँड़ि को तानिये।
निज बल हृदय विचारिकै, हरगिरि ते गुरु जानिये ॥७१॥

‡ नृप समाज महँ कहत हैं, रेखा वचन खँचाइ।
रङ्क राज सिरताज सोइ, लैहै धनुष उठाइ ॥
§ लैहै धनुष उठाइ जगत महँ कीरति होई।
जयमाला उर डारि जानुकी ब्याही सोई ॥
धनुष न धरि बल समुझि निज, मुख मैं कारिख नहिं लहौ।
वीर धीर धनु सो गहै, नृप समाज मैं प्रन कहौ ॥७२॥

---

* "कुलिस कठोर कूर्मपीठ ते कठिन अति, हठि न पिनाक काहू चपरि चढ़ायो है"
(कवितावली, बा०)

† "रावन बान महाभट भारे। देखि सरासन गवहिँ सिधारे॥" (रा० च० मा०)

(७१) हरगिरि = कैलाश। गुरु = बड़ा, भारी। कमठ = कछुआ। पृष्ठि = पीठ। घोर = कठिन, कठोर। बिरञ्चि = ब्रह्मा। तोरिमोरि = तोड़ मरोड़ कर। मुरि गये = लौट गये। दसानन = (दशमुख) रावण। भये भञ्जित = भाग गये। मरम = रहस्य।

‡ "भूमि भाल भ्राजत न चलत सो, ज्यों बिरंचि को आँकु।
धनु तोरै सोई बरै जानकी, राउ होइ की राँकु ॥" (गीतावली ८७)

§ "त्रिभुवन-जय समेत बैदेही। बिनहिँ बिचारि बरै हठि तेही॥" (रा० च० मा०)

(७२) रेखा वचन खँचाइ = वचन की रेखा खींचकर; एक प्रकार से सौगन्द खाकर। वीर धीर धनु सो गहै = जो वीर और धीर हो वही धनुष में हाथ लगावे।

नहिं छीबै कर धनुष ये, सब को कहौं बुझाइ।
जिन भूपन रन मण्डिकै, रिपुदल देखि भगाइ॥
रिपुदल देखि भगाइ गाइ द्विज सन्त न मानहिं।
पर-त्रिय पर-धन हेत देत सठ हठ बस प्रानहिं॥
प्रानहिं देत समर्पि कै, ममता बस पातक बये।
कारिख लागहि मुखनि मैं, नहिं छीबै कर धनुष ये॥७३॥

* ऐसे नृप धनु का धरैं, सुनहु सकल महिपाल।
प्रजादण्ड परचण्ड अघ, दान न कौनेहुँ काल॥
दान न कौनेहुँ काल देव गुरु पितृ न मानहिं।
† श्रीमद ते मतिअन्ध वेद के पन्थ न जानहिं॥
जानहिं मातु न पितु धरम, कर्म वचन पातक करैं।
कारिख कुलहिं लगावहीं, ऐसे नृप धनु का धरैं॥७४॥

---

(७३) छीबै = (बुन्देलखण्डी का क्रियारूप) छुएँ। रन मण्डि कै = लड़ाई छेड़कर। पातक = पाप।

* "गोंड़ गँवार नृपाल महि, यमन महा महिपाल।
साम न दाम न भेद कलि, केवल दण्ड कराल॥" (दोहावली ५५६)

† "वेद पुरान बिहाइ सुपंथ कुमारग कोटि कुचाल चली है।
काल कराल नृपाल कृपालन राज समाज बड़ोई छली है॥"
(कवितावली, उत्तर काण्ड ८५)

(७४) महिपाल = राजा। परचण्ड (प्रचण्ड) = भयानक। श्रीमद = लक्ष्मी (धन) का घमण्ड।

ऐसे नृप धनु ना गहौ मानहु बचन प्रतीत।
पुर घेरहिं लावहिं अनल, राखहिं नहीं सभीत॥
राखहिं नहीं सभीत मीत मन्त्री हित तोरैं।
पितु को बाँध्यौ सेतु पुन्य सरि सर वृति फोरैं॥
मान मर्दि द्विज-धन हरैं, त्रिय बालक बध कुल दहै।
कहैं पुकारि पसारि कर, ऐसे नृप धनु ना गहै॥७५॥

समुझि भूप धनुषै धरै, निज कुल बल दल देखि।
मातु और पितु और है, धर्महिं तजे बिसेषि॥
धर्महिं तजे बिसेषि सूर की लीक न जाकी।
सत्रु समर बलबराड तेग तीक्षन नहिं बाँकी॥
बाँकी कीरति चन्द सी, जगत उजेरो नहिं करौ।
भाट कहत मन खाँचिकै, समुझि भूप धनुषै धरौ॥७६॥

---

(७५) प्रतीत=विश्वास। लावहिं=लगा देते हैं। अनल=आग। राखहिं नहीं सभीत=जो डरा हुआ होता है उसकी भी रक्षा नहीं करते। हित=प्रेम। सेतु=मर्यादा, पुल। मान मर्दि=अपमानित करके। त्रियबालक-बध कुल दहौ=स्त्री और बालकों को मारकर कुल उजाड़ दिया हो।

(७६) कुल बल दल=वंश का बल तथा सेना का बल; वंश का शक्तिसमूह। धर्महिं तजे बिसेषि=धर्म को विशेष रूप से तिलांजलि दे बैठे हैं। सूर की लीक=सूर्यवंश अथवा वीरता की परिपाटी। बलबराड=बलवान्। तीछन (तीक्ष्ण)=तेज। बाँकी=बढ़िया। इस कुराडलिया से गोस्वामीजी ने अपने समय के सम्राट् जहाँगीर के वर्णसंकर होने पर प्रकाश डाला है।

धनुष आँगुरी जनि छियौ, बल कुल आपु निहारि।
सत्य सुकृत त्यागे हृदय, कहत असत्य विचारि॥
कहत असत्य विचारि नारि बध ब्राह्मन कीन्हो।
आगत को सङ्कल्प खैंचि द्विज-मुख ते लीन्हो॥
द्विजमुख छ रस न कर भर्‌यौ, दानिसिरोमनि जस लियौ।
वदन रदन मसि लागिहै, धनुष आँगुरी जनि छियौ॥७७॥

सेस समान नरेस सो, धरे भूमि को भार।
* जाके भानु समान को, तेज प्रताप अपार॥
तेज प्रताप अपार चन्द सम कीरति भारी।
पावक सम द्युतिवान पवन ते बल अधिकारी॥
बल अधिकारी पवन सो, बुद्धि प्रकास गनेस सो।
सो धनु छिवै महेस को, सेस समान नरेस सो॥७८॥

---

(७७) जनि छियौ = छूना मत। आगत = अतिथि; आया हुआ। सङ्कल्प = दिया हुआ (पदार्थ)। 'द्विजमुख छ रस न कर भर्‌यौ' = जिसने ब्राह्मण को छै रसों का भोजन न कराया। छ रस (षट्‌रस) = मीठा, खट्टा, नमकीन, कड़ुआ, चरपरा, कसैला। वदन = मुख। रदन = दाँत। मसि = स्याही।

* "बरषत हरषत लोग सब, करषत लखै न कोइ।
तुलसी प्रजा सुभाग ते, भूप भानु सो होइ॥" (दोहावली ५०८)

(७८) सेस = शेषनाग। भानु = सूर्य। तेज = प्रतिभा; प्रकाश। प्रताप = ऐश्वर्य। द्युतिवान = तेजवान्। पवन = वायु। गणेशजी सब देवताओं में अधिक बुद्धिमान् हैं।

यहि प्रकार को नृप धरै, सिव पिनाक परचण्ड।
जाके सत्य प्रताप की, ध्वजा दीप नव खण्ड॥
ध्वजा दीप नव खण्ड भूप हरिचन्द सु होई।
पृथु रघु बेनु दिलीप सगर नागर सम कोई॥
भूप ययाति सुगाधि सो, सिवि दधीच नृप उच्चरै।
बार बार मन उच्चरौ, यहि प्रकार को धनु धरै॥७९॥

की नारायन धनु धरै, जाको प्रबल प्रताप।
धर्यौ मेरु मन्दर मही, मथ्यौ समुद करि दाप॥
मथ्यौ समुद करि दाप, प्रबल हिरनाक्षहिं मार्यौ।
मधु मुर कैटभ बधन सुजस जग में विस्तार्यौ॥
बिबिध भाँति बसुधा सकल, तुलसी प्रतिपालन करै।
दुरौ होइ नृप रूप धरि, सो नारायन धनु धरै॥८०॥

---

(७६) पिनाक = धनुष। ध्वजा = झण्डा। दीप = फहरा रही है। पृथु, रघु, दिलीप, सगर, ययाति और दधीचि आदि सब रामचन्द्रजी के पूर्वजों के नाम हैं। सुगाधि = विश्वामित्रजी के पिता का नाम गाधि था।

(८०) दाप = बल; ज़ोर। हिरनाक्ष (हिरण्य = सोना + अक्षि = नेत्र) = हिरण्यकशिपु का भाई था जिसे भगवान् ने वाराह अवतार रखकर मारा था। मधु को मारने से मधुसूदन और मुरा राक्षसी को मारने से भगवान् का मुरारि नाम पड़ा था। कैटभ = एक राक्षस का नाम। विस्तार्यौ = फैलाया। बसुधा = पृथ्वी। दुरौ होइ = (यदि) छिपा हो।

विधि समान परचण्ड सो, आयो होइ समाज।
जेहि जग की रचना करी, सरि सर गिरि गजराज॥
सरि सर गिरि गजराज समुद सातहु जिन बाँधे।
ऊँच नीच जग सृष्टि प्रबल बल ते जेहि साधे॥
चारि वेद चार्यौ मुखनि, रच्यौ सकल ब्रह्मण्ड सो।
यह कुदण्ड सोइ धरै विधि, विधि समान परचण्ड सो॥८१॥

की पुनि संकर धनु धरै, जेहि विष कीन्हो पान।
त्रिपुर दनुज दाहन जगत, हत्यौ एक ही बान॥
हत्यौ एक ही बान मदन तन रिस में जार्यौ।
चन्द गगन सिर धरे सूल सूरज जेहि मार्यौ॥
मार्यौ दुख सब जगत को, जगत सबै पल में हरै।
आयो जो नृप रूप धरि, की पुनि संकर धनु धरै॥८२॥

---

(८१) सरि = नदी। सर = तालाब। गिरि = पहाड़। साधे = सँभाले ; बनाये। रच्यौ = बनाया है। ब्रह्मण्ड = संसार। कुदण्ड (कोदण्ड) = धनुष। विधि = नियमपूर्वक ; ब्रह्मा।

(८२ दाहन = (दुःख से) जलानेवाला। मदन........जार्यौ = एक बार देवताओं के कहने से कामदेव ने अपने फूलों के बाण शिवजी पर चलाये तो उन्होंने क्रोधित होकर अपना तीसरा नेत्र खोला जिससे आग की ऐसी लपटें निकलीं कि कामदेव भस्म हो गया। रिस = गुस्सा। चन्द गगन सिर धरे = अपने आकाशरूपी मस्तक में चन्द्रमा धारण किये हैं। सूल = त्रिशूल।

गननायक सो होइ जो, सो धनु धरै प्रमान।
जाको पूजैं प्रथम सुर, विघन-हरन की बान॥
विघन-हरन की बान ध्यान हरि हर विधि साधैं।
जेहि सुमिरन ते सिद्ध सिद्धि जोगहिँ अवराधैं॥
अवराधै गिरिजा-सुवन, फल पावहि मुख जोहि जो।
सो पिनाक यह कर धरै गननायक सो होहि जो॥८३॥

ससि सूरज दिगपाल सब, सुर सुरपति महिपाल।
यक्ष सर्प गन्धर्व गन, मनुज दनुज यम काल॥
मनुज दनुज यम काल पितृ मुनि सिद्ध समाजे।
गिरि समुद्र बसु मरुत जहाँ लगि सकल विराजे॥
सकल विराजे सब सुनत, जेहि बल होइ सो उठहु अब।
धरि धनु प्रन पूरो करौ, ससि सूरज दिगपाल सब॥८४॥

---

(८३) अवराधैं = अभ्यास करते हैं। सुवन = पुत्र। जोहि = देखकर।

(८४) सुरपति = इन्द्र। बसु = धन ; वसु आठ हैं। मरुत = वायु। विराजे = बैठे हैं। दिगपाल = इन्द्र, अग्नि, यम, निऋृत, वरुण, मरुत, कुबेर, ईशान, ब्रह्मा और अनन्त, दसों दिशाओं के ये दस दिक्पाल हैं।

* बैठक ते उठि उठि सजे, सुनत भाट के बैन।
अभिमानी मानी महिप, कियौ हिये अति चैन॥
कियौ हिये अति चैन देव बलि इष्ट सम्हारयौ।
कटि पट दृढ़ करि दण्ड भुजनि को जोर प्रचार्‌यौ॥
जोरि प्रचारि निहारि भट, अरुन नैन आसन तजे।
कहा धनुष तृन प्रन कहा, बैठक ते उठि उठि सजे॥८५॥

† धनु न नयो कर कटि नवै, तमकि छियो धनु आनि।
पाँव नवै सीसहु नवै, भई प्रबल बल-हानि॥
भई प्रबल बल-हानि पानि मुख को सब सूख्यौ।
तन ते चल्यौ प्रसेद अधर दल बिद्रुम रूख्यौ॥
रूखो बिद्रुम बदन भौ, देह-दसा बिह्वल भयौ।
‡ लोचन मन दूनौ नये धनु न नयौ कर कटि नयौ॥८६॥

---

* "सुनि प्रन सकल भूप अभिलाषे। भटमानी अतिसै मनमाखे॥" (रा० च० मा०)

(८५) चैन=आनन्द। देव बलि इष्ट सम्हारयौ=देवताओं के लिए बलि देने की प्रतिज्ञा की और अपने इष्ट देव को याद किया। प्रचारयौ=आवाज़ की। कहा धनुष तृन=तिनके के समान धनुष भला क्या चीज़ है। प्रन कहा=प्रतिज्ञा भी कोई बड़ी नहीं है।

† दोहा "तमकि धरहिँ धनु मूढ़ नृप, उठै न चलहिँ लजाय।
मनहुँ पाय भट-बाहु-बल, अधिक अधिक गरुआय॥" (रा० च० मा०)

‡ "नमित सीस सोचहिँ सलज सब श्रीहत भये सरीर।
टरै न चाप करैं अपनी सी महा महा बल धीर॥" (गीतावली, ८७)

(८६) न नयो=झुका नहीं। तमकि=तपाक के साथ। प्रसेद=पसीना। अधर=नीचे का होठ। रूख्यौ=सूख गया। कटि=कमर।

एक तजै एकै धरै, करै अनेक उपाइ।
बैठे ठाढ़े मध्य धरि, धनुष हुचाउ न खाइ॥
धनुष हुचाउ न खाइ बिरद बन्दीगन बोलै।
बैठहिँ सीस नवाइ नैन पलकैं नहिं खोलै॥
नैन करेरे भाट कह, मातु जने कहुँ तरु तरे।
* कोदौ कने अहार कै, एक तजै एकै धरे॥८७॥

धनु धनु सब को हरि लियो, मति गति नाम प्रताप।
जस कीरति बल वीरता, धीरज तेज प्रलाप॥
धीरज तेज प्रलाप नेम व्रत धर्म्म सुकर्मनि।
अस्त्र सस्त्र की हारि रूप दुति लाज काज गनि॥
लाज काज पर गाजि धरि, राजनि धनु कर सों छियो।
रीते बीते सब भये, धनु धनु सबको हरि लियो॥८८॥

---

* "देखे नर नारि कहैं साग खाइ जाए माइ
बाहु पीन पाँवरनि पीना खाइ पोखे हैं।" (गीतावली, ८३)

(८७) धरै=पकड़ लेता है। हुचाउ न खाइ=हिलता तक नहीं। नैन करेरे=नेत्र फाड़कर। कोदौ=कुदई, एक प्रकार का धान्य। कने=काकुन। अहार कै=खाकर। इस कुण्डलिया की अन्तिम दो पंक्तियों में हास्य रस का आभास मिलता है।

(८८) प्रलाप=बकवाद करने की शक्ति। अस्त्र शस्त्र=शस्त्र को हाथ में लिये लिये वार किया जाता है पर अस्त्र फेककर मारा जाता है; तलवार शस्त्र है पर बाण अस्त्र है। गाजि धरि=बिजली गिराकर; नष्ट करके। रीते=ख़ाली। धनु धनु में यमक अलङ्कार है।

गाजि गाजि धनु कर धरयौ, लाजि लाजि गे भाजि ।
साजि साजि बल दल सबै, राजा राज समाजि ॥
राजा राज समाजि भये मुख गोवन लायक ।
सम्पति सबै गँवाइ करयौ संकर धनु धायक ॥
धायक आसन पर गये, मनु तनु बल धनु छल हरयौ ।
लाजि लाजि बैठे सकल, गाजि गाजि कै धनु धरयौ ॥८९॥

* धनु सुमेरु ते गरु भयो, उठै न कोटि उपाइ ।
† तिल न टरै भूपति लरै, धरै अरै लपटाइ ॥
धरै अरै लपटाइ जाइ गड़ि अधिक धरा मैं ।
जम्यो सेस के सीस ईस जनु चढ़यौ कला मैं ॥
कला रूप कैलास को, धरनि रूप धनु को लयो ।
उदय अस्त गिरि भार धरि, धनु सुमेरु ते गरु भयो ॥९०॥

---

(८९) गाजि = गरजकर । लाजि = लज्जित होकर । गोवन लायक = देखने के योग्य । धायक = दौड़कर, दौड़नेवाला । इस छन्द में अनुप्रास अलङ्कार की अपूर्व छटा है । गाजि गाजि में वीप्सा अलङ्कार है ।

* "कुलिस कठोर कूर्म पीठ ते कठिन अति, हठि न पिनाक काहू चपरि चढ़ायो है ।"
(कवितावली, १०)

† "तमकि धरहिँ धनु मूढ़ नृप, उठै न चलहिँ लजाइ ।
मनहुँ पाइ भट बाहु-बल, अधिक अधिक गरुआइ ॥" (रा० च० मा०, २८२)

(९०) अरै = अड़ जाता है । इस कुण्डलिया की अन्तिम तीन पंक्तियों में उत्प्रेक्षा-मूलक रूपक है । पहली पंक्ति में व्यतिरेक, तीसरी पंक्ति में अत्युक्ति और चौथी में उत्प्रेक्षा अलङ्कार है ।

क्रोध बचन बोले जनक, नृपबल पौरुष देखि।
प्रन प्रमान देखन सबै, आये भूप बिसेषि ॥
आये भूप बिसेषि मनुज सुर असुर सभा मैं।
तिल भरि सके न टारि सम्भु धनु धर्‍यो धरा मैं ॥
धरा न छूटी धनुष ते, बल न कर्‍यौ भूपन तनक।
* वीर धीर धरनी नहीं, क्रोध बचन बोले जनक ॥९१॥

† प्रन हमार मिथ्या भयौ, जाहु सकल नृप धाम।
विधि न रच्यौ वैदेहि वरु, पुरुष न कोऊ वाम ॥
पुरुष न कोऊ जानतो, तौ प्रन यह धरत्यौ कहा।
कन्या रही कुवाँरि यह, भई हासि जग मैं महा ॥
हासि भई वसुधा सकल, सूर-हीन सब जग ठयौ।
जनक सभा मैं कह बचन, प्रन हमार मिथ्या भयौ ॥९२॥

---

* "नृपन्ह विलोकि जनक अकुलाने। बोले बचन रोष जनु साने ॥
....
अब जनि कोउ भाषै भट मानी। वीरविहीन मही मैं जानी ॥" (रा० च० मा०)
"डग्यौ न धनु, जनु बीर-बिगत महि किधौं कहुँ सुभट दुरै।" (गीतावली, ८७)

(९१) पौरुष = हिम्मत, पराक्रम। प्रमान = सत्य, सबूत।

† "तजहु आस निज निज गृह जाहू। लिखा न बिधि बैदेहि बिआहू ॥" (रा० च० मा०)

(९२) भई हासि = हँसी हो गई। वसुधा = पृथ्वी। ठयौ = ठहरा; प्रमाणित हुआ।

* लषन लाल को लाल मुख, सुने जनक के बैन।
फरके अधर प्रलाप को, अरुन भये दोउ नैन ॥
अरुन भये दोउ नैन जोरि कर भे उठि ठाढ़े।
करुनानिधि की ओर बचन बोले रिस बाढ़े ॥
बाढ़े रिस कह सुनु जनक, बचन कहौ रघुबंस रुख।
राम कृपाल समाज महँ, लखन लाल कह लाल मुख ॥९३॥

कहा धनुष जीरन धरौं, यह पुरुषारथ कौन।
† प्रभु आयसु पाऊँ तनक, धरौं चौदहौ भौन ॥
धरौं चौदहौ भौन महीघट चटपट फोरौं।
मन्दर मेरु उपारि समुद बसुधा सब बोरौं ॥
बसुधा बोरौं समुद मैं, समुद रसातल मैं भरौं।
सेस केस धरि महि फरकि कहा धनुष जीरन धरौं ॥९४॥

---

* "रोषे लषन बिकट भृकुटी करि भुज अरु अधर फुरे।" (गीतावली ८७)

(६३) फरके अधर प्रलाप को=बोलने के लिए होठ फड़कने लगे। रिस=क्रोध। रुख=सामने ; तरफ।

† "जौं तुम्हार अनुसासन पावौं। कंदुक इव ब्रह्मांड उठावौं ॥
काँचे घट जिमि डारौं फोरी। सकौं मेरु मूलक इव तोरी ॥" (रा० च० मा०)

(६४) जीरन (जीर्ण)=पुराना। पुरुषारथ=पराक्रम। उपारि=उखाड़कर। चटपट=तत्काल, फ़ौरन। केस=बाल।

महि सहित उठाऊँ धनुष, जो प्रभु आयसु होइ।
दिग्गज चारि इकत्र करि, महीधरनि पुनि सोइ॥
महीधरन पुनि खैंचि भुवन चौदह धरि आनौं।
हिमगिरि अरु कैलास धनुष ऊपर धरि तानौं॥
तानौं सकल समाज नृप, चढ़ि चढ़ि डारहु भार कह।
* धाय सहस जोजन मही, सहित उठाऊँ धनुष यह॥९५॥

† जनक हिये सकुचे सहमि, डरे सकल महिपाल।
दिग्गज धर थल छूटिगौ, भय ते दिसि जमकाल॥
भय ते दिसि जमकाल जानकी हिय हरषानी।
गुरु रघुपति मन तोषि कही सुन्दर मृदु बानी॥
महि कम्पति प्रन लषन के, सूरज के सुनि सुख भयौ।
सभा ससङ्क प्रमान सुनि, जनक-सीस सकुच्यौ नयौ॥९६॥

---

* "कमलनाल जिमि चाप चढ़ावौं। जोजन सत प्रमान लै धावौं॥" (रा० च० मा०)

(९५) दिग्गज = दिशाओं के हाथी। महीधरन = पहाड़। आनौं = ले आऊँ।

† "सकल लोक सब भूप डेराने। सिय हिय हरष जनक सकुचाने॥"

(रा० च० मा०, २८६)

(९६) सहमि = ठिठककर। तोषि = ढाढ़स देकर; समझाकर। नयौ = नीचा हो गया।

कौसिक मुनि आयसु दियो, उठहु राम रघुवीर।
धनुष उठावौ वाम कर, हरहु जनक की पीर॥
हरहु जनक की पीर सभा को सोच निवारौ।
सुर सज्जन सुख लहहि दुष्ट मुख कीजिय कारौ॥
कारौ मुख महिपाल सब, जेहि धनु निज कर सों छियो।
* सो धनु करौ मृनाल इव, कौसिक मुनि आयसु दियो॥९७॥

करि प्रनाम रघुबंसमनि, उठे जथा मृगराज।
आयसु माँग्यौ जोरि कर, सुषमा छवि सिरताज॥
सुषमा छवि सिरताज मंच ते चले गोसाईं।
पुरजन पुन्य सम्हारि देव दुन्दुभी बजाईं॥
दुन्दुभि बाजीं अति घनी, वन्दीजन धनि धन्य भनि।
† मध्यवेदिका पर गये, करि प्रनाम रघुबंसमनि॥९८॥

---

* "कौसिक कह्यौ उठहु रघुनंदन जगबंदन बल ऐन।
तुलसिदास प्रभु चले मृगपति ज्यौं निज भगतनि सुख दैन॥"
(गीतावली, बा० का०, ८७)

(९७) पीर=(पीड़ा) दुःख। निवारौ=दूर करो। मृनाल=कमल की नाल या डंडी।

† "गुरु पद कमल बंदि रघुपति तब चाप समीप गये।" (गीतावली, ८८)

(९८) मृगराज=सिंह। सुषमा=सुन्दरता। छवि=शोभा। भनि=कहा।

पटकत धनु लछिमन लख्यो, जान्यो प्रभु मन बात।
  * कह्यो धरनि धारी सबै, सजग हूजियै गात॥
सजग हूजियै गात धनुष को धका दरेरौ।
  जौं महि चली तौ सृष्टि विकलता सबकै हेरौ॥
हेरौ मैं रघुबंसमनि, लेत धनुष मन मैं सख्यो।
  लटकत मही सम्हारियौ, पटकत धनु लछिमन लख्यो॥९९॥

वाम अँगूठा पाईं दबि, वाम हाथ गहि लीन।
  † दमक दामिनी ज्यौं करै, सबके नैन मलीन॥
सबके नैन मलीन खैंचि कीन्हैं नभ नाईं।
  सब्द रह्यो ब्रह्माण्ड खण्ड द्वै धर्यो गोसाईं॥
धर्यौ गोसाईं सम्भु-धनु, सब्द सुने जोगी जगे।
  खण्ड खण्ड धनु तनु भयो, वाम अँगूठा के लगे॥१००॥

---

* "दिसिकुंजरहु कमठ अहि कोला। धरहु धरनि धरि धीर न डोला॥" (रा० च० मा०)
"महि महि धरनि लषन कह बलहि बढ़ावन।
राम चहत सिव चापहि चपरि चढ़ावन॥" (जानकीमङ्गल, ११०)

(९९) सजग = चैतन्य। विकलता = दुःख। लटकत = गिरते हुए।

† "दमकेउ दामिनि जिमि जब लयेऊ। पुनि धनु नभमंडल सम भयेऊ॥"
(रा० च० मा०)

"भयो कठिन कोदंड कोलाहल प्रलय पयोद समान।
चौंके सिव, बिरंचि, दिसिनायक रहे मूँदि कर कान॥" (गीतावली, ८८)

(१००) नभ नाईं = जब धनुष ताना गया तो आकाश के समान गोल हो गया।
ब्रह्माण्ड = संसार।

* सिव सिव वृषभ पुकारई धनुष सब्द सुनि घोर।
    दिग्गज दिगपालन भयो, हृदय कम्प अति जोर॥
हृदय कम्प अति ज़ोर कम्प कैलास ईसथल।
    सिव सिर सुरसरिधार उछलि आकास गयो जल॥
गयो सुजल आकास थल, उमा गनेस विचारई।
    कहा भयो कैसो भयो, सिव सिव वृषभ पुकारई॥१०१॥

† जय जय जय रघुबंसमनि, सुर फूलनि बरषाइ।
    वेद विप्र बन्दी बिरद, नारी मङ्गल गाइ॥
नारी मङ्गल गाइ सिया जयमाल उठाई।
    सोभित प्रभु उर मध्य बिस्व कीरति जनु छाई॥
कीरति गावहिं सिद्ध मुनि, बल प्रताप छवि रूप भनि।
    सतानन्द आनन्द कह, जय जय जय रघुबंसमनि॥१०२॥

---

* "भरे भुवन घोर कठोर रव रवि बाजि तजि मारग चले।
चिक्करहिँ दिग्गज डोल महि अहि कोल कूरम कलमले॥" (रा० च० मा०)
"गंजेउ सो गर्जेउ घोर धुनि सुनि भूमि भूधर लरखरे।" (जानकीमङ्गल)
"डिगति उर्वि अति गुर्वि सर्व पब्बै समुद्र सर।"
....
"चैांके बिरंचि संकर सहित, कोल कमठ अहि कलमल्यौ।" (कवितावली)

(१०१) वृषभ = नन्दीगण ; बैल। सुरसरि = गङ्गाजी।

† "सुर हरषत बरषत फूल बार बार, सिद्ध मुनि कहत सगुन सुभ घरी है।"
(गीतावली)

(१०२) बिरद = बड़ाई, प्रण। बिस्व कीरति जनु छाई = 'विस्व बिजय सोभा जनु छाई।'
(रा० च० मा०)

* नृपगन भये मलीन सब, सन्त भये आनंद ।
जनक सोच संकट गयो, सिया मातु सुख वृंद ॥
सिया मातु सुख वृंद निछावरि मनिगनं देही ।
राम सिया छवि देखि प्रेम बसि कीन न केही ॥
कीन न केही दान सब, समय संभु धनु टूट जब ।
तुलसिदास संकट गये, नृपगन भये मलीन सब ॥१०३॥

† महामोद मिथिलापुरी, राम कियो धनु भङ्ग ।
खल मलीन सज्जन सुखद, सुर सुमनस सुभरंग ॥
सुर सुमनस सुभरंग कपट भूपति मन माखे ।
लछिमन उठे सक्रोध राम मारत बचि राखे ॥
बचि राखे रघुबीर नृप, त्रिय प्रगटीं जु हुतीं दुरी ।
रामसिया जोरी निरखि, महामोद मिथिलापुरी ॥१०४॥

---

* "खल भये मलिन साधु सब राजे ।" (रा० च० मा०)
"पुरजन परिजन रानी राउ प्रमुदित मनसा अनूप राम रूप रंग रई है ।" (गीतावली)
"मन मलीन मानी महिप, कोक कोकनद वृंद, सुहृद समाज चोर चित प्रमुदित परमानंद ।"
(रामाज्ञा, सर्ग १)

(१०३) वृंद=समूह । प्रेम बसि कीन न केही=प्रेम ने किसे अपने वश में नहीं कर लिया ।

† "जनक को पन जयौ, सबको भावतो भयौ, तुलसी मुदित रोम रोम मोद माचहीं ।
साँवरो किसोर, गोरी सोभा पर तृन तोरि, जोरी जियौ जुग जुग सखी जन जाँचहीं ॥"
(कवितावली, १४)

(१०४) मोद=आनन्द । माखे=क्रोधित हुए । त्रिय प्रगटीं जु हुती दुरीं=अनेक स्त्रियाँ दिखाई दीं पर उनमें जो युवती स्त्रियाँ थीं वे छिप गईं ।

कर कुठार भृगु राम के, आये सुनि धनु भंग।
* गौर रूप अनुरूप सिव, जटा भस्म सरवंग॥
जटा भस्म सरवंग देखि सकुचे सब राजा।
लागे करन प्रनाम काल निज समुझि समाजा॥
समुझि समाज पिनाक लखि, समुझि वचन अरि काम के।
केहि टोरो बोलौ तुरत, कर कुठार भृगु राम के॥१०५॥

तोर्‍यो धनु रघुबंसमनि, जाको प्रबल प्रताप।
† हानि कहा भइ रावरी, कहिय प्रगट करि आप॥
कहिय प्रगट करि आपु देव द्विजवर की नाई।
पूजिय मानिय तुम्हैं आपनी वृद्धि बड़ाई॥
वृद्धि बड़ाई तबहि जग, गाइ विप्र पद पूजि भनि।
देहु आसिषा प्रेम सों, धनु तोर्‍यो रघुबंसमनि॥१०६॥

---

* "गौर सरीर भूति भल भ्राजा। भाल बिसाल त्रिपुंड बिराजा॥" (रा० च० मा०)
"सोई हौं बूझत राजसभा धनु को दल्यौ हौं दलिहौं बल ताको।" (कवितावली, २)

(१०५) अनुरूप = समान। अरि काम = महादेवजी।

† "...
टूट्यौ सो न जुरैगो सरासन महेस जू को, रावरी पिनाक मैं सरीकता कहा रही।"
(कवितावली, १६)

(१०६) प्रगट करि = स्पष्ट रूप से; साफ़ साफ़। आसिषा = आशीर्वाद।

* कालबस्य बोलत कहा, गुरु को धनुष बिहंड।
विप्र न ऐसो बाल सुनु, नृप-कुल-सिर को खंड ॥
नृप-कुल-सिर को खण्ड परसु कर तीछन धारा।
धनु जेहि तोरयो आजु तासु भुज काटनवारा ॥
काटनवारा परसु यह, जेहि काटे भूपति महा।
तोहिं समेत रामहि हतौं, कालबस्य बोलत कहा ॥१०७॥

भूपति मिले न खेत मैं, तुम्हैं बिप्रकुल देव।
हते तुम्हारे हति गये, ते द्विज पद बिन सेव ॥
ते द्विज पद बिन सेव छत्रि धर्मन ते हीने।
ते तुम काटे परसु क्रूर कपटी जड़ दीने ॥
जड़ दीने नृप तुम हते, पाप रासि नहिं चेत मैं।
† ताते बाढ़े भवन के, भूपति मिले न खेत मैं ॥१०८॥

---

* "रे नृप बालक काल बस, बोलत तोहिँ न सम्हार।
धनुहीं सम त्रिपुरारि धनु, बिदित सकल संसार ॥" (रा० च० मा०)

(१०७) बिहंड=तोड़कर। तीछन (तीक्ष्ण)=तेज़। कालबस्य=काल के वश में होकर।

† "मिले न कबहुँ सुभट रन गाढ़े। द्विज देवता घरहि के बाढ़े ॥" (रा० च० मा०)

(१०८) हति गये=मर गये। बिन सेव=बिना सेवा किये। जड़=मूर्ख। दीने=गरीब।

* छत्र-विहीनी महि करी, परसु बार इकईस।
सो न विदित तोहिं बाल जड़, तुरत जाइहै खीस ॥
तुरत जाइहै खीस बचन मुख बोल सम्हारे।
गुरु गुन ही भौ मौन ताहि तै पाछे डारे ॥
पाछे बचहु न काल के, बालक लखि करवर टरी।
परसुधार जेहि काटिहौं, छत्र-विहीनी महि करी ॥१०९॥

† द्विज कुल के नाते डरौं, सुनहु विप्र सतिभाव।
न तु छत्री कुल को सकल, लेहुँ तुरत अब दाव ॥
लेहुँ तुरत अब दाव परसु धनु भूमि गिराऊँ।
धर्म्म बड़ो रखवार मारि द्विज पातक पाऊँ ॥
पातक पाऊँ सीस पर, दूजे रघुपति डर करौं।
जम-घर तुम्हैं बसावतो, द्विज कुल के नाते डरौं ॥११०॥

---

* "छोनी में न छाँड़्यो छप्यो छोनिप को छोना छोटो छोनिप छपन बाँको बिरुद बहतु हैं।"
(कवितावली, १६)

"भुज बल भूमि भूप बिनु कीन्हीं। बिपुल बार महिदेवन दीन्हीं।"
(रा० च० मा०, ३०४)

(१०६) जाइहै खीस=नष्ट हो जायगा। ताहि तै पाछे डारे=तू उसकी कोई परवाह नहीं करता ; आगे आगे बोलता है।

† "भृगुवर परसु देखावहु मोहीं। विप्र विचारि बचौ नृपद्रोही ॥" (रा० च० मा०)

(११०) सतिभाव=सच्ची बात। दाव=बदला। रखवार=रक्षा करनेवाला।

लै कुठार सनमुख धर्‌यौ, रामलखन की ओर।
* कौसिक बरजौ बालकहिं, मोहिं नहीं अब खोर॥
मोहिं नहीं अब खोर करौं यहि काल हवाले।
परसु बन्यौ सोइ हाथ विपुल भूपति घर घाले॥
घर घाले सिर मालिका, संकर को पूजन कर्‌यौ।
अब चाहत तव सिर हर्‌यौ, लै कुठार सनमुख धर्‌यौ॥१११॥

राम कही कर जोरि कै, भृगु-कुल-कमल दिनेस।
बालक दीन बिचारि उर, क्रोध न कीजिय लेस॥
† क्रोध न कीजिय लेस बाल अपराध विहीनो।
धनु मम कर ते टूट चूक सों महीं अधीनो॥
महीं अधीनो कर्म्मबस, बाँधिय दीजिय छोरिकै।
दास विचारि प्रभाव मोहिं, राम कही कर जोरिकै॥११२॥

---

* "काल कवलु होइहि छन माहीं। कहौं पुकारि खोरि मोहिं नाहीं॥
तुम्ह हटकहु जो चहहु उबारा। कहि प्रतापु बलु रोषु हमारा॥"
(रा० च० मा०)

(१११) बरजौ = डाँटो। खोर = दोष। घाले = नष्ट कर दिये।

† "तेहि नाहीं कछु काज बिगारा। अपराधी मैं नाथ तुम्हारा॥
कृपा कोप वध बंध गोसाईं। मो पर करिअ दास की नाईं॥" (रा० च० मा०)

(११२) दिनेस = सूर्य। लेस = लगाव; थोड़ा भी।

* संभुदण्ड खण्डित कर्‌यौ, सो भुज खंडहुँ आज।
जो कर परसु प्रचण्ड लखि, कटे अवनि के राज॥
कटे अवनि के राज बचहु नहिं दीन उपायनि।
छत्रि बंस तन पाय वचन मृष मृदुल सुभायनि॥
मृदुल सुभायनि क्यौं बचैा, धनु तोरत नहिं तब डर्‌यौ।
† अनुज सहित भुज काटिहौं, संभुदण्ड खण्डित कर्‌यौ॥११३॥

छत्रि बंस द्विज मानियै, लखन कही हँसि बात।
हम पै पाप न होइ द्विज, जननी कीन्ही घात।
जननी कीन्ही घात ताहि ते मन अति बाढ़ो।
बड़ बैरी रन हत्यौ बिरद पायौ सिर गाढ़ो॥
गाढ़ो पायो पाप सिर, तासों रिस नहिं ठानियै।
‡ तुम्हैं मारि कोा अघ लहै, छत्रि बंस द्विज मानियै॥११४॥

---

* "सुनहु राम जेहि सिवधनु तोरा। सहसबाहु सम सो रिपु मोरा॥"
† "छल तजि करहि समर सिवद्रोही। बंधु सहित न तु मारौं तोही॥"
(रा० च० मा०)

(११३) दण्ड = (कोदण्ड) धनुष। अवनि = पृथ्वी। मृष = झूठ।

‡ "सुर महिसुर हरिजन अरु गाई। हमरे कुल इन्ह पर न सुराई॥
बधे पाप अपकीरति हारे। मारत हू पाँ परिय तुम्हारे॥"
(रा० च० मा०)

(११४) जननी = माता। अघ = पाप। छत्रि बंस द्विज मानियै = क्षत्रियों के वंश में ब्राह्मणों का मान होता है।

* रे कुठार कुण्ठित भयौ, गयौ सुभाय सक्रोध।
अरि प्रचण्ड दहि अवनि नृप, कीन्हो हृदय प्रबोध ॥
† कीन्हो हृदय प्रबोध अछत अरि देखत ठाढ़े।
उत्तर सुनत सरोस मोर उर ज्वालनि बाढ़े ॥
ज्वालनि बाढ़े जरत उर, घोर धार को लै गयौ।
काटि काटि कण्ठनि कुतरु, रे कुठार कुण्ठित भयौ ॥११५॥

जो रघुपति आयसु करैं तौ द्विज देहुँ दिखाइ।
रन मण्डल की कठिनता, तुमको देउँ पढ़ाइ ॥
तुमको देउँ पढ़ाइ परसु धनु लखौं तुम्हारौ।
भूमि सेज मैं पारि मारि बानन उर फारौं ॥
‡ बानन उर फारौं समुझि, विप्र-घात पातक परै।
सभा समेत विचारियै, जो रघुपति आयसु करैं ॥११६॥

---

* × × × ×
"परसु अछत देखौं जिअत, बैरी भूप-किसोर ॥३११॥"

† × × × ×
"बहै न हाथ दहै रिस छाती। भा कुठार कुंठित नृपघाती ॥" (रा० च० मा०)

(११५) कुण्ठित = गोंठिल। प्रबोध = सन्तोष। अछत = होते हुए।

‡ "भृगुबर परसु दिखावहु मोही। बिप्र बिचारि बचौ नृपद्रोही ॥" (रा० च० मा०, ३०८)

(११६) इस छन्द में ओज का अच्छा निदर्शन हुआ है।

* लषन बचन कहि धनु लियो, नैन सैन करि राम ।
बरजे तुम बालक निपट, भृगुपति सब गुन धाम ।।
भृगुपति सब गुन धाम तिनहिं सों समसरि कीजै ।
जिनकी पदरज सेव्य आपने सिर धरि लीजै ।।
सिर धरि लीजै रिस कृपा, अनुज सिखावन प्रभु दियो ।
रुख मुख राम निहारि नत, लखन बचन कह धनु लियो ।।११७।।

अस समर्थ भृगुबंसपति, सुररक्षक द्विजपाल ।
† महिमण्डल इकईस गनि, करी निछत्र बिसाल ।।
करी निछत्र मही सकल, दई बिप्र के हाथ ।
रुधिरकुण्ड तर्पन कियौ, तेई भृगुकुलनाथ ।।
तेई भृगुकुलनाथ के, चरन सरन सेवहु सुमति ।
अभय होउ तिहुँ लोक महँ, अस समर्थ भृगुबंसपति ।।११८।।

---

* "अनुचित कहि सब लोग पुकारे । रघुपति सैनहिं लषन निवारे ।।"

(११७) सैन=इशारा । निपट=बिलकुल । समसरि=बराबरी । नत=नीचा ।

† "भुज बल भूमि भूप बिनु कीन्हीं । बिपुल बार महिदेवन दीन्हीं ।।" (रा० च० मा०)

(११८) इस कुण्डलिया में श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मण को परशुरामजी के पराक्रम का परिचय दे रहे हैं । रामचरितमानस में यही बातें परशुरामजी ने स्वयं कही हैं ।

जाकी पदरज के धरे, मुद मङ्गल कल्यान।
अभय करन सङ्कट हरन, गावत वेद पुरान॥
गावत वेद पुरान कल्पतरु सम सुखदाता।
हरि हर पूजत जाहि परम सुखदानि विधाता॥
दानि विधाता जानि कै, निसि दिन सेवन जे करे।
अर्थ धर्म्म कामादि सुख जाकी पदरज के धरे॥११९॥

काल व्याल तासें डरत, जाके इन पद प्रेम।
यहइ क्रिया यह जोग है यहै जाग जप नेम॥
यहै जाग जप नेम कपट तजि मन बच कायक।
सोइ सुकृती सोइ सूर जाहि द्विज भक्ति अमायक॥
मायक छल तजि पूजि पद, तन मन धन सेवा करत।
जीव जाल दुख माल सब काल व्याल तासें डरत॥१२०॥

(११९-२०) इन दोनों पद्यों में रामचन्द्रजी ब्राह्मणों की महिमा और उनकी सेवा का माहात्म्य वर्णन करते हैं।

व्याल = सर्प। सुकृती = पुण्यात्मा; अच्छे कर्म करनेवाला। अमायक = माया-रहित।

सो त्रिलोक पावन परम, जिनके द्विज पद प्रीति।
विभ्रम श्रम ताको नहीं, दिसा विदिसि सब जीति॥
दिसा विदिसि सब जीति मोह रिपु कटक भगावै।
जसुदायक गुनग्राम राम अनुजहि समुझावै॥
राम बुझावै अनुज को, छत्रि बंस याही धरम।
पदरज नित सिर जो धरै, सो त्रिलोक पावन परम॥१२१॥

राम सिखावन दुहुँ सुन्यौ, लखन और भृगुबंस।
मति गति सुरति सम्हारि उर, ब्रह्म सच्चिदा अंस॥
ब्रह्म सच्चिदा अंस भयो नृपसुत अवतारी।
* सारँगु कर मैं दियौ विविधि बिनती अनुसारी॥
विविध भाँति पातक लगे, कटुक वचन मन मैं गुन्यौ।
परसुधरन पुनि लषनहू, राम सिखावन दुहुँ सुन्यौ॥१२२॥

---

(१२१) विभ्रम = महान् सन्देह। कटक = सेना। ग्राम = स्थान। त्रिलोक = स्वर्ग-लोक, मृत्युलोक और पाताललोक।

* "राम रमापति कर धनु लेहू। खैंचहु चाप मिटै संदेहू॥" (रा० च० मा०)

"प्रभुहिँ सौंपि सारंग पुनि, दीन्ह सुआसिरबाद।
जय मंगल सूचक सगुन, राम राम संवाद॥" (रामाज्ञा, १-६-६)

"कीन्ह राम परितोष रोष ऋषि परिहरि। चले सौंपि सारंग सुफल लोचन करि॥"
(जानकीमङ्गल)

(१२२) भयो नृपसुत अवतारी = राजा दशरथ के पुत्र (श्रीरामचन्द्र) सच्चिदानन्द स्वयं अवतार लेकर आये हैं। सारँग = धनुष।

नृप सभीत उठि उठि चले, परसुराम गति देखि।
आसिष भृगुपति देइ करि, आनँद लहेउ विसेषि ॥
आनँद लहेउ विसेष जनक पुरजन सब रानी।
बन्दी मागध सूत उच्चरहिँ मङ्गल बानी ॥
मङ्गल बानी पुर भई, बाजि उठे दुन्दुभि भले।
संत सुधा सुरगन मुदित, नृप सभीत उठि उठि चले ॥१२३॥

समय पाइ कौसिक कहेउ, जनक महीप बुलाइ।
* सजहु सकल मङ्गल सुभग, दसरथ नृपति बुलाइ ॥
दसरथ नृपहिं बुलाइ ब्याह कुल रीति सम्हारौ।
माड़व रचहु विचित्र नगर गृह गली सवाँरौ ॥
गली सवाँरौ अगरमय, सब कुतर्क संसय दहेउ।
चार पठाइय अवधपुर, समय पाइ कौसिक कहेउ ॥१२४॥

---

* "दूत अवधपुर पठवहु जाई। आनहिं नृप दसरथहि बोलाई ॥" (रा० च० मा०)
"कौसिकहि पूजि प्रसंसि आयसु पाइ नृप सुख पायऊ।
लिखि लगन तिलक समाज सजि कुलगुरुहिँ अवध पठायऊ ॥" (जा० मं०, १२६)

(१२४) कुतर्क संसय = बुरे विचारों का सन्देह। चार = दूत।

सतानन्द अवधहिं चले, लगनपत्रिका हाथ।
हीर नीरजुत मनि पदिक, सकल सुमङ्गल साथ॥
सकल सुमङ्गल साथ देखि रघुपति पुर पावन।
भूपति लिये हँकारि दीन्ह पत्रिका सुहावनि॥
* दीन्ह पत्रिका नृप लखी, राम ब्याह मङ्गल भले।
गृह गृह बजे बधाव पुर, सतानन्द अवधहिं चले॥१२५॥

† राम जानुकी ब्याह सुनि, साजी भूप बरात।
रथ तुरङ्ग मातङ्ग गज, घन घंटा घहरात॥
गज घंटा घहरात दुन्दुभी धुनि चहुँ ओरनि।
मङ्गल भरि भरि थार भामिनी गान झकोरनि॥
गान झकोर प्रमोद पुर, सुरतिय जय जय सुमन धुनि।
दसरथ धौं सुरपति सज्यौ, राम जानुकी ब्याह सुनि॥१२६॥

---

* "सतानन्द उपरोहित अपने तिरहुति-नाथ पठाये।
खेम कुसल रघुबीर लखन की ललित पत्रिका ल्याये॥" (गीतावली, १००)

(१२५) हीर नीरजुत = आबदार हीरे। पदिक = रत्न। लिये हँकारि = बुला लिये।

† "तुलसिदास दसरथ बरात सजि, पूजि गनेसहिँ चले निसान बजाई॥"
(गीतावली, १०१)

"गरजहिँ गज घंटा धुनि घोरा। रथ रव बाजि हिंस चहुँ ओरा॥"
(रा० च० मा०, ३३३)

(१२६) मातङ्ग गज = मतवाले हाथी। घहरात = शब्द कर रहे हैं। झकोर = झोंका, तन्मय होने का भाव।

कुल बिचारि ब्यौहार करि, गुरु आयसु नृप पाइ।
　　＊ मिथिलापुर को मग लियो, भूप निसान बजाइ ॥
भूप निसान बजाइ सगुन सुन्दर सब पाये।
　　बीच बास करि बिबिध जनकपुर भूपति आये ॥
† भूपति आये जनकपुर, अति उछाह आनन्द भरि।
　　दुहुँ समाज संगम सुभग, कुल बिचार ब्यौहार करि ॥१२७॥

‡ उमा रमा ब्रह्माइनी, पतिन सहित पुर आइ।
　　राम जानकी रूप छबि, देखि न को ललचाइ ॥
देखि न को ललचाइ निरखि दसरथ के बारे।
　　मन बच क्रम बसि प्रेम भये सब देखनिहारे ॥
देखनिहारे भे मगन, रिधि सिधि मङ्गलदाइनी।
　　सिय बिवाह कृत कर्म सब, उमा रमा ब्रह्माइनी ॥१२८॥

＊ "एहि बिधि कीन्ह बरात पयाना। हय गय गाजहिं हने निसाना ॥" (रा० च० मा०)

† "समाचार सुनि अवधपति, आये सहित समाज।
प्रीति परस्पर मिलत मुद, सगुन सुमंगल साज ॥"
(रामाज्ञा, सप्तक ४, दोहा ४)

(१२७) मग = रास्ता। निसान = नगाड़ा। उछाह (उत्साह) = हौसला, आनन्द।

‡ "उमा रमादिक सुरतिय सुनि प्रमुदित भईं।
कपट नारि बर बेष बिरचि मंडप गईं ॥" (जानकीमङ्गल, १४७)

(१२८) उमा = पार्वती। रमा = लक्ष्मी। ब्रह्माइनी (ब्रह्माणी) = सरस्वती। क्रम = कर्मणा।

* सुथल भूप डेरा दियो, कौसिक लछिमन राम।
पाइ खबरि पितु आगमन, चले हरषि गुनधाम॥
चले हरषि गुनधाम मुदित भेंटे रघुराई।
मुनिपदरज धरि भूप भरत भेंटे दोउ भाई॥
भेंटे पुरजन गुरु द्विजन, राम देखि पूरन हियो।
रिधि सिधि सब मंगल लिये, सुथल भूप डेरा दियो॥१२९॥

† सखि नृप सँग द्वै और सुत, गौर सुभग सुठि स्याम।
लखन अनुहरत एक है, एक सत्य जनु राम॥
एक सत्य जनु राम कहैं जिन नैन निहारे।
वैसहि वदन मयङ्क नैन वैसेइ रतनारे॥
वैसिहि लछिमन राम छवि, तैसे बल छवि देह दुत।
नाम भरत रिपुहन कहत, सखि नृप सँग द्वै और सुत॥१३०॥

---

* "लै दियो तहँ जनवास सकल सुपास नित नूतन जहाँ।" (जानकीमङ्गल, १३५)

(१२९) डेरा=ठहरने का स्थान। पुरजन=अयोध्या के निवासी।

† "सखि जस राम लषन कर जोटा। तैसेइ भूप संग दुइ ढोटा"॥ (रा० च० मा०)

(१३०) सुठि=सुन्दर। अनुहरत=समानता रखता है; लखन अनुहरत=लक्ष्मण को पड़ा है। दुत=प्रकाशित होता है।

सखि विदेह समुझै हिये, तौ निरूप मैं कीन।
चारिहु कुँवर विवाहिये, येहि पुर नृप परवीन ॥
येहि पुर नृप परवीन दीन बिधि चारि सगाई।
जस कन्या तस कुँवर जोग सिव दीन्ह मिलाई ॥
दीन्ह मिलाइ महेस बिधि, बड़ो जोग जप तप किये।
तौ भव पुर सुकृती समुझि, सखि विदेह समुझै हिये ॥१३१॥

चारि कुँवर तिरहुति चलैं, पाइ सुभग ससुरारि।
कहुँ दिन दस कहुँ मास भरि, देखि त्रपित नर नारि ॥
देखि त्रपित नर नारि जाहिं पुनि दुलहि विचारी।
* कछु दिन वे उत रहैं जनक बोलिहै कुमारी ॥
जनककुमारी आइहैं अवध छाँड़ि अपने थलै।
वनि वनि दिन दस बीस मैं, चारि कुँवर तिरहुति चलैं ॥१३२॥

(१३१.) मिथिलापुर की एक सखी अपनी राय प्रकट करती है कि चारों कुमारों का विवाह यहीं हो जाय। निरूप = विचार। जोग (योग) = मेल।

* "बारहिँ बार सनेह बस, जनक बुलाउब सीय।
लेन आइहहिँ बंधु दोउ, कोटि काम कमनीय ॥" (रा० च० मा०)

(१३२) तिरहुति = जनकपुर। त्रपित (तृप्त) = संतुष्ट। बोलिहै = बुला लेगा। थलै = स्थान को।

ये बातैं बड़ि पुन्य ते, सखि पुजवैं त्रिपुरारि।
* तौ विरञ्चि हम ही रच्यौ, सुकृत ढूँढ़ि दिसि चारि॥
सुकृत ढूँढ़ि दिसि चारि, चारि नृप कुँवर विवाहै।
माँड़व तरे निहारि लेहु जग जीवन लाहै॥
जीवन लाहै की अवधि, यह सुख देखहिं धन्य ते।
बिधिरुख नृप उर जो बसैं ये बातैं बड़ि पुन्य ते॥१३३॥

† सखि सुकृती ताही गनै, राम लषन छबि देखि।
ताते पुर सुकृती बड़ो, आये कुँवर विसेषि॥
आये कुँवर विसेषि नारि नर भे सुख भारे।
दरसन फल ततकाल भूप दसरथहिं निहारे॥
दसरथ राउ निहारि कै, दूलह दुलहिन पुनि बनै।
यह विवाह देखहि सुनहि, सखि सुकृती ताही गनै॥१३४॥

---

* "हम सब सकल सुकृत की रासी। भे जग जनमि जनकपुरवासी॥" (रा० च० मा०)

(१३३) त्रिपुरारि=शंकरजी। विरञ्चि=ब्रह्मा। जग जीवन लाहै=संसार में जीवन प्राप्त करने का लाभ यही है कि चारों कुमारों के दर्शन किये जायँ। बिधिरुख=ब्रह्मा की कृपा से। चारि चारि में यमक अलङ्कार है।

† "जिन जानकी राम छबि देखी। को सुकृती हम सरिस विसेखी॥" (रा० च० मा०)

(१३४) सुकृती=पुण्यात्मा।

* सखि सुकृती दसरथ भले, जाके सुत हैं चारि।

पुनि विदेह पूरे सुकृत, जाकी सिया कुमारि॥

जाकी सिया कुमारि भयो संघट यह जातैं।

हम सुकृतन की रासि लखीं सुकृतन की बातैं॥

सुकृतन की बातैं लखीं, दसरथ ब्याहन सुत चले।

माँड़व तरे विनोद लखि, सखि सुकृती दसरथ भले॥१३५॥

ब्याह घरी विधि लिखि दई, बरषि सुमन सुर गाइ।

† राम विवाह उछाह बड़, देखन चले बजाइ॥

देखन चले बजाइ सतानँद जनक बुलाये।

दसरथ सहित बरात जनक मन्दिर चलि आये॥

मन्दिर चलि पाँउड़ परे जय जय जय बानी भई।

करि उत्साह समाज सुभ, ब्याह घरी विधि लिखि दई॥१३६॥

---

* "रामु सीय सोभा अवधि, सुकृत अवधि दोउ राज।
जहँ तहँ पुरजन कहहिँ अस, मिलि नर नारि समाज॥" (रा० च० मा०)
"जनक सुकृत मूरति बैदेही। दसरथ सुकृत राम धरि देही॥" (" ")

(१३५) संघट=सम्बन्ध। रासि=खानि। लखीं=देखीं। विनोद=आनन्द।

† "प्रेम पुलक तन हृदय उछाहू। चले बिलोकन राम बिबाहू॥" (रा० च० मा०)

(१३६) पाँउड़=वे वस्त्र जो मार्ग में इसलिए बिछा दिये जाते हैं कि अतिथि उनके ऊपर पैर रखते हुए घर तक आवें।

* को वितान सुषमा कहै, जेहिं थल सिद्धि कमाहिं।
    † नटति लक्षमी किंकिरी, रुख जुगवत पल जाहिं॥
रुख जुगवत पल जाहिं जहाँ दुलहिनि वैदेही।
    विधि हरि हर जम इन्द्र होत चितवै हित तेही॥
चितवै हित तेही कृपा, दूलह श्री रघुपति रहै।
    ‡ समधी दसरथ जनक सम, को वितान सुषमा कहै॥१३७॥

इन्द्र ब्रह्म दूनौ मिले, वंदी वरनत भाइ।
    सब समाज सब साज सो, हमैं प्रतिच्छ दिखाइ॥
हमहिं प्रतिच्छ दिखाइ यहै उपमा जिय आवै।
    नारि सहित सुकुमारि राम ब्याहन सुख गावै॥
राम ब्याह सुख देखहीं, अमरावति संजुत चले।
    निज पुर सुरगन सहित जनु, इन्द्र ब्रह्म दूनौ मिले॥१३८॥

---

* "भूपति भाग बली सुरवर नाग सराहि सिहाहिँ।
  तिय वर बेष अली रमा सिधि अनिमादिक माहिँ॥" (गीतावली, बा० का० ५)

† "सिद्धि सची सारद पूजहिँ मन जुगवत रहति रमा सी॥" (विनयपत्रिका, छन्द २२)

‡ "सकल भाँति सम साज समाजू। सम समधी देखे हम आजू॥" (रा० च० मा०)

(१३७) वितान = चँदोवा। सुषमा = सुन्दरता।
  सिद्धि = अणिमा महिमा गरुअता लघिमा प्रापति काम।
    वशीकरण अरु ईशता अष्ट-सिद्धि के नाम॥
  जुगवत = देखते हुए। रुख = इच्छा। अत्युक्ति अलङ्कार।

(१३८) इस छन्द में दशरथ और जनक की तुलना ब्रह्म और इन्द्र से की गई है। यहाँ पर उपमेयलुप्तोपमा और उत्प्रेक्षा से पुष्ट किया हुआ रूपक है।

राम सभूषित जगमगे, माड़व मध्य समाज ।
※ माथे मुकुता मौर छबि, नखत सहित दिनराज ॥
नखत सहित दिन राज नारि नर देखत सोभा ।
रघुपति मुख ससि सरद निरखि छवि त्रपित न को भा ॥
रघुपति मुख छवि सरद ससि, नैन चकोरनि लखि लगे ।
मदन कोटि सत वारियै, राम सभूषित जगमगे ॥१३९॥

† मुनि बसिष्ठ अरु सतानँद, भरद्वाज जाबालि ।
अत्रि अगस्ति सु गर्ग ऋषि, कस्यप मुनि तपसालि ॥
कस्यप मुनि तपसालि देवऋषि सनक समेते ।
लोमस अरु चिरुजीव व्यास पारासर जेते ॥
पारासर कौसिक सहित गौतम सुक उच्चरत पद ।
वेदमन्त्र करनी करै मुनि बसिष्ठ ऋषि सतानँद ॥१४०॥

※ "स्याम नवजलद पर निरखि दिनकर कला, कौतुकी मनहुँ रही घेरि उडुगन अनी ।"
(गीतावली, उत्तरकाण्ड, ५)

(१३९) राजसमाज के बीच में मंडप के नीचे आभूषणों से सुसज्जित श्रीरामचन्द्रजी जगमगा रहे थे। उनके मस्तक पर मोतियों का मौर था, अतः उस समय वे ऐसे सुशोभित होते थे, जैसे सम्पूर्ण तारागणों के साथ सूर्यनारायण उदय हुए हों ।

'नखत सहित दिनराज' में विरोधाभास अलङ्कार है ।

† "बामदेव अरु देवऋषि, बालमीकि जाबालि ।
आये मुनिवर निकर तब, कौसिकादि तपसालि ॥" (रा० च० मा०)

(१४०) रामचन्द्रजी के विवाह के समय सम्पूर्ण ऋषिगण विराजमान थे ।

* सूरज कुल-गति सब कहै, पावक आहुति लेहिँ ।
　　गनपति कर पूजा करै, विधि विवाह कहि देहिँ ॥
विधि विवाह कहि देहिँ पवन पुनि सेस महेसा ।
　　सुरपति सुरगन सहित मगन ढिग लखत रमेसा ॥
लखत रमेस सुदेस छबि, राम सबहि जानत रहै ।
　　विप्र वेष वेदन पढ़ैं सूरज कुल-गति सब कहै ॥१४१॥

† जनक मगन रानी सबै, मुनि बसिष्ठ कहि दीन ।
　　सतानन्द आनी सिया, भूषन सजित नवीन ॥
भूषन साजि नवीन राम ढिग अस्थित कीन्ही ।
　　मुनिवर अवसर समुझि सांति श्रुति मग कहि दीन्ही ॥
दीन्हि दुन्दुभी अति घनी, सिय मण्डप आई जबै ।
　　दसरथ सभा समेत सुख जनक मगन रानी सबै ॥१४२॥

---

(१४१) * "कुल रीति प्रीति समेत रवि कहि देत सब सादर कियो ।
　　होम समय तनु धरि अनलु, अति सुख आहुति लेहिँ ।
　　विप्र वेष धरि वेद सब, कहि विवाह बिधि देहिँ ॥"
　　　　　　(रा० च० मा०)

† "समउ बिलोकि बसिष्ठ बुलाये । सादर सतानंद सुनि आये ॥
　बेगि कुँअरि अब आनहु जाई । चले मुदित मुनि आयसु पाई ॥"
　"...
　एहि बिधि सीय मंडपहिँ आई । प्रमुदित सांति पढ़हिँ मुनिराई ॥"
　　　　　　(रा० च० मा०)

(१४२) आनी सिया=सीताजी को लाये । ढिग=पास ।

* जनक पाँय पूजन लगे, साखोच्चार उचारि ।
रानी नृपमन मोद भरि, लै कोपर सुचि वारि ॥
लै कोपर सुचि वारि नारि वर मङ्गल गाई ।
कन्यादान विचारि देव फूलन झरि लाई ॥
† फूले तरु नृप सुकृत के, चरन प्रछालत सुख जगे ।
निरखि वदन दम्पति मगन, जनक पाँय पूजन लगे ॥१४३॥

‡ जे पद-पङ्कज नृप धरे, जे सिव मानस हंस ।
जे पद-पङ्कज मृदुल रस, मुनि संकुल अलि बंस ॥
मुनि संकुल अलि बंस प्रगट कीन्ही जिन गंगा ।
बरनत वेद पुरान प्रनत हित विरद अभंगा ॥
विरद अभंग प्रसंग श्रुति, मुनितिय के पातक हरे ।
अज सनकादिक ते भजे, जे पद-पङ्कज नृप धरे ॥१४४॥

---

* "बर-कुँअरि-करतल जोरि साखोच्चार दोउ कुलगुरु करैं ।"

† "सगुन सु बन नव दल सुतरु फूलत फलत सुकाज ।" (रामाज्ञा प्रश्न)

(१४३) साखोच्चार उचारि=विवाह में पैपुजी के समय का एक कृत्य जिसमें मन्त्र उच्चारण किये जाते हैं । कोपर=बड़ा थाल । प्रछालत=धोते हुए ।

‡ "बहुरि राम-पद-पंकज धोये । जे हर हृदय कमल महुँ गोये ॥" (रा० च० मा०)
"जद्यपि अति पुनीत सुरसरिता तिहुँ पुर सुजस घनेरो ।
तजे चरन अजहूँ न मिटत नित बहिबो ताहू केरो ॥"
(विनयपत्रिका, ८७)

(१४४) मानस=मन ; मानसरोवर । संकुल=घने । अलि=भौंरा । विरद=प्रण । इस छन्द में श्रीराम के चरणों की सर्वतोमुखी महिमा का वर्णन है ।

जनक राय सम को सुकृत, कहत देव मन माहिं।
निरखि मगन कौतुक परम, जय जय कहहिं सिहाहिं॥
जय जय कहहिं सिहाय वचन कहि चार सँवारे।
❀ नर नारिन लखि रूप नेह बस देह बिसारे॥
देह बिसारे रूप को, ब्याह लाह लोयन रुकृत।
कौसलेस मिथिला नगर, जनक राय सम को सुकृत॥१४५॥

होन लगीं वर भाँवरी, दुलहिन ललित ललाम।
दूलह सुन्दर साँवरो, ससिमुख पंकज राम॥
ससिमुख पंकज राम बाम लखि मंगल गावहिं।
मुनिगन भाँवरि कृत्य करहिं गनि तियनि बतावहिं॥
मगन मोद भाँवरि परै, रानी तन मन बावरी।
सब कुलचार विचार करि, होन लगीं वर भाँवरी॥१४६॥

---

* "भये मगन सब देखनिहारे। जनक समान अपान बिसारे॥" (रा० च० मा०)

(१४५) सिहाहिं = स्पर्धा करते हैं। लोयन = नेत्र।

† "दूलह श्रीरघुनाथ बने दुलही सिय सुंदर मंदिर माहीं।
गावति गीत सबै मिलि सुंदरि बेद जुवा जुरि बिप्र पढ़ाहीं॥"
(कवितावली, बा० का० १७)

"..
करि होम विधिवत गाँठि जोरी, होन लागी भाँवरी॥"
(रा० च० मा०, दोहा ३५६)

(१४६) ललित ललाम = अत्यन्त सुन्दर और सलोनी। बाम = स्त्रियाँ। कुलचार = कुल की रीति।

* राम निछावरि को गनै, मुकता मनिगन खानि।
मंडप धनु पूरो भयो, जनु जुवारि जव धान॥
जनु जुवारि जव धान जनक मन्दिर ते आवै।
मुनि बसिष्ठ के वचन नेग कहि ताहि दिवावै॥
नेग साधि आहुति दई, ब्याह भयौ सब कोउ भनै।
देव भूप रानी जनक, राम निछावरि को गनै॥१४७॥

जेहि विधि राम विवाह भौ, सो कहि सकत न सेस।
सम्पति सोभा सुख सुभग, मंगल मोद सुवेस॥
मंगल मोद सुवेस साजु सुभ सकल समाजे।
कहि कहि थकहिं गनेस व्यास जिन श्रुति पथ साजे॥
श्रुति पथ साजे ते चकित, मोद विनोद उछाह भौ।
तुलसिदास सो किमि कहै जेहि विधि राम विवाह भौ॥१४८॥

---

* "निरखि निछावरि करहिँ बसन मनि छिनु छिनु॥" (जानकीमङ्गल, १६५)

(१४७) जुवारि = ज्वार (जुगडी), जव और धान जैसे साधारण धान्य की भाँति धन का ढेर लग गया। नेग = नियम। साधि = चुकाकर, पूरा करके। अत्युक्ति अलङ्कार।

† "ब्याह उछाह राम-सीता को सुकृत सकेलि बिरंचि रच्यो री।" (गीतावली)

(१४८) जिस उत्सव के साथ श्रीरामचन्द्रजी का विवाह हुआ उसका वर्णन १००० मुखवाले शेषनागजी भी नहीं कर सकते फिर (बेचारे) तुलसीदास भला कैसे कहैं। वेदों का मार्ग बतानेवाले व्यास और गणेशजी ऐसे बुद्धिमान् भी उस आनन्द को कहते कहते थक जाते हैं और फिर कहने लगते हैं।

* जनक कीन जो मुनि कहेउ, सब कन्यका विवाह।
भरत सत्रुसूदन लखन, दूलह करे उछाह ॥
दूलह करे उछाह नृपति दसरथ सुख पाया।
राम ब्याह विधि सोधि मुनिन देवनि करवायौ ॥
देवन करवायो सुकृति, दूलह दुलहिन सुख लह्यौ।
जोरी चारु निहारि सुख, जनक कीन जो मुनि कह्यौ ॥१४९॥

मघा मेघ दसरथ भये, जाचक दादुर मोर।
सरि सरिता दिजगन भये, बाढ़ि चले चहुँ ओर ॥
बाढ़ि चले चहुँ ओर सालि जनकादिक रानी।
पुर परिजन सब कृषी सुखी सुख सुन्दर पानी ॥
सुन्दर पानी बुन्द मनि, भूषन पट बर्षत नये।
राम सिया पावस सुखद, मघा मेघ दसरथ भये ॥१५०॥

---

* "जसि रघुवीर ब्याह बिधि बरनी। सकल कुँवर ब्याहे तेहि करनी॥" (रा० च० मा०)
"जनक अनुज तनया दुइ परम मनोरम। जेठि भरत कहँ ब्याहि रूपरति सिय सम ॥
...."
(जानकीमङ्गल)
"सिय लघु भगिनि लषन कहँ रूप उजागरि। लषन अनुज श्रुतिकीरति सब गुन आगरि ॥
राम विवाह समान ब्याह तीनिहु भये.."
(जानकीमङ्गल, १७२-१७३)

(१४९) गुरुजी के आज्ञानुसार जनकजी ने चारों राजकुमारों से अपनी कन्याओं का विवाह कर दिया। इससे दशरथजी को अत्यन्त आनन्द मिला। ब्रह्मा ने स्वयं राम-विवाह की तिथि शोधी थी। मुनियों और देवताओं ने मिलकर विवाह करवाया था। इस पुण्य का फल दूलह और दुलहिनों को सुख है।

(१५०) श्रीराम और सीता वर्षा ऋतु के समान सुखदायी हैं और मघा नक्षत्र के मेघ दशरथ हैं। गोस्वामीजी ने इस स्थल पर क्या ही मनोरम रूपक बाँधा है। मघा नक्षत्र के उदय होने पर घनघोर वर्षा होती है। वैसे ही दशरथजी अपनें चारों पुत्रों और बहुओं को देखकर आनन्द से दान की वर्षा करने लगे। मँगता लोग मेंढकों की भाँति शीघ्र प्रसन्न होकर केकी की तरह मीठे स्वर सुनाने लगे। ब्राह्मण नदी और तालाबों की तरह उमड़ चले, जनक आदि की रानियाँ धान के खेतों के समान हरी-भरी आनन्द में विभोर हो रही थीं। नगरनिवासी और सम्बन्धी किसानों की तरह प्रफुल्लित हो रहे थे, सुख की बोछारें आ रही थीं। अलङ्कार और वस्त्रों की वर्षा हो रही है।

*वर कन्या राउर चले, मुनि आयसु अस कीन।
भूप समाज समेत सब, जनवासे पग दीन॥
जनवासे पग दीन बजे दुन्दुभि अति भारी।
दुलहिनि दूलह ल्याइ भवन आसन दै नारी॥
दूलह दुलहिनि सम निरखि, रानी सुख सानी भले।
रहस बिबस लहकौर कृत, वर कन्या राउर चले॥१५१॥

रमा उमा गावन लगी, लै मातनि को नाम।
धरि कपोल लहकौर कृत, करनि खवावत राम॥
करनि खवावत राम कुलाहल मंगल होई।
नेक अनेक प्रकार सकुच कहुँ प्रगटित दोई॥
प्रगटित त्रिय वचननि कहै, रामसिया प्रेमनि पगी।
†कहत कैकई कौसिला, रमा उमा गावन लगी॥१५२॥

---

* "गे जनवासेहि राउ संग सुत सुत-बहु। जनु पाये फल चारि सहित साधन चहुँ॥"
(जानकीमङ्गल, १७७)

(१५१) जनवासा=वह स्थान जहाँ बारात ठहरती है। पग दीन=गये। दुन्दुभि=नगाड़े। ल्याइ=लाकर। सुख सानी=आनन्द में विभोर। रहस=आमोद-प्रमोद। लहकौर=विवाह के समय का एक कृत्य जिसमें स्त्रियाँ जनवासे आकर वर को बताशे खिलाती हैं।

† "देहिँ गारि लहकौर समौ सुख पावहिँ।" (जानकीमङ्गल, १६७)
(१५२) करनि=हाथों से। कुलाहल=भीड़।

* सिय सूधी तुम चतुर हौ, रमा कहेउ मुसुक्याइ।
मुनि-तिय की नाईं कहूँ, कीजिय नहिं रघुराइ॥
कीजिय नहिं रघुराइ, सीय सिख सुनेहु हमारी।
पद कबहुँक जिनि छियौ पगनि की सुगति निनारी॥
नारी चारि विवाहियौ, एक धनुष दलि गथ लहौ।
रमा कहति रघुनाथ सों, सिय सूधी तुम चतुर हौ॥१५३॥

† हास विलास विनोद मय, नेग जोग करवाइ।
राम उठाये भवन ते, सिविका रुचिर चढ़ाइ॥
सिविका रुचिर चढ़ाइ दुलहिनिन सहित सुहाये।
दुन्दुभि देवनि पुहुप राम जनवासे आये॥
जनवासो देखत मगन, भूप दीन लखि तुरँग गय।
पोषे जाचक विविधि सुख, हास विलास विनोद मय॥१५४॥

---

* "लहकौरि गौरि सिखाव रामहिं सीय सन सारद कहैं।
रनिवासु हास-विलास-रस बस जनम को फलु सब लहैं॥" (रा० च० मा०)

(१५३) नाईं = समान। निनारी = अनोखी, अलग। एक धनुष तोड़कर कीर्ति पाई और चार राजकुमारियों का विवाह करा लिया। क्या यह कम चतुराई है!

† "कौतुक विनोदु प्रमोदु प्रेमु न जाइ कहि जानहिँ अली।
वर कुँअरि सुंदर सकल सखी लवाइ जनवासहिँ चली॥" (रा० च० मा०, दोहा ३५६)

(१५४) सिविका = पालकी। रुचिर = सुन्दर। पोषे = सन्तुष्ट किये।

* षटरस चारि प्रकार के, भोजन विविध बनाइ।
सतानन्द आपुहि जनक दसरथ चले लिवाइ॥
दसरथ चले लिवाइ पावड़े अर्घ सुहाये।
मनि सिंहासन रुचिर छरस भोजन परुसाये॥
† भोजन परुसाये मुदित, तियगन गान बिहार के।
मुनि दसरथ भोजन कियो षटरस चार प्रकार के॥१५५॥

पान मान प्रमुदित दये, भये बिदा जनवास।
गहगह बाजी दुन्दुभी, मङ्गल मोद विलास॥
मङ्गल मोद विलास बरातिन मन्दिर भूले।
‡ जनक प्रीति रजु सुदृढ़ राम छवि पावस झूले॥
भूले गज जावक न गृह, पहिरि पाइ मन्दिर गये।
जान राय रघुपति सबहिं, पान मान प्रमुदित दये॥१५६॥

---

* "चारि भाँति भोजन विधि गाई। एक एक बिधि बरनि न जाई॥
छ रस रुचिर बिंजन बहु जाती। एक एक रस अगनित भाँती॥" (रा० च० मा०)

† "देहिँ गारि बर नारि नाम लै दुहुँ दिशि।" (जानकीमङ्गल, १७६)

(१५५) विविध = तरह तरह के।

‡ "नृप कियो भोजन पान, पाइ प्रमोद जनवासहिँ चले॥" (जानकीमङ्गल, १८०)
"बहुत दिवस बीते एहि भाँती। जनु सनेह-रजु बँधे बराती॥" (रा० च० मा०, ३६३)

(१५६) गहगह = यहाँ शब्द या ध्वनि के अनुकरण से अच्छा अलङ्कार-विधान हुआ है। "बाज गहगहे निसाना"—(रा० च० मा०)

तीनि मास दसरथ रहे, नित नव आदर होइ।
बिदा साज साजी जनक, सबको मुख रुख जोइ॥
सबको मुख रुख जोइ सहस दस सिन्दन साजे।
मुकता मनिगन सुपट भांड कञ्चन के राजे॥
मनिगन लागे अत्र जे, ते ते रथ पूरे लहे।
* जनक राइ दाइज सजे, तीनि मास दसरथ रहे॥१५७॥

† दिग्गज सहस पचास लौं, सजे जरकसी साज।
मनि मुकता की झालरी झपे सोह गजराज॥
पुरी सोह गजराज जरी जरकसी अँबारी।
तिमिर अरुन इक ठौर मनौ पावस अँधियारी॥
पावस अँधियारी सघन, घंट सब्द सुरवास लौं।
जनक राज दाइज सज्यौ, दिग्गज सहस पचास लौं॥१५८॥

---

* "दाइज भयउ अनेक बिधि, सुनि सिहाहिँ दिसिपाल।
सुख संपति संतोषमय, सगुन सुमंगल माल॥" रामाज्ञाप्रश्न)

(१५७) रुख = इच्छा। सिन्दन (स्यन्दन) = रथ।

† 'मत्त सहस दस सिंधुर साजे। जिन्हहिँ देखि दिसि-कुंजर लाजे॥" (रा० च० मा०)

(१५८) जरकसी = हाथियों के ऊपर डालीजानेवाली झूल। झालरी = झालर। झपे = ढके हुए। जरी = जड़ी हुई, जरी के कामवाली। तिमिर = अँधेरा। पावस = वर्षाऋतु। सुरवास = स्वर्ग।

* तुरी लाख दस वर सजे, बरन बरन के जीन।
रथ तुरंग ते अति भले, चंचल सुभग नवीन॥
चंचल सुभग नवीन अलंकृत भूषन राजे।
बरन निदरि मन वेग रंग रंगनि बनि साजे॥
बनि बनि साजे वाजि वर, जिन्हैं देखि सुरहय लजे।
जनक राइ दाइज सज्यौ, तुरी लाख दस वर सजे॥१५९॥

वृषभ वृन्द दस लाख लौं, सुन्दर सब गुन धाम।
स्रृंग अंग मंडित पुरट, सोहत ललित ललाम॥
सोहत ललित ललाम भरे भोजन पकवाने।
सौरभि मृगमद मलय, अगर कुंकुम के थाने॥
अगर कुंकुमा रस भरे झपे जरकसी आख लौं।
जनक राइ दाइज सजे, वृषभ वृन्द दस लाख लौं॥१६०॥

---

* "तुरग लाख रथ सहस पचीसा। सकल सँवारे नख अरु सीसा॥" (रा० च० मा०)

(१५९) तुरी = घोड़े। अलंकृत = आभूषणों से सजे हुए। लजे = लज्जित हो गये। निदरि मन वेग = मन से भी तीव्र गतिवाले।

† "भरि भरि बसह अपार कहारा। पठई जनक अनेक सुसारा॥
विविध भाँति मेवा पकवाना। भोजन साजु न जाइ बखाना॥" (रा० च० मा०)

(१६०) वृषभ = बैल। वृंद = समूह। मंडित = सजे हुए। पुरट = सोना। मृगमद = कस्तूरी। मलय = चन्दन।

* महिषी लाख सतानवै, देस देस की खानि।
मनहु स्याम घन के सुवन, मही चरैं सब आनि ॥
मही चरैं सब आनि दूध धरनी धँसि धारे।
सृंग कंठ मनिहार सिसुन प्यावत सुकुमारे ॥
प्यावत सुकुमारे थननि, दूध सुधादि विधान वै।
जनक राइ दाइज सज्यौ, महिषी लाख सतानवै ॥१६१॥

धेनु लाख जुग बानवै, कामधेनु सी रूप।
अलंकार मनिगन वसन, सोहत परम अनूप ॥
सोहत परम अनूप दूध सूधी सुठि रूरी।
संग सिसुन के वृन्द सकल सुभ लच्छन पूरी ॥
पूरी लच्छन को कहै जेहिं, देख्यौ सोई जान वै।
जनक राइ दाइज सज्यौ, धेनु लाख जुग बानवै ॥१६२॥

---

* "कनक बसन मनि भरि भरि जाना। महिषी धेनु बस्तु बिधि नाना ॥"
(रा० च० मा०)

(१६१) महिषी = भैंस। सृंग = (श्रृंग) सींग। दूसरी पंक्ति में अपूर्व उत्प्रेक्षा है।

(१६२) अनूप = उपमा-रहित। सुठि रूरी = अत्यन्त सुन्दर।

सिविका लाख बहत्तरी, सियदासी असवार ।
मनहु कामतिय रति चढ़ीं, करि षोडस सिंगार ॥
करि षोडस सिंगार जानकी पिय अधिकारी ।
मन गति रति परवीन चतुर विद्या-छबि भारी ॥
विद्या-छबि सतिभाव उर, सिय सेवा उनमत्त री ।
दासी दाइज नृप सज्यो, सिविका लाख बहत्तरी ॥१६३॥

सवा लाख पिंजर सज्यौ कञ्चन-खचित बिचित्र ।
* सुक सारिका मराल बहु, बाज कुही सुचि मित्र ॥
बाज कुही सुचि मित्र सिया रुचि कै प्रतिपाले ।
ते सेवक सब लिये जानुकी सेवनवाले ॥
सेवनवाले भाग बड़, जगतजननि जेहिं जग सृज्यौ ।
तासु संग यह कौन बड़, सवा लाख पिंजर सज्यौ ॥१६४॥

---

(१६३) सिविका = पालकी । सिय सेवा उनमत्त री = सीताजी की सेवा करने में ही अपने आपको कृत्यकृत्य समझकर दीवानी रहती थीं । ऐसी बहत्तर लाख दासियों की पालकियाँ राजा जनक ने दहेज में दीं । सभी दासियाँ रूप-लावण्य में रति के समान थीं, साथ ही सुशिक्षित भी थीं ।

* "सुक सारिका जानकी ज्याये । कनक पिंजरन्हि राखि पढ़ाये ॥" (रा० च० मा०)

(१६४) पिंजर = पिंजड़े । कंचनं-खचित = सुनहले काम के । रुचि कै प्रतिपाले = अच्छी तरह पाले थे । सृज्यौ = बनाया ।

ऊँट अजा अरु स्वान को, लेखा गन्यौ सिराइ।
जे प्रिय सिय के नृप लख्यौ, नगर बाहरै जाइ॥
नगर बाहरै जाइ मनो अमरावति घेरी।
दुन्दुभि दये सहस्र छत्र अरु चँवर घनेरी॥
चँवर घनेरी भौन पट, आसन विविधि विधान को।
*दाइज दियौ न ये गने, ऊँट अजा अरु स्वान को॥१६५॥

† रानिन सुता सँवारि कै, करुना सीख सुनाइ।
पतिव्रत धर्महि दृढ़ धरेहु, सेयेहु सहज सुभाइ॥
‡ सेयेहु सहज सुभाय होउ नित स्वामि पियारी।
सदा सुहागिल होहु यहै आसिषा हमारी॥
यहै आसिषा देहिं हम, सुता अंक उर धारि कै।
भेंटि भेंटि पायन परैं, रानी सुता सँवारि कै॥१६६॥

---

* "दाइज़ अमित न सकिअ कहि, दीन्ह बिदेह बहोरि।
जो अवलोकत लोकपति, लोक संपदा थोरि॥" (रा० च० मा०, ३६५)

(१६५) लेखा = गिनति, संख्या। अमरावति = इन्द्रपुरी। घनेरी = बहुत सी।

† "पुनि पुनि सीय गोद कर लेहीं। देइ असीस सिखावन देहीं॥"

‡ "होयेहु संतत पियहिँ पियारी। चिरु अहिवात असीस हमारी॥"
(रा० च० मा०)

(१६६) सँवारि कै = साज सँभालकर। करुना सीख = दया की शिक्षा; दुखी होते हुए शिक्षा दी। दृढ़ = मज़बूती से। अंक उर धारि कै = गोद में लेकर हृदय से लगा लिया।

* जनक नैन धारा बहै, सुता लई उर लाइ।
सिय कंठा छोड़ति नहीं, जनक न त्यागी जाइ॥
जनक न त्यागी जाइ सचिव समुझावत राजै।
धीरज धर्म परान ग्यान गुन ध्यान समाजै॥
ध्यान समाज न लाज रह छुटत लगत रोवत गहै।
मातु गरै पुनि पितु धरै, जनक नैन धारा बहै॥१६७॥

बिदा हेतु रघुवर गये, जनक राइ के धाम।
रानिन लखि आसन दयौ कीन्हे राम प्रनाम॥
† कीन्हे राम प्रनाम कहत मृदु वचन सुहाये।
बिदा दीजिए मातु नृपति चह अवध सिधाये॥
अवध सिधाये सुनत नृप रानी मुख सूखत भये।
बचन न मुख-पंकज कढ़्यो बिदा हेतु रघुवर गये॥१६८॥

---

* "लीन्ह राय उर लाइ जानकी। मिटी महा मरजाद ज्ञान की॥
समुझावत सब सचिव सयाने। कीन्ह बिचारु अनवसरु जाने॥
बारहिँ बार सुता उर लाई। सजि सुंदर पालकी मँगाई॥" (रा० च० मा०, ३७०)

(१६७) धारा=आँसुओं की धारा। उर लाइ=हृदय से लगा ली। सचिव=मन्त्री। परान=भाग गये।

† "माँगेउ बिदा राम तब सुनि करुना भरि। परिहरि सकुच सप्रेम पुलकि पायन्ह परि॥"
(जानकीमङ्गल, १८६)

"बोले राम सुअवसर जानी। सील सनेह सकुचमय बानी॥
राउ अवधपुर चहत सिधाये। बिदा होन हम इहाँ पठाये॥
सुनत बचन बिलखेउ रनिवासू। बोलि न सकहिँ प्रेम बस सासू॥" (रा० च० मा०, ३६८)

(१६८) राइ=राजा। सुहाये=सुन्दर। सिधाये चह=जाना चाहते हैं। चह, कह आदि क्रियाओं के नंगे रूप भी गोस्वामीजी ने अपनी रचनाओं में यत्र तत्र रख दिये हैं। कढ़्यो=निकला।

* रानी रघुवर पाँइ धरि, कहति बचन भरि नैन।
तुम्हैं कहत मुनि जोगि जन, घट घट तुम्हरो ऐन॥
घट घट तुम्हरो ऐन सकल गति जाननवारे।
दीजिय प्रभु वर-जुगुल प्यास यह हृदय हमारे॥
हृदय हमारे तुम बसौ, कहैं दूसरो विनय करि।
† सुता किंकरी राखिए, रानी रघुवर पाँइ धरि॥१६९॥

‡ करि प्रनाम रघुपति चले, राम सहित सब भाइ।
सुता चढ़ाईं पालकी, सुन्दर सीख सिखाइ॥
सुन्दर सीख सिखाइ भूप पहुँचावन आये।
दुन्दुभि दीन्ह बजाइ मुनिन देवन गुन गाये॥
गुन गाये पाये सबनि, सगुन सुहावन अति भले।
समधी भेटि प्रनाम करि, करि प्रनाम रघुपति चले॥१७०॥

---

* अस कहि रही चरन गहि रानी। प्रेम पंक जनु गिरा समानी॥"

† "करि विनय सिय रामहिँ समरपी, जोरि कर पुनि पुनि कहै।
× × × ×
तुलसी सुसील सनेह लखि निज किंकरी करि मानिवी।
× × × × (रा० च० मा०)

(१६९) ऐन=घर ; घट घट में आपका वास है। वर-जुगुल=दो वरदान। किंकरी=दासी। राखिए=रख लीजिए ; रक्षा कीजिए। पाँइ धरि=पैर पकड़कर।

‡ "राम बिदा माँगी कर जोरी। कीन्ह प्रनाम बहोरि बहोरी।"
"पाइ असीस बहुरि सिर नाई। भाइन्ह सहित चले रघुराई॥" (रा० च० मा०)

(१७०) रघुपति चले राम=रघुवंश में श्रेष्ठ रामचन्द्रजी चले। (यहाँ पर रघुपति राम का विशेषण है।) दुंदुभि दीन्ह बजाइ=(कूच के) नगाड़े बजवा दिये।

अवधि पाँचयें दिन गये, बसि बसि सकल सुवास।
पुर प्रमोद आवत सुने, रहस विवस रनिवास॥
रहसि विवस रनिवास पहिरि सिंगारनि रानी।
आरति मंगल साजि गीत गावहिं मृदु बानी॥
आरति मंगल सजि सबै, कलस चौक चामर नये।
* अवधनाथ सुख की अवधि अवध पाँचयें दिन गये॥१७१॥

परिछन करि भीतर गईं, पुत्र-वधू सुत साथ।
मंगल मोद समाज जुत, आये कौसलनाथ॥
आये कौसलनाथ पुरी हरषित नर नारी।
पुत्रवधू सुत देखि मगन तन मन महतारी॥
महतारी वारहिं सुभग, भूषन पट मनिगन मई।
सुभ सिंहासन चारि धरि परिछन करि भीतर गईं॥१७२॥

---

* "दाइज पाइ अनेक बिधि सुत सुतबधुन समेत।
अवध नाथ आए अवध सकल सुमंगल लेत॥"
(रामाज्ञा, ४ सर्ग, स० ७)

(१७१) बसि बसि सकल सुबास = सभी अच्छे स्थानों में पड़ाव डालते हुए। रहस = आनन्द। रहसि = आनन्दित होकर। सुख की अवधि अवध = अयोध्या जो सुख की सीमा थी।

टिप्पणी—इसके बादवाले छन्द की टीका देखिए।

† "निगम नीति कुल रीति करि अरघ पाँवड़े देत।
बधुन्ह सहित सुत परिछि सब चलीं लवाइ निकेत॥"
(रा० च० मा०, बा० का० ३८१)

"साजि सुमंगल आरती रहस बिबस रनिवासु।
मुदित मातु परिछन चलीं उमगत हृदय हुलास॥" (रामाज्ञा)

(१७२) परिछन = आरती ; यह संस्कृत के 'परीक्षण' से निकला है जिसका अर्थ है परीक्षा लेना। बहुएँ कैसी हैं ? इस बात की परीक्षा परिछन के समय हो जाती है। मंगल = कल्याण। मोद = आनंद। जुत = (युक्त) सहित। वारहिं = निछावर करती हैं।

* मुनिनायक जो जो कहेउ, सो सो करि ब्यौहार।
दान दीन बिप्रन मुदित, भरि भरि कंचन थार॥
भरि भरि कंचन थार भामिनी मंगल गावैं।
रानी भूषन देहिं सकल आसिषा सुनावैं॥
आसिष देहिं सनेह भरि, संभु उमा परसन रहेउ।
राम भाइ दसरथ सुखद रहैं सदा मुनि जो कहेउ ॥१७३॥

राम बिबाह बखानई, मोद समुद्र उछाह।
नारद सारद सेष सुक, गनपति के अवगाह॥
गनपति के अवगाह ब्यास बिधि कहि कहि हारे।
मति अनुरूप बखानि भजन को भाव विचारे॥
मति अनुरूप बखानि कै, गिरा सुफल निज मानई।
† तुलसिदास के कौन मति, राम बिबाह बखानई ॥१७४॥

---

* "जो बसिष्ठ अनुसासन दीन्हीं। लोक बेद बिधि सादर कीन्हीं॥
× × × ×
आदर दान प्रेम परिपोषे। देत असीस चले मन तोषे॥"
(रा० च० मा०, बा० का० ३८५)

(१७३) परसन (प्रसन्न) = अनुकूल; ख़ुश। दशरथ ने वशिष्ठजी के आज्ञानुसार सब व्यवहार किये।

† "तुलसिदास कहै कहौ धौं कौन विधि अति लघुमति जड़ कूरगँवारु।"
(गीतावली, उत्तर० १०)
"सो मैं कुमति कहौं केहि भाँती। बाजु सुराग कि गाड़र ताँती॥" (रा० च० मा०)

(१७४) मोद समुद्र उछाह = आनन्द के समुद्र में उत्साह (की लहरें) भरकर। अवगाह = अथाह। तुलसिदास के कौन मति = यहाँ कवि अपनी दीनता प्रकट करता है।

अयोध्याकाण्ड

कुण्डलिया

अवधि अनन्द प्रबन्ध सुख, दिन दिन अति अधिकाइ।
　　* जब ते राम विवाह करि, आये कौसलराइ॥
आये कौसलराइ भुवन सब आनँद पूरे।
　　† रिधि सिधि संपति नदी अवधि सागर भरि पूरे॥
सागर सप्त प्रमान लौं, गयो सोक अरु दोष दुख।
　　अमर पुरी अहिपुर धरनि, अवधि अनन्द प्रचंड सुख॥१॥

‡ दसरथ भाग सराहईं, सुर मुनि चरित बखानि।
　　सुख सोभा संपति सुमति, पुरी भई सुखदानि॥
पुरी भई सुखदानि मोद मंगल मय छाई।
　　श्री रघुपति मुख देखि हरष अति लोग लुगाई॥
लोग लुगाई गुन गनत, सारद सो सुख चाहई।
　　पुरी भाग अनुराग सुर, दसरथ भाग सराहईं॥२॥

---

* "जब ते राम ब्याहि घर आये। नित नव मंगल मोद बधाये॥
...."

† "रिधि सिधि संपति नदी सुहाई। उमगि अवध अंबुधि कहँ आई॥" (रा० च० मा०)

(१) प्रबंध=इन्तज़ाम। रिधि (ऋद्धि)=संपत्ति; निधि के नौ प्रकार—
　　महापद्म अरु पद्म निधि, कच्छप मकररु शंख।
　　मुकुँद कुंद अरु नील मिलि, खर्व सहित नव संख॥

सिद्धि के आठ प्रकार (देखिए बा० कां० १३७)। भुवन सब=चौदह भुवन हैं—सात ऊपर के (भूलोक, भुवर्लोक, स्वःलोक, महर्लोक, जनलोक, तपलोक और सत्यलोक) तथा सात नीचे के (अतल, वितल, सुतल, तलातल, महातल, रसातल और पाताल)। अहिपुर=पाताल। प्रचंड=अत्यन्त।

‡ "बिधि हरि हर अनुकूल अति, दसरथ राजहिँ आजु।
　　देखि सराहत सिद्ध सुर, संपति समउ समाजु॥" (रामाज्ञा, १-७-६)

(२) सराहईं=प्रशंसा करते हैं। सुमति=मेल; अच्छी बुद्धि। देवता और मुनि दशरथजी के भाग्य की सराहना करते हैं और जो सुख अयोध्यावासियों को प्राप्त है उसे सरस्वती भी चाहती हैं।

नृप सों विनय सुनाइ कै, केकय-सुवन सप्रीत।
भरत हेतु विनती करी, कहि मृदु वचन विनीत॥
कहि मृदु वचन विनीत दिवस दस रहइँ गुसाँई।
मुनिहु कहा नृप पाँहिं भूप पठइय दोउ भाई॥
मुनि रुख ते आयसु दियौ, भरत उठे सिर नाइ कै।
कंक नाम लै भरत सँग, नृप सों विनय सुनाइ कै॥३॥

बिदा राम के चरन धरि, भरत सत्रुहन भाइ।
मात गुरू भ्राता नृपहिं, चले सबहिं सिर नाइ॥
चले सबहिं सिर नाइ सुभट सैना सँग लीन्हे।
श्री रघुपति-पद-कमल हृदय मन मधुकर कीन्हे॥
मन मधुकर पद कमल रति, सुमिरत नाम सनेह भरि।
धन्य भरत भूतल भये, बिदा राम के चरन धरि॥४॥

---

(३) भरत हेतु = भरतजी को केकय देश (काश्मीर) ननसाल ले जाने के लिए बिनती की। रुख = इच्छा। कंक = सारस पक्षी। रामचरितमानस में यह वर्णन नहीं है। उसमें मन्थरा ने कैकेयी से दशरथ का कपट सूचित करते हुए इस घटना का उल्लेख मात्र कर दिया है।

(४) सुभट = अच्छे योद्धा। मधुकर = भौंरा। रति = प्रेम। सनेह भरि = प्रेम से भरकर। भूतल = पृथ्वीमण्डल। चरन धरि = पैर छूकर, (और) हृदय में धारण करके। चौथी और पाँचवीं पंक्ति में वाचक लुप्तोपमा अलंकार है। अन्तिम पंक्ति में अनुप्रास है।

नारद आये अवधपुर, राम चरित हित जाहि।
प्रेम नेम जाके अवधि, राम रूप उर माहिं॥
राम रूप मन माहिं राम देखत उठि धाये।
पूजित विविध प्रकार जोरि कर प्रभु सिर नाये॥
प्रभु सिर नाये बूझियो, मुनि प्रगटी विधि हृदय जुर।
कहत विरंचि सँदेस सब, नारद आये अवधपुर ॥५॥

राम वचन सुनि मुनि गये, पाइ वचन बिस्वास।
राम प्रगट माया करी, सबके हृदय प्रकास॥
सबके हृदय प्रकास गुरुहिं नृप जाइ सुनायौ।
* राम तिलक कर देहु नाथ सबके मन भायौ॥
सब के मन भायौ सुखद, मुनि बसिष्ठ आनँद भये।
तिलक साज साजी मुदित, राम भवन सुनि मुनि गये ॥६॥

---

(५) हित=प्रेम। नेम (नियम)=अमर कोष के अनुसार बाह्य वस्तुसाध्य नित्य कर्मों को नियम कहते हैं, जैसे—शौच, सन्तोष, तप, वेद-पठन और ईश्वर का ध्यान। उर=हृदय। बूझियो=पूछा। विधि=विरञ्चि ; ब्रह्मा। जुर=बुखार, पीड़ा।

इस स्थल पर नारदजी के आने और रामचन्द्रजी से ब्रह्मा के सन्देश कहने का प्रसङ्ग मानस में नहीं है।

* "नाथ राम करिये जुवराजू। कहिय कृपा करि करिय समाजू॥" (रा० च० मा०)
"राम होहिं जुवराज जियत मेरे यह लालच मन माहीं॥"
(गीतावली, अ० का० १)

(६) पाइ वचन बिस्वास=विश्वास-युक्त वचन सुनकर (नारदजी चले गये)। मुदित=प्रसन्न होकर।

* नृप बातैं प्रगटीं सबै, मुनि रघुबर समुझाइ।
नेम क्रिया व्रत धर्म नृप, तिलक-भेद विधि गाइ॥
तिलक-भेद विधि गाइ कहेउ भूपतिहिं बुलाई।
मंगल वस्तु मँगाइ तिलक की घरी सुहाई॥
घरी सुहाई कालि है, राम राज बैठहिं तबै।
बाजै विपुल बधाव पुर, नृप बातैं प्रगटीं सबै॥७॥

† राम हेतु मंगल रचौ, आँनौ तीरथ नीर।
पान फूल फल मूल तृन, हय गय मनि धन चीर॥
हय गय मनि धन चीर पुरी सुन्दर रचि राखौ।
बन्दनवार पताक कलस चौकैं अभिलाषौ॥
अभिलाषौ कुंकुम अगर, बीथी केरनि सों सचौ।
मनिमय दीप प्रकासियौ, राम हेत, मंगल रचौ॥८॥

---

* "भूप सजेउ अभिषेक समाजू। चाहत देन तुम्हहिँ जुवराजू॥
राम करहु सब संजम आजू। जैं बिधि कुसल निबाहे काजू॥"
(रा० च० मा०, अ० का० ११)

(७) वशिष्ठजी ने रामचन्द्रजी से दशरथजी की इच्छा प्रकट कर दी। नियम=देखिए अयोध्याकाण्ड कुं० ५। व्रत=काम्य और स्वयं गृहीत कर्म को व्रत कहते हैं; जैसे उपवास, नक्तभोजन आदि। क्रिया चार प्रकार की होती है—भक्ति, तपस्या, सेवा, श्रद्धा। धर्म=जो समाज को धारण करे। नृपतिलक=राजतिलक। विधि=जो बातें शास्त्रों के अनुसार मानने योग्य हैं।

† "हरषि मुनीस कहेउ मृदु बानी। आनहु सकल सुतीरथ पानी॥"
(रा० च० मा०, अ० का० ७)

(८) आनौ=लाओ। तृन=दूर्वा, कुश। रचि राखौ=सजाओ। अभिलाषौ=प्रयत्न करो। बीथी=गली। सचौ=सजाओ। प्रकासियौ=जलाओ।

देखि देव सोचत भये, अवधि राम की राज।
दुष्ट कष्ट को नासिहै, निहचै भयेउ अकाज॥
निहचै भयौ अकाज सुमिरि सारदा बुलाई।
राम बिपिन कहँ जाइँ मातु सो करहु उपाई॥
* राम विपिन कहँ जाहिं जब, करु उपाइ बुधिबल नये।
चरन गहे पालन करै, देखि देव सोचत भये॥९॥

धृक धृक देवन कहि चली, आगे हेतु विचारि।
अवधि गई रानी जहाँ, देखी सुमति सम्हारि॥
देखी सुमति सम्हारि तहाँ परवेस न पायो।
† कंठ मन्थरा बैठि तासु चित हित भरमायो॥
हित भरमायौ तेहिं सबै, प्रिया केकई की अली।
पुर दुखदाइनि सी भई, धृक धृक देवन कहि चली॥१०॥

---

* "बिपति हमारि बिलोकि बड़ि, मातु करिअ सोइ आजु।
रामु जाहिँ बन राजु तजि, होइ सकल सुर काजु॥" (रा० च० मा०, १२)

(९) अवधि राम की राज=यदि अयोध्या में राम का राज्य हो जायगा। दुष्ट कष्ट=राक्षसों द्वारा दिये हुए दुःख। को=कौन।

टिप्पणी :—भयेउ और भयौ तथा जाइँ और जाहिँ में पुनरुक्ति दोष बचाने के लिए रूपान्तर कर दिया है।

† "नाम मंथरा मंद मति, चेरी केकइ केरि।
अजस पेटारी ताहि करि, गई गिरा मति फेरि॥" (रा० च० मा०, अ० का० १३)

(१०) हेतु=कारण। परवेस=(प्रवेश) पैठ। भरमायो=सन्देह में डाल दिया। हित भरमायो तेहिं सबै=सबकी शुभाकांक्षा को अथवा सारी भलाई को सन्देह में डाल दिया। प्रिया=प्यारी। अली=सखी।

नगर देखि बातैं कहीं, हित तोरन की घात।
मोहिं सोच इक उर भयो, जो फुर मानहु बात॥
जो फुर मानहु बात हितू हेती दुख जानै।
काज नसात विचारि बिना पूछिहू बखानै॥
बिन पूछे प्रभु के बचन, इन बातन पातक नहीं।
उत्तर देत न दोष है, नगर देखि बातैं कहीं॥११॥

इन ठौरनि उत्तर बिना, पूछेहु देइ सो दास।
सर्प अस्त्र अरि विष अनल, अनिल कंट कटु वास॥
अनल कंट कटु वास असन पथ अपथ जनावै।
लाभ हानि दुखदानि कहत पातक नहिं आवै॥
लाभ हानि नहिं बोलई, प्रभु आयसु रुख निसि दिना।
स्वामि सुहागिल देहि सिख, इन ठौरनि उत्तर बिना॥१२॥

---

(११) मन्थरा के वचन :—घात = चाल। फुर = सच। हितू = हित चाहनेवाला, शुभचिन्तक। हेती = व्यवहारी। बखानै = कहता है। बिन पूछे प्रभु के बचन = वचनों द्वारा स्वामी से बिना पूछे।

(१२) अस्त्र = दूर से फेंककर मारा जानेवाला हथियार अस्त्र है जैसे बाण, शक्ति आदि। अनल = अग्नि। अनिल = वायु। कंट = काँटा। कटु वास = बुरा निवास-स्थान। असन = भोजन। अपथ = कुमार्ग। दुखदानि = दुःखदायी बातें। आयसु रुख = आज्ञा की प्रतीक्षा।

मोहि भामिनी दुख भयो, समुझि एक उतपात।
सब पुर को नीको लगै, तुम्है भरत को घात ॥
तुम्है भरत को घात बात नृपरानि विचारी।
काल्ह राम नृप होइँ भई सोभा पुर भारी ॥
भारी बिपति विचारि कै, हृदय मोर दुख जरत यौं।
भरत विदेस नरेस पर, मोहिं भामिनी दुख भयौ ॥१३॥

बिपति बीज अंकुर भयौ, बयौ कौसिला रानि।
पावस नृप उर देखि सुभ, आयसु सुन्दर पानि ॥
आयसु सुन्दर पानि अवधि थल सुत बल पाई।
गुर पुरजन भे बारि तुम्हैं नित कीन उपाई ॥
कीन उपाइ सहाइ सब, भरत तेज तप सो गयौ।
चारि दिवस गत देखियौ, बिपति बीज अंकुर भयौ ॥१४॥

---

(१३) उतपात=ऊधम। तुम्है भरत को घात=तुम्हारे और भरत के साथ चाल खेली गई है। नृपरानि=कौशल्या। यौ=यह। नरेस पर=राजा दूसरे के हाथ में हो गये हैं।

(१४) तुम्हैं नित=तुम्हारे लिए। कौशल्या ने विपत्ति का बीज बोया है, चार दिन बाद देख लेना उसमें अङ्कुर भी निकल आवेगा। शुभ वर्षाऋतु देखकर राजा ने हृदय से पानी बरसने की (राजतिलक के साज सजाने की) आज्ञा दे दी है। अयोध्या जैसे स्थान में अपने पुत्र (रामचन्द्र) का बल पाकर और गुरु तथा अयोध्यावासियों की सहायता से (ये लोग विपत्तिरूपी बीज को नित्य सींचते हैं।) तुम्हें कष्ट देने का उपाय किया गया है। इस कार्य में सबने भरसक सहायता की है और भरत का तेज और तप क्षीण हो गया है।

सत्य मानि रानी कहै, कहु सखि मोहिं उपाउ।
* भरत गये असगुन भये, सो सखि यहै प्रभाउ॥
सो सखि यहै प्रभाउ सुहृद हृद सबको जानै।
सवति ईरषा छाँड़ि पुत्र पति आपन मानै॥
आपन मानि न कछु कहिय, नृप मलीन उघरन चहै।
हितू जगत मेरी तुही, सत्य मानि रानी कहै॥१५॥

कहि सुखाइ रानी बदन, जनि मन करसि मलीन।
द्वै वर तेरे नृप चहै, लेहि माँगि परवीन॥
लेहि माँगि परवीन देखि दृढ़ वचन न डोलै।
राम विपिन सुत राजि सत्य करि नृप सन बोलै॥
राम विपिन जब जाइहै, भरत भूप होई सदन।
सवति हृदय यहि भाँति दहि, कहि सुखाइ रानी बदन॥१६॥

---

* "सुनु मंथरा बात फुरि तेरी। दहिनि आँखि नित फरकै मोरी।
× × × ×
काह करौं सखि सूध सुभाऊ। दाहिन बाम न जानौं काऊ॥"
(रा० च० मा०, अ० का० २१)

(१५) सुहृद हृद सबको जानै=हमारा हृदय सबको मित्र समझता है। नृप मलीन उघरन चहै=राजा के हृदय की कुटिलता (दुर्भाव) खुलना चाहती है।

(१६) बदन=मुख। परवीन (प्रवीण)=चतुर। सदन=घर। दहि=जलाकर।

मन प्रतीति रानी भई, लई सीख उर मानि।
जो कछु मन रघुपति चहैं, सोई सत्य उर आनि ॥
सोई सत्य उर आनि कोप कै भवन सिधाई।
दुर्गति करि तन दसा मनहु जमपुर ते आई ॥
दसा मनहु नृप मरन की धरनि कुलक्षन की मई।
देवि कुरीति सुप्रीति सिख मन प्रतीति रानी भई ॥१७॥

* का न करै यह कर्म बल, केहि जग जम नहिं लीन।
पवन मझायौ काहि नहिं, को दुख दुखी न दीन ॥
को दुख दुखी न दीन मोह मद केहि नहिं बाँध्यौ।
ब्रह्मा जुर नहिं जर्‍यौ कामसर काहि न साध्यौ ॥
काहि न साध्यौ क्रोध दल केहि न छल्यौ तरुनी तरल।
चित चिंता व्यालिनि जथा का न करै यह कर्म बल ॥१८॥

---

(१७) दुर्गति = बुरी दशा। धरनि कुलच्छन की मई = पृथ्वी अपशकुनों से भर गई।

"सुनत नगर आनंद बधावन, कैकेयी बिलखानी।
तुलसीदास देव माया बस कठिन कुटिलता ठानी ॥"
(गीतावली, अयोध्याकाण्ड, १)

* "कर्म प्रधान विश्व रचि राखा। जो जस करै सो तस फल चाखा ॥" (रा० च० मा०)

को न क्रोध निरदहेउ काम वश केहि नहिँ कीन्हों।
को जु मोह दृढ़ फन्द बाँध त्रासन करि दीन्हों ॥
केहि के हिय नहिँ लाग कठिन अति नारि-नयन-शर।
लोचन जुत नहिँ अन्ध भयो श्री पाय कवन नर ॥
सुर नाक लोक महिमण्डलहु को जु मोह कीन्हों जय न।
कह तुलसिदास सो उबर जेहि राख राम राजिवनयन ॥ (कवितावली)
श्रीमद वक्र न कीन्ह केहि, प्रभुता वधिर न काहि।
मृगनयनी के नयन-सर, को अस लाग न जाहि ॥ (रा० च० मा०)

(१८) मझायौ = पार किया। साध्यौ = साधत किया। तरल = द्रव, चंचल। व्यालिनि = नागिन।

अवध पुरी अमरावती, बाजै विपुल बधाव।
सबके उर आनन्द अति, राम तिलक सतिभाव॥
राम तिलक सतिभाव साइँ समयौ नृप पायौ।
* सरल सुहृद नृप हृदय केकई गृह चलि आयौ॥
आयौ सुनि रिस के सदन, बदन पीत भय छावती।
अवधिनाथ सुरपति सरिस, अवधि पुरी अमरावती॥१९॥

† सो दसरथ कम्पहि हिये, काम प्रताप बलीन।
जाके बस त्रयलोक मह, केहि अनर्थ नहिं कीन॥
केहि अनर्थ नहिं कीन्ह चन्द सुरपति गति देखौ।
नृप दिलीप मुनि सम्भु जजातिहिं चित अवरेखौ॥
चित अवरेखौ काम दल, तीन लोक भेदित किये।
ताको सर नृप उर गड़्यौ, सो दसरथ कम्पहिं हिये॥२०॥

---

* "साँझ समय सानंद नृपु, गयउ कैकई गेह।
गवनु निठुरता निकट किये, जनु धरि देह सनेह॥" (रा० च० मा०, २५)

(१९) अमरावती = इन्द्रपुरी। सतिभाव = सच्चे भाव से। साइँ समयौ नृप पायौ = ईश्वर ने राजा दशरथ को अच्छा अवसर दिया। रिस के सदन = कोपभवन।

† "सुरपति बसै बाँह बल जाके। नरपति सकल रहहिँ रुख ताके॥
× × × ×
सूल कुलिस असि अँगवनिहारे। ते रतिनाथ सुमन-सर मारे॥"
(रा० च० मा०)

(२०) जाके बस = जिस (काम) के वश में होकर त्रिलोक में ऐसा कौन है जिसने अनर्थ नहीं किया? अनर्थ = बुराई। चंद सुरपति = चन्द्रमा ने अपने गुरु की पत्नी तारा को छीन लिया था और उससे बुध का जन्म हुआ था। इन्द्र ने धोखा देकर अहल्या से व्यभिचार किया था।

टिप्पणी—इन्द्र गौतम ऋषि का वेष धारण करके और चन्द्रमा मुर्ग का रूप रखकर अहल्या को छलने गये थे।

देखि जाय रानी विकल, भूमि सैन तन दीन।
पट पुरान सूखे अधर, नैन अरुन रँग पीन॥
नैन अरुन रँग पीन मनहु दुरदसा अनैसी।
बिपति नारि के रूप कुमति जस प्रगटति तैसी॥
प्रगटति वचन न वदन महँ, कुमति साज धरि छल कुथल।
भूप सभय पैठे भवन, देखि जाय रानी विकल॥२१॥

क्रोध कौन कारन कियौ, गजगामिनि वर॰ नारि।
जोइ माँगसि सोइ देउँ तोहिं, कामादिक फल चारि॥
कामादिक फल चारि तोहिं परतीति सदाई।
तेरे सुख के हेत तिलक की घरी सुधाई॥
घरी सुधाई तिलक की, अवधि लोग सुनि सुनि जियौ।
* करि प्रबोध नृप पानि गहि, क्रोध कौन कारन कियौ॥२२॥

---

(२१) पीन=रोते रोते नेत्र सूज उठे थे। अनैसी=खराब (असाधारण)। कुमति=दुर्बुद्धि। प्रगटति वचन न वदन महँ=मुख से कुछ नहीं कहती। कुथल=शोकभवन। पैठे=प्रविष्ट हुए, घुसे।

* "पुनि कह राउ सुहृद जिअ जानी। प्रेम पुलकि मृदु मंजुल बानी॥" (रा॰ च॰ मा॰)

(२२) गजगामिनि=हाथी की सी मंथर गति से चलनेवाली। कामादिक=अर्थ, धर्म, काम, (धाम) मोक्ष। परतीति=विश्वास। करि प्रबोध=समझाकर। पानि=हाथ।

उठि बैठी बोलत भई, कर कटाक्ष मुसुक्याइ।
* भूप न जानै सुहृद हृद, नारिचरित के भाइ ॥
नारिचरित के भाइ विधिहु नहिं जाननहारे।
द्वै वर थाती देहु और हम तजे तुम्हारे ॥
तजे तुम्हारे दानिता, कहौ सपथ बाचौ नई।
फिरि न टरे कहि उचरौ, उठि बैठी बोलत भई ॥२३॥

सपथ सत्य लखि कहि चली, वचन अमङ्गल-मूल।
† देहु एक वर प्रथम यह, भरत राज अनुकूल ॥
भरत राज अनुकूल दूसरो माँगहुँ साईं।
‡ चौदह बरिस बिसेषि रामु वन मुनि की नाईं ॥
मुनि की नाईं जाइ वन, कालि राम तौ अति भली ॥
मोर मरन अपनो अजस, सपथ सत्य लखि कहि चली ॥२४॥

---

* "पुनि कह राउ सुहृद जिअ जानी। प्रेम पुलकि मृदु मंजुल बानी ॥" (रा० च० मा०)

(२३) कटाक्ष = अपाङ्ग। नारिचरित के भाइ = त्रियाचरित्र के (हाव-) भाव में मस्त होकर। भाइ = भाव। थाती = धरोहर। दानिता = दानीपन। उचरौ = (मुख से) उच्चारण करो।

† "सुनहु प्रानप्रिय भावत जीका। देहु एक बर भरतहिँ टीका ॥"

‡ "तापस बेस बिसेषि उदासी। चौदह बरिस रामु बनबासी ॥"
(रा० च० मा०)

(२४) अमंगलमूल = बुराइयों की जड़। अनुकूल = योग्य, पक्ष में। नाईं = समान।

सुनि भूपति हिय अति दल्यो, बज्र हृदय जनु लाग।
मुख सुखान लोचन सजल, प्रान विकल भय भाग॥
प्रान विकल भय भाग मूँदि राखे दोउ लोचन।
सोक दाह उर दहत कहत कछु बनत न सोचन॥
बनत न सोचन मुख वचन, मनहु प्रेत कर्मनि छल्यौ।
धुनत सीस व्याकुल सिथिल, सुनि भूपति उर अति दल्यौ॥२५॥

भये विकल नृप सुनि कहा, वचन लगे जिमि बान।
सत्यसन्धिता प्रन किये, कहेउ देन वरदान॥
कहेउ देन वरदान वचन किन कहौ सम्हारे।
* कौसिल्या सुत सुवन भरत नहिं सुवन तुम्हारे॥
भरत सुवन पठये कुथल, राम तिलक आनँद महा।
साधेउ छल तस फल लहौ, भये विकल नृप सुनि कहा॥२६॥

---

(२५) दल्यो = मसल गया, टूटकर कुम्हला गया। प्रान विकल भय भाग = पञ्च प्राण अकुलाकर भय से भागने को तत्पर हो गये। मूँदि राखे = बन्द कर रक्खे। दाह = ज्वाला। दहत = जलाती है। सोचन = चिन्ता के कारण। बनत न सोचन = विचार नहीं करते बनता।

* "भरत कि राउर पूत न होही।"

(२६) सत्यसंधिता = बात को सच्ची निभाने की शक्ति। कौसिल्या सुत सुवन = क्या राम ही तुम्हारे पुत्र हैं, भरत नहीं हैं? कुथल = केकय देश (मामा का घर)। साधेउ छल = तुमने जान-बूझकर कपट किया।

नैन उघारे नृप कहत, समुझि प्रिया वर माँगु।
* भरत भूप को तिलक पुर, तामैं लगै न दाग॥
तामैं लगै न दाग राम वन पठवति काहे।
† कौन लाग अपराध राम सब साधु सराहे॥
साधु सराहे नारि नर अब अचरज छाती दहत।
ताते समुझि विचार करु नैन उघारे नृप कहत॥२७॥

ये न वचन टरिहैं नृपति, मरहु उजरि पुर जाइ।
अजस अवधि विधिना करहि, अघ रवि बंस नसाइ॥
अघ रवि बंस नसाइ होइ पुर काल हवाले।
कलह कपट की आगि अवनि भगि जाइ पताले॥
भगि पताल अवनी घटै, रवि ससि रेंगहिं उलटि गति।
विधि हरि हर आपुहि कहैं, ये न वचन टरिहैं नृपति॥२८॥

---

* "देउँ भरत कहँ राज बजाई।" "कछु दिन गये भरत जुवराजू।"

† "कहु तजि रोष राम अपराधू। सबु कोउ कहै राम सुठि साधू॥" (रा० च० मा०)

(२७) दाग=कलङ्क। पठवति काहे=क्यों भेजती है ?

(२८) अघ रवि बंस नसाइ=चाहे अपने पापों से सूर्यवंश का नाश हो जाय। कलह=लड़ाई झगड़ा। अवनी=पृथ्वी। विधि हरि हर आपुहि कहैं=चाहे ब्रह्मा विष्णु महेश स्वयं आकर कहें तो भी मेरे वचन टल नहीं सकते।

अनल चन्द बरषै कबहुँ, सीतल सूरज होइ।
सेस तजै धरनी धरन, समुद बिना जल जोइ॥
समुद बिना जल होइ सम्भु सिर चन्द प्रजारै।
तिमिर दहै रवि रूप, वृन्द कर दण्डहिं डारै॥
दण्डहि विधि जग स्रिष्टि सब, नारायन मिटि जाहिं कहुँ।
* ये न बचन नरपति टरैं अनल चन्द बरषै कबहुँ॥२९॥

† राज न चाहै भरत पुर, लागो तोहिं पिसाच।
मोर मृत्यु बोलत वचन, तव मुख चढ़ि सिर साँच॥
तव सिर चढ़ि करि साँच राम नृप होइहि भारी।
तुहिं कलंक दुख मोर मिटिहि कबहुँक नहिं नारी॥
नारी करि चित चाहि कै, बचन मोर जिय जानि फुर।
राम भूप सेवक अनुज, राज न चाहै भरत पुर॥३०॥

---

* कहै करहु किन कोट उपाया। इहाँ न लागिहि राउर माया॥ (रा० च० मा०)

(२९) अनल = अग्नि। जोइ = दिखाई दे। प्रजारै = जला डाले। तिमिर = अंधकार। इस छंद में आद्योपान्त विरोधाभास अलंकारों की लड़ी बाँध दी गई है। आशय यह है कि चाहे सारी सृष्टि की गति पलट जाय, पर मेरे वचन नहीं टल सकते।

† "मरम बचन सुनि राउ कह, कहु कछु दोष न तोर।
लागेउ तोहि पिसाच जिमि, कालु कहावत मोर॥" (रा० च० मा०)
"चहत न भरत भूपतिहि भोरे। बिधि बस कुमति बसी जिय तोरे॥
....
तोर कलंकु मोर पछिताऊ। मुयेहु न मिटिहि न जाइहि काऊ॥"
(रा० च० मा०)

(३०) पिसाच = भूत। चित चाहिकै = जो तेरे हृदय को अच्छा लगे। फुर = सत्य। अनुज = छोटे भाई।

* बसी अवध नृप राम है, यह जानत सब कोइ।
मोर मरन भौ भामिनी, यह सुख लख्यो न सोइ॥
यह सुख लख्यो न सोइ सत्य जिय जानि सुभामिनि।
† मीन जियै बिनु वारि राम बिन जियौं न जामिनि॥
जियौं न जामिनि दिन वृथा जानि मरम परिनाम है।
तू अभागिनी तनु लियौ बसी अवध नृप राम है॥३१॥

‡ राम राम नृप कहि गिरयो, कुमति न मानी बात।
§ अवधि बधाव अनन्द बड़, नींद न लागी रात॥
नींद न लागी राति कालि सुभ घरी सुहाई।
देख्यो जाइ सुमन्त भूप गति मति विकलाई॥
मति विकलाई देखि कै, लखि कुचाल आतुर फिरयो।
आयौ राम लिवाइ कै, राम राम नृप कहि गिरयो॥३२॥

---

* "सुबस बसिहि फिरि अवध सुहाई। सब गुनधाम राम-प्रभुताई॥"
† "जिअइ मीन बरु बारि बिहीना। मनि बिनु फनिकु जिअइ दुख दीना॥
कहौं सुभाउ न छलु मन माहीं। जीवन मोर राम बिनु नाहीं॥"
(रा० च० मा०)

(३१) लख्यो=देखा। जामिनि=रात। बसी अवध नृप राम है=(१) अयोध्या यही समझकर बसी हुई है कि राम राजा हो जायँगे। (२) अयोध्या फिर से बस जायगी और राम ते राजा बने बनाये हैं।

‡ "राम राम रट बिकल भुआलू। जनु बिनु पंख बिहँग बेहालू॥"
§ "तेहि निसि नींद परी नहिं काहू। राम दरस लालसा उछाहू॥"
(रा० च० मा०)

(३२) कुमति=बुरी बुद्धिवाली कैकेयी। गति=दशा। आतुर=जल्दी। फिरयो=लौट आया।

* नृप उठाय बोले वचन, नृपति लीन्ह उर लाइ ।
नैन नीर-धारा धसै, वचन बोलि नहिं जाइ ॥
वचन बोलि नहिं जाइ राम पूछी महतारी ।
कहति कठोर कुबैन कथा करनी कटु भारी ॥
कटु भारी सो हेतु सुनि तन प्रसन्न कह मृदु वचन ।
लघु उपदेसत दुख महा, नृप उठाय बोलत वचन ॥३३॥

राउर चरन प्रताप ते, वन मुद मंगल मोहि ।
† मुनि तीरथ देवन दरस मोर परम हित होहि ॥
मोर परम हित होइ जात दिन विलम न लागै ।
आतुर अइहौं अवधि धरन पुनि चरन सभागै ॥
‡ धरन चरन पुनि आइहौं, आयसु देइय आप ते ।
कुसलषेम घर आइहौं, राउर चरन प्रताप ते ॥३४॥

---

* "लिये सनेह विकल उर लाई । गै मनि मनहु फनिक फिरि पाई ॥
....
सोक बिबस कछु कहै न पारा । हृदय लगावत बारहि बारा ॥"
(रा० च० मा०)

(३३) उर लाइ=हृदय से लगा लिया । धसै=गिर रही है । हेतु=कारण । 'धारा धसै' में छेकानुप्रास है ।

† "मुनिगन मिलनु बिसेषि बन, सबहि भाँति हित मोर ।
तेहि महँ पितु आयसु बहुरि, संमत जननी तोर ॥"
(रा० च० मा०, अ० का० ४२)

‡ "आयसु पालि जनम फलु पाई । ऐहौं वेगिहि होइ रजाई ॥"

(३४) मुद (मोद)=आनन्द । विलम=देर ।

* उत्तरु कहेउ न भूप मुख, राम धरे नृप पाइ।
कुमति कठोर कुवचन कटु, मातु कहत मुसक्याइ॥
मातु कहत मुसक्याइ हृदय छोड़त नहिं राजा।
करि प्रबोध सिर नाइ विपिन की साजि समाजा॥
साजि समाज प्रसन्नमुख, गहे मातु पद प्रेम सुख।
राम चलत व्याकुल गिर्‌यौ, उत्तर कढ़्यौ न भूप मुख॥३५॥

† मातु गोद मोदति भरे, कहति वचन आनन्द।
कालि तिलक नृप सुख सज्यौ, कितकि बार सुख वृन्द॥
कितिक बार सुख वृन्द लाभ लोचन सब लूटी।
सिंहासन सिय सहित निरखि रवि सत दुति छूटी॥
रवि सत दुति छूटी अवधि, मधुर लाल भोजन धरे।
‡ न्हाइ खाउ बड़ि बार भै, मातु गोद मोदति भरे॥३६॥

---

* "अस कहि रामु गवनु तब कीन्हा। भूप सोक बस उतरु न दीन्हा॥"
(रा० च० मा०, ४७)

(३५) करि प्रबोध=समझाकर। विपिन की साजि समाजा=वन जाने की तैयारी की।

† "गोद राखि पुनि हृदय लगाये। स्रवत प्रेम रस पयद सुहाये"॥

× × × ×

‡ "तात जाउँ बलि बेग नहांहू। जो मन भाव मधुर कछु खाहू॥"
(रा० च० मा०, ५४)

(३६) कितकि बार=कितनी देर है। रवि सत दुति छूटी=सैकड़ों सूर्यों का सा प्रकाश होगा।

* राज विपिनि को मोहिं दयो, जहाँ मोर बड़ काज।
　　राउर चरन प्रताप ते, कुसल आइहौं साज ॥
कुसल आइहौं साजि मातु आसिष मोहिं दीजै।
　　जात दिवस नहिं बार हरषि मन आयसु कीजै ॥
आयसु कीजै हरषि कै, मातु चरन प्रभु सिर नयौ।
　　कहि मृदु मुख कर जोरि कै, राजु विपिनि को मोहिं दयो ॥३७॥

† सहमि सुखानी सुनि वचन, सिया धरे पग आइ।
　　राम बुझाई जानुकी, विपिनि विपति सब गाइ ॥
विपिन विपति सब गाइ सुनत लछिमन उठि धाये।
　　कहि कहि विविधि प्रकार लषन सिय प्रभु समुझाये ॥
समुझाई प्रथमहिं सिया, करि विवेक वन प्रिय सदन।
　　उत्तर कछुक न सिय दयो, सहमि सुखानी सुनि वचन ॥३८॥

---

* "पिता दीन्ह मोहि कानन-राजू। जहँ सब भाँति मोर बड़ काजू ॥"
(रा० च० मा०)

(३७) विपिनि=वन। राउर=तुम्हारे। बार=देर। वन में भी मुझे राज्य का सा सुख रहेगा, दिन जाते देर नहीं लगती, अतः जाने के समय अब आशीष दीजिए।

† "सहमि सूखि सुनि सीतल बानी।" (रा० च० मा०)

(३८) सहमि=घबराकर। सुखानी=सूख गई। बुझाई=समझाया। विवेक=बुरे-भले का विवेचन। इसमें वृत्त्यनुप्रास, छेकानुप्रास और वीप्सा है। राम के प्रति सीता और लक्ष्मण का अगाध प्रेम है।

धरि धीरज कह जानकी, मन समुझिय रघुराइ।
कंटक वन दावा अनल अनिल व्याल दुखदाइ॥
* अनल अनिल दुखदाइ व्याघ्र वृक अहि गज घेरे।
सूकर भालु पिसाच विषम वन भय बहुतेरे॥
बहुतेरे उतपात जे, उर न दहे भय आन की।
प्रभु वियोग छाती दहै, धरि धीरज कह जानकी॥३९॥

विपिन आपु सँग अति सुखी, डासि पात तरु छाह।
गिरिगन सरि सरवर मुदित, छुधा त्रषित नहिं दाह॥
†छुधा त्रषित नहिं दाह निरखि पद-कमल तुम्हारे।
श्रम पथ तनक न लेस सकल विधि प्रभु रखवारे॥
प्रभु रखवारि विचारिये, तजे जीव जानिय दुखी।
त्यागिय मोहिं विवेक करि विपिनि आपु सँग अति सुखी॥४०॥

---

* "कुस कंटक मग काँकर नाना। चलत पयादेहि बिनु पदत्राना॥
भालु बाघ वृक केहरि नागा। करहिं नाद सुनि धीरज भागा॥"
(रा० च० मा०)

(३६) दावा अनल=जङ्गल की आग। अनिल=वायु। वृक=भेड़िया। विषम= कई प्रकार के; ऊँचे नीचे।

† "सम महि तृन तरु पल्लव डासी। पाय पलोटिहि सब निसि दासी॥
बार बार प्रभु मूरति जोही। लागिहि ताति बयारि न मोही॥"
(रा० च० मा०, अ० का० ६८)

नाथ सकल सुख साथ तुम्हारे। सरद-विमल-बिधु-बदन निहारे॥

(४०) डासि=बिछौना बिछाकर। सरि=नदी। छुधा=भूख। त्रषित=दुःखित; प्यास। निरखि=देखकर।

प्रभु मुख पर नहिं प्रन करौं, ऊतर दीन्हे पाप।
तजौं तौ कहा बसाइ पिय, समुझि बिचारिय आप॥
समुझि बिचारिय आप प्रान तन त्यागि निनारो।
*प्रभु सँग जाइहि धाय देह धर राखिय डारो॥
राखिय डारो देह धर बहुत कहत पातक डरौं।
सत्य मन्त्र मन दृढ़ धरचौ प्रभु मुख पर नहिं प्रन करौं॥४१॥

तुम लछिमन मानौ कही, राम सिखावन देत।
मात पिता पुर सोच बस, नासहु बसहु निकेत॥
† नासहु विघन अनेक अवध भरतहु पुर नाहीं।
भूप वृद्ध नरनारि दुखित मम दुख मन माहीं॥
दुख मन को दूषन तजौं, मानि मन्त्र राखौ सही।
दूषन देइहि मोहि नर, तुम लछिमन मानौ कही॥४२॥

---

* "जो हठि नाथ राखिहै मो कहँ तौ सँग प्रान पठाओंगी॥"
(गीतावली, अ० का०, छ० ६)

(४१) कहा बसाई=मेरा क्या वश है? निनारो=अलग। डारो=छोड़ दीजिए; अलग कर दीजिए।

† "भवन भरत रिपुसूदन नाहीं। राउ वृद्ध मम दुख मन माहीं॥"
(रा० च० मा०)

(४२) निकेत=घर। मन्त्र=उपदेश। दूषन=दुःख, ग्लानि। दुख मन को दूषन=दुःखित मन की ग्लानि या मन का दुःख और ग्लानि। ऐसे में दीपक होगा।

प्रभु वन मैं हौं घर रहौं, आयसु तज्यो न जाइ ।
 प्रान वायु मम वसि नहीं, देह कहौ तहँ जाइ ॥
देह कहौ जहँ जाइ भार यह का पर डारौ ।
 मैं सेवक सिसु कुमति चरन रज सेवनवारौ ॥
सेवनवारे रज चरन, धर्म नीति मग किमि लहौं ।
 अवधि काज मेरो कहा, प्रभु वन मैं हौं घर रहौं ॥४३॥

मातु चरन रघुबर नये, बिदा माँगि कर जोरि ।
 असुधार धाई धरनि, माता कहति बहोरि ॥
माता कहत बहोरि कठिन उर फाटत नाहीं ।
 ठाढ़ी देखति नैन राम सुत कानन जाहीं ॥
* कानन जाहु बिसेषि कै, सब के सुख सुकृत गये ।
 भेटि लाय उर पहँ कहेउ मातु चरन रघुबर नये ॥४४॥

---

(४३) प्रान = प्राण पाँच हैं। प्राण, अपान, उदान, व्यान और समान। कुमति = मूर्ख। लक्ष्मणजी बड़े असमञ्जस में पड़े हैं कि स्वामी वन को जायँ और मुझे घर में रहने की आज्ञा दी जाय। किन्तु अपने को शिशु और मूर्ख सेवक कहकर वे धर्म और नीति के दुर्गम मार्ग में चलने से बच जाते हैं अर्थात् घर में रहने की आज्ञा को न मानकर रामचन्द्रजी के साथ वन जाने को तैयार हो जाते हैं।

"मैं प्रभु शिशु सनेह प्रतिपाला। मन्दर मेरु कि लेहि मराला॥" (रा० च० मा० अ० का०)
"कृपासिंधु अवलोकि बंधु तन प्रान कृपान वीर सी छोरे।" (गीतावली, अ० का० १२)
* "जाहु सुखेन बनहि बलि जाऊँ।"
 "सब कर आज सुकृत फल बीता।" (रा० च० मा०, अ० का०)
 कैसे प्राण रहत सुमिरत सुत बहु बिनोद तुम कीने। (गीतावली, अ० का०)

(४४) नये = झुके, प्रणाम किया। असु = आँसू। उर = हृदय, छाती। बिसेषि कै = विशेष रूप से ; राज्याभिषेक कराके। सुकृत = पुण्य। राम जैसे पुत्र वन को जायँ और माता खड़ी देखा करे, कैसा हृदय विदीर्ण कर देनेवाला दृश्य है। माता पुत्र को हृदय से लिपटाकर कहती हैं कि अयोध्यावासियों के पुण्य-प्रभाव की इतिश्री हो चुकी, इसलिए (विशेष रूप से) सुख-पूर्वक वन को जाओ।

* गुरु पायन पुर सौंपि कै, राम लषन सिय साथ।
चले भूप मन्दिर जहाँ, बिदा हेतु रघुनाथ ॥
बिदा हेतु रघुनाथ राउ उठि हृदय लगाये।
नैन धार अन्हवाइ राम बहु बिधि समुझाये ॥
समुझाये नृप राम बहु, सिया प्रेम उर तोपि कै।
लषन भेंटि भूपति गिरयौ राम चल्यौ गुर सौंपि कै ॥४५॥

करि प्रनाम रघुबर चले, त्यागि अवधि सुखमूल।
सबको सार सम्हार करि, मेटि मोह भय सूल ॥
† मेटि मोह भ्रम सूल लोग सँग व्याकुल लागे।
राम बिरह की आगि नारि नर सब उठि भागे ॥
सब उठि भागे नारि नर काल कर्म गुन दल दले।
सिर धरि रानि बखानि कटु, करि प्रनाम रघुपति चले ॥४६॥

---

* "दासी दास बुलाइ बहोरी। गुरुहि सौंपि बोले कर जोरी ॥" (रा० च० मा०, अ० का०)

(४५) गुरु पायन = अर्थात् गुरु को। पायन = चरण। नैन धार = आँसू। तोपि कै = भरकर, बन्द करके। महाराज दशरथजी ने वन जाते हुए पुत्रों को हृदय से लगा लिया। उन्होंने अपने प्राणों से भी प्यारे पुत्र को १४ वर्ष का वनवास देकर सत्यव्रत का पालन किया तो अवश्य किन्तु उनकी अभिलाषा यही थी कि रामचन्द्रजी आज्ञा का उल्लङ्घन करके वन को न जायँ। जब दशरथजी ने अपनी इच्छा पूर्ण होती न देखी तो अचेत होकर पृथ्वी पर गिर पड़े और रामचन्द्रजी गुरुजी को अयोध्या का भार सौंपकर वन को चल दिये।

† "चलत राम लखि अवध अनाथा। बिकल लोग सब लागे साथा ॥"

(४६) सूल = पीड़ा। कालकर्म गुन दल दले = समय, कर्म और गुणों के समूहों की गति नष्ट हो गई। सिर धरि रानि बखानि कटु = रानी कैकेयी के कटु वचनों को मानकर चलते समय रामचन्द्रजी ने कैकयी को भी प्रणाम किया, उसे चिढ़ाने के लिए नहीं वरन् मर्यादा की रक्षा करने और अपने स्वाभाविक प्रेम का परिचय देने के लिए।

*भूप बुलाय सुमन्त को, सिख दै दयो पठाइ।
सुनत सचिव आतुर चल्यो, सिन्दन तुरत बनाइ॥
सिन्दन तुरत बनाइ विनय करि राम चढ़ाये।
† तमसा तीर निवास प्रथम दिन रघुपति आये॥
प्रथम लोग तजि प्रभु उठे, सचिव साधि रथ तन्त को।
गये राम जिय जानि सब, संग बुलाइ सुमन्त को॥४७॥

राम विरह दावा अनल, भयौ अवध बन घोर।
पुरवासी खग मृग भये, रहैं सुखी सब ठौर॥
‡ रहैं सुखी सब ठौर केकई भई किराती।
ज्वाल बई चहुँ ओर जरत निसि-दिन तन छाती॥
§ अवधि मेघ की आस उर, रहि न सकत तप कठिन थल।
सो उपाइ व्रत जप सुहृद, राम विरह दावा अनल॥४८॥

---

* "पुनि धरि धीर कहै नरनाहू। लै रथ संग सखा तुम जाहू॥"

† "तमसा तीर निवास किय, प्रथम दिवस रघुनाथ॥" (रा० च० मा०, अ० का०)

(४७) सिन्दन (स्यंदन)=रथ। बनाइ=सजाकर। प्रथम............... उठे=साथ में आये हुए अयोध्यावासियों को सोते हुए छोड़कर रामचन्द्रजी सुमन्त के साथ रथ में चले गये। तन्त=डोरी, लगाम।

‡ "विधि कैकयी किरातिनि कीनी। जेहि दव दुसह दसहु दिसि दीनी॥"

§ "अवधि आस सब राखहिं प्राना।" (रा० च० मा०, अ० का०)

(४८) दावा अनल=वृक्षों की शाखाओं के रगड़ने से वन में जो आग लग जाती है उसे दावानल कहते हैं। यहाँ पर कैकेयी-रूपिणी किरातिनी ने अवधरूपी वन में राम-विरह की दावाग्नि लगाई है। रहैं=रहते थे। इस छन्द में साङ्ग रूपक अलङ्कार है। अवधि=१४ वर्ष की समाप्ति। सुहृद=मित्र।

राम गये सुरसरि निकट, केवट परम हुलास।
वचन सुमन्त बुलाइ कै, बोले राम प्रकास॥
बोले राम प्रकास तात अब अवधि सिधैयै।
* पितु-पद गहि मम ओर कुसल सब विधि समुझैयै॥
समुझाये करि कोटि विधि, तदपि परयौ संकट विकट।
चले कर्मबस सचिव पुर, राम गये सुरसरि निकट॥४९॥

माँगी नाउ निहारि कै, राम कहे मृदु बैन।
सुनत बात केवट कहै, सुनियै राजिवनैन॥
सुनियै राजिवनैन रावरी पदरज खोटी।
मानुष उड़ि उड़ि जात काठ की गति है छोटी॥
गति है छोटी मोरि प्रभु, बात कहौं डरु डारि कै।
† रज मानुष की मूरि कछु, माँगहु नाउ निहारि कै॥५०॥

---

* "पितु पद गहि कहि कोटि नति, विनय करब कर जोरि॥"
"राम प्रबोध कीन बहु भाँती। तदपि होत नहिं सीतल छाती॥" (रा० च० मा० अ० का०)

(४९) हुलास=आनन्द ; उत्साह। प्रकास=सबके सामने स्पष्ट रूप से। सिधैयै= जाइए। पद गहि=चरण छूकर। कोटि=करोड़ अर्थात् अनेक। विकट=कठिन। सचिव= मन्त्री। सुरसरि= गङ्गाजी। शृङ्गवेरपुर पहुँचकर रामजी ने सुमन्त से अयोध्या लौट जाने को कहा और पिताजी के चरण पकड़कर अपनी ओर से यह समझाने को कहा कि हम वन में सब प्रकार से कुशलता-पूर्वक रहेंगे।

† "चरण-कमल-रज कहँ सब कहई। मानुषकरनि मूरि कछु अहई॥" (रा०च०मा०,अ०का०)
"पग-धूरि को भूरि प्रभाव महा है।" (कवितावली, अ० ७)

(५०) निहारि=देखकर, अन्तिम पद में विचारकर। राजिवनैन=कमल के समान नेत्रोंवाले। रावरी=आपकी। डरु डारि कै=भय छोड़कर। मूरि=जड़, औषध। श्री रामचन्द्रजी ने अपने बड़े बड़े नेत्रों से केवट की ओर देखते हुए मीठी बोली में नाव लाने के लिए कहा; पर केवट ने अपने 'प्रेम लपेटे अटपटे' वचनों में उनकी चरण-रज की क़लई खोल दी। उसने कहा "आपके चरणों की धूल बड़ी खोटी है। उसे छूकर मनुष्य तक उड़ जाते हैं, फिर मेरी नौका की कौन कहे। मालूम होता है कि यह धूल मनुष्य बनाने की जड़ी-बूटी है। सोच-समझकर नाव माँगिए।"

* तरनि होइ मुनि की घरनि, मरै सकल परिवार।
† कोटि करौ बानन छरौ, कहौ वचन सति बार॥
‡ कहौ वचन सत बार नाउ नहिं तुम्हैं छुआऊँ।
अपने कुल को हानि होइ जो तुम्हैं चढ़ाऊँ॥
तुम्हैं चढ़ाऊँ नाथ जब, चरन प्रछालौं निज करनि।
बिनु धोये न चढ़ाइहौं, तरनि होइ मुनि की घरनि॥५१॥

चरन प्रछालि विलंब कह, राम कहेउ मुसक्याइ।
§ पानी आन्यौ दुहु करनि धरयौ कठौता आइ॥
धरयौ कठौता आइ पाइ पुनि धोवन लाग्यौ।
देवन बरषे फूल कहत गहि सम को भाग्यौ॥
|| यहि सम बड़भागी कहा, सिव विरञ्चि पद-कमल चह।
धन्य धन्य कहि सकल सुर, चरन प्रछालि कुटुम्ब लह॥५२॥

---

* "तरनिउ मुनिघरनी होइ जाई।"
"यहि प्रतिपालौं सब परिवारू।" (रा० च० मा०, अ० का०)

† "बरु मारिए मोहिं बिना पग धोये हौं नाथ न नाव चढ़ाइहौं जू।" (कवितावली, अ० ६)

‡ "सजल कठौता कर गहि कहत निषाद। चढ़हु नाउ पग धोइ करहु जनि वादि॥"
(बरवै रामायण, अ० २५)

(५१) घरनि=स्त्री। यहाँ केवट गौतम ऋषि की स्त्री अहल्या के उद्धार की ओर सङ्केत करता है। बानन छरौ=बाण मारो। प्रछालौं=धो लूँगा। तरनि=नौका। केवट को यह शङ्का है कि जिस तरह जैसे पत्थर की शिला को, चरणों की धूलि के स्पर्श से, गौतम ऋषि की स्त्री बना दिया था, उसी तरह मेरी नौका को भी किसी की स्त्री बना देंगे तो मैं अपने परिवार का पालन कैसे करूँगा। इसी से कहता है कि चाहे करोड़ों उपाय करो, बिना पैर धोये वना छूने भी न दूँगा।

§ "केवट राम रजायसु पावा। पानि कठौता भरि लै आवा॥" (रा० च० मा०, अ० का०)

|| "तुलसी सराहैं ताको भाग सानुराग सुर बरषैं सुमन जै जै कहैं टेरि टेरि।" (क०, अ० १०)

(५२) विलंब=देर। कह=क्या। कठौता=काठ या पत्थर का बड़ा पात्र। भाग्यौ=भाग्यवान्। विरञ्चि=ब्रह्मा। श्रीरामचन्द्रजी की आज्ञा पाकर जब निषाद चरण धोने लगा तो देवता लोग उसके भाग्य की प्रशंसा करके आकाश से फूल बरसाने लगे। शिव और ब्रह्मा भी जिन चरणों से प्रेम करते हैं, उन्हें आज एक केवट धो रहा है; यह देखकर देवताओं ने धन्य-धन्य कहा पर केवट ने चरण धोकर अपने कुटुम्ब की रक्षा कर ली।

* कीन्ह पार परिवार को, चरन सुधा जल प्याइ।
पीछे पार उतारियौ, निज कर कौसलराइ॥
निज कर कौसलराइ उतरि सिय सहित बहोरी।
केवट लीन्ह बुलाय लेहि उतराई थोरी।
उतराई थोरी लहै तोहिं भयो श्रम पार को।
† दीन देखि मोहिं दान बहु पार कीन्ह परिवार को॥५३॥

ते पद धोये आजु मैं, सिव विधि जोग कमाहिं।
जिन चरनन को सेस स्रुति, बरनत निसिदिन जाहिं॥
‡ बरनत निसिदिन जाहिं प्रगट कीन्ही जिन गङ्गा।
असरनसरन पुनीत पगनि को विरद अभङ्गा॥
विरद अभङ्ग प्रमान को, धोये जनक समाजु मैं।
सकल सिद्धि सिद्धन दई, ते पद धोये आजु मैं॥५४॥

---

* "पितर पार करि प्रभुहि पुनि, मुदित गयो लै पार।"
"कहेउ कृपाल लेहि उतराई।"

† "नाथ आज मैं काह न पावा।" (रा० च० मा०, अ० का०)

(५३) सुधा=अमृत। श्रम=मेहनत। दीन=दिया, दरिद्र, दुखी। पहले चरणामृत लेकर परिवार के लोगों को पिलाया और उन्हें भवसागर से पार उतार दिया बाद में रामचन्द्रजी को गङ्गाजी के पार उतारा। जब श्रीरामचन्द्रजी उतराई देने लगे तो केवट ने कहा कि आपने मुझे ग़रीब समझकर बहुत दिया जो सपरिवार मुक्त कर दिया। इस छन्द में 'दीन' का भिन्न-भिन्न अर्थों में प्रयोग हुआ है। अतएव 'यमक' अलङ्कार है।

‡ "जिनको पुनीत बारि शिरसि बहै पुरारि त्रिपथगामिनी कहै वेद यश गाइकै।" (क०, अ० ६)

(५४) जोग कमाहिं=योग द्वारा प्राप्त करते हैं। श्रुति=वेद। विरद=यश। अभङ्ग=पूर्ण, कभी न मिटनेवाला। प्रमाण=सबूत। सिद्धि=आठ हैं—अणिमा, महिमा, लघिमा, गरिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व, वशित्व। आज मैंने उन चरणों को धोया है जिन्हें शिव और ब्रह्मा योग से प्राप्त कर पाते हैं, वेद और शेष सदा जपा करते हैं, जिनसे गङ्गा प्रकट हुई हैं, जो असहाय की रक्षा करते हैं और जिनका यश अमिट है; क्योंकि जनक ने इन्हें भरी सभा में धोया है। इस स्थल पर गोस्वामीजी ने श्रीरामचन्द्रजी के चरणारविन्दों का पूर्ण महत्त्व स्थापित कर दिया है क्योंकि सिद्धों को सिद्धि देनेवाले भी यही हैं।

विमल भक्ति वर दै चले, राम लषन सिय सङ्ग।
वन गिरि सरि सर ग्राम पुर, देखन मृगज विहंग॥
* देखत मृगज विहंग ग्राम पुर निकसहिं जाई।
देखि कहहिं नरनारि रामसिय सुन्दरताई॥
राम सिया सह अनुज जुत देखि भाग तिनके भले।
प्रेम नेम जप जोग फल, विमल भक्ति वर दै चले॥५५॥

एक कहति मुख चन्द सो, भामिनि भावति मोहि।
† कला कोस ससि सीतकर, सीता कलित सजोहि॥
सीता कलित सजोहि स्याम रेखा ससि माहीं।
सिय मुख पर लट स्याम सुभग बरनत कवि ताहीं॥
बरनत कवि मृग-अंक कहि, यह मृगनैनि अनन्द सो।
तापहरनि यह ससिमुखी, एक कहति मुख चन्द सो॥५६॥

---

* "ग्राम निकट जब निकसहिं जाई। देखहिं दरस नारि नर धाई॥"
(रा० च० मा०, अ० का०)

(५५) विमल = शुद्ध, सच्ची। सरि = नदी। विहंग = पक्षी। निषाद को निर्मल भक्ति का वरदान देकर श्रीरामचन्द्र जी सीता और लक्ष्मण के साथ वन की ओर चल दिये। जहाँ से निकल जाते हैं, लोग सीता और राम के सौन्दर्य का वर्णन करने लगते हैं।

† "वाके अति सीतकर तुहूँ सीता सीतकर, चन्द्रमा सी चन्द्रमुखी सब जग जानिए॥"
(रामचन्द्रिका)

(५६) कला कोस = कलाओं से युक्त। सीतकर = ठण्ढी किरणोंवाला, आनन्द देनेवाली। सीताजी के चन्द्रमुख पर एक घुँघराली लट पड़ी है। उसकी उपमा मृग-अङ्क से देकर कवि ने सौन्दर्य की बड़ी मार्मिक व्यञ्जना की है। इस छन्द में श्लेष से पुष्ट उपमा अलङ्कार है।

* एक कहति मुख कमल सो, और न पटतर ताहि।
अरुन सुवासित अति मृदुल, सो सिय मुख अवगाहि॥
सो सिय मुख अवगाहि सीत सुत वह यह सीता।
कवि बरनत हैं वाहि याहि मुख सुजस पुनीता॥
सुजस पुनीता दुहुन को, भ्रमर मित्र जुग सुथल सो।
और कहा उपमा लगै, एक कहति मुख कमल सो॥५७॥

† सीता मुख सो मुख कहौ, कमल चन्द सो नाहिं।
कमल मन्द है रजनि दुति, चन्द मन्द दिन माहिं॥
‡ चन्द मन्द दिन माहिं राहु हिम सत्रु सदाई।
सीता मुख अरि नाहिं लोक तिहुँ खोजहु जाई॥
लोक तिहूँ महँ विदित है, घटै बढ़ै निसि दिन लहौ।
कमल चन्द पटतर कहा, सीता मुख सौ मुख कहौ॥५८॥

---

* "सुन्दर सुबास अरु कोमल अमल अति सीता जू को मुख सखि केवल कमल सो।"
(रामचन्द्रिका)

(५७) पटतर = तुलना। अरुन (अरुण) = लाल। सुवासित = सुगन्धयुक्त। अवगाहि = देखो। सुजस = कीर्ति। यहाँ कमल के सभी गुण सीताजी के मुख में दिखाये गये हैं। अतएव इस छन्द में उपमा अलङ्कार है। मालूम होता है केशवदासजी ने जैसे अनर्घराघव, प्रसन्नराघव, हनुमन्नाटक, कादम्बरी और रामायण से भावों और शब्दों का अपहरण किया है, वैसे ही कुण्डलिया रामायण से भी बहुत सी बातें थोड़े हेर-फेर के साथ ज्यों की त्यों उठाकर रामचन्द्रिका में रख ली हैं।

† "ताते मुख मुखै सखि कमलौ न चन्द री।" (रामचन्द्रिका)

‡ "......................दिन मलीन सकलङ्क।"
"ग्रसै राहु निज संधिहि पाई।" (रा० च० मा०, बा० का०)

(५८) दुति = प्रकाश, शोभा। हिम = चन्द्रमा। अरि = शत्रु। पटतर = बराबरी। यहाँ उपमेय 'मुख' से उपमान 'चन्द्र' और 'कमल' का निरादर किया गया है अतएव 'प्रतीप' और मुख के समान मुख ही बतलाने के कारण 'अनन्वयोपमा' अलङ्कार है।

*एक कहै पुर धन्य है, मात पिता पुनि धन्य ।
जिन देखे ते धन्य हैं, जहाँ जात धनि अन्य ॥
जहाँ जात धनि अन्य विटप गिरि सरि सर जेते ।
खग मृग देखत धन्य बसत थल बैठत ते ते ॥
बैठत ते ते संग हँसि, बोलत चित व्रत धन्य हैं ।
धन्य पन्थ वन धन्य हैं, हम देखत अति धन्य है ॥५९॥

रामलषन सीता सहित, देखि प्रभाउ प्रयाग ।
न्हाय दान दीन्हे द्विजन, प्रीति सहित अनुराग ॥
प्रीति सहित अनुराग दरस सुख सबहिन पाये ।
दुख सुख सबको देत, आपु ऋषि आश्रम आये ॥
† आश्रम आये सुनत ऋषि, भरद्वाज आनँद लहित ।
‡ आसन आदर मुनि करयौ, राम लषन सीता सहित ॥६०॥

---

* "ते पितु मातु धन्य जिन जाये । धन्य सो नगर जहाँ ते आये ॥
धन्य सो देश शैल बन गाऊँ । जहँ जहँ जाहिं धन्य सो ठाऊँ ॥"
(रा० च० मा०, अ० का०)

(५६) विटप=वृक्ष । गिरि=पर्वत । थल=स्थान । श्रीरामचन्द्रजी के संसर्ग में जितने पदार्थ आते हैं सब धन्य हैं और वे लोग भी धन्य हैं जिनका इनसे कुछ भी सम्बन्ध हो जाता है, यहाँ तक कि दर्शक भी धन्य हैं ।

† "तब प्रभु भरद्वाज पहिं आये ।"

‡ "कुशल प्रश्न करि आसन दीने ।" (रा० च० मा०, अ० का०)

(६०) प्रभाउ (प्रभाव)=प्रताप । अनुराग=प्रेम । दुखसुख=मिलने का सुख तथा बिछुड़ने का दुख । लहित=पाया । प्रयागराज में स्नान करके ब्राह्मणों को प्रेमपूर्वक दान-दक्षिणा देकर राम-लक्ष्मण और जानकी भरद्वाजजी के आश्रम में आये ।

राम तुम्हारे दरस ते, यह फल प्रगट दिखात।
नेम प्रेम जप जोग तप, तीरथ व्रत दुख गात॥
* तीरथ व्रत दुख गात आज सब सुफल हमारे।
राउर आगम लहत नैन मुख सुखद निहारे॥
सुखद निहारे सुख भयो, तीरथ राउर परस ते।
भये मोद मङ्गल परम, राम तुम्हारे दरस ते॥६१॥

† भोर प्रयाग नहाय कै, राम लषन सिय साथ।
चले मनोहर मनहरन, बन्दि चरन मुनिनाथ॥
‡ बन्दि चरन मुनिनाथ मदन रति ऋतुपति मानौ।
§ ब्रह्म जीव के मध्य लसत माया छबि जानौ॥
माया छविमय देखि धौं, उमा सम्भु गननायकै।
चले किधौं सुरपति सची, भोर जयन्त लिवाय कै॥६२॥

---

* "सुफल सकल शुभ साधन साजू। राम तुमहिं अवलोकत आजू॥" (रा० च०मा०,अ०का०)

(६१) गात = शरीर। राउर = आपका। परस = छूना। महर्षि भरद्वाज श्रीरामचन्द्रजी से कहते हैं कि आपके दर्शन का स्पष्ट फल है। जो यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा और ध्यान सभी सफल हो गये, क्योंकि समाधि न लगानी पड़ी पर आपके मनोहर मुखारविन्द के स्पष्ट दर्शन मिल गये और यह तीर्थराज भी आपके स्पर्श से आनन्द और कल्याण से भर गया।

† "चले नहाइ प्रयाग प्रभु, लषन सीय रघुराज।" (रामाज्ञा, द्वि० सर्ग, सप्तक १, दोहा ७)

‡ "मानहु रति ऋतुनाथ सहित मुनि वेष बनाये है मैन।" (गीता० अ०)
"मुनि-वेष किये किधौं ब्रह्म जीव माय हैं।" (गी०)
"औरै सो वसंत औरै रति औरै रतिपति मूरति विलोके तन मन के हरन हैं।" (कविता०)

§ "उभय बीच सिय सोहति कैसी। ब्रह्म जीव बिच माया जैसी॥"
"जनु मधु मदन मध्य रति लसई।" (रा० च० मा०, अ० का०)

(६२) मदन = कामदेव। ऋतुपति = वसन्त। सबेरे त्रिवेणी स्नान करके राम, लक्ष्मण और सीता भरद्वाजजी को प्रणाम कर चले मानो मदन रति और वसन्त, ब्रह्म जीव और माया, शङ्कर पार्वती और गणेश या इन्द्र इन्द्राणी और जयन्त को लेकर जा रहे हों। इस छन्द में उत्प्रेक्षा और सन्देहालंकार हैं।

* पंथ चरित सिय राम को, सब सुख मङ्गल दाय।
राम लषन सिय दरस ते, खग मृग सुखी सुभाय ॥
खग मृग सुखी सुभाय पर्मपद के अधिकारी।
को न लहै सुख सकल सुखद वर वदन निहारी ॥
बदन निहारि सप्रेम मय, भये पर्म सुख धाम को।
† गिरि तरु खग मृग नारि नर, देखि चरित सिय राम को ॥६३॥

बालमीक आश्रम गये, सिया लषन रघुराइ।
आये मुनिवर मिलन को, भेंटे हृदय लगाइ ॥
भेंटे हृदय लगाइ पूजि परिपूरन कीन्हे।
आसन आदर देइ फूल फल अङ्कुर दीन्हे ॥
‡ अङ्कुर दीन्हे अमिय सम, अस्तुति आनँद मन भये।
सकल सिद्धि साधन सुफल, बालमीक आश्रम गये ॥६४॥

---

* "जिन जिन देखे पथिक प्रिय, सिय समेत दोउ भाइ।
भव मग अगम अनन्द तेइ, बिनु श्रम रहे सिराइ ॥" (रा० च० मा०, अ० का०)

† "बिटप बेलि फूलहिं फलहिं, जल थल विमल बिसेषि।
मुदित किरात बिहंग मृग, मंगल मूरति देखि ॥"
(रामाज्ञा प्रश्न, द्वि० सर्ग, सतक ३, दोहा २)

(६३) पंथ = मार्ग। पर्मपद = मोक्ष। वदन = मुख। तरु = वृक्ष। खग = पक्षी। श्रीसीताराम ने मार्ग में जो चरित्र किये वे सबको सुख और कल्याण-दायक हुए; क्योंकि उनके दर्शन से जड़-चेतन, पशु-पक्षी और स्त्री-पुरुष सबको स्वाभाविक आनन्द मिला और सब परम पद के अधिकारी हो गये; क्योंकि उनके मुखारविन्द के सप्रेम दर्शन से परमानन्द की प्राप्ति होती है।

‡ मुनिवर अतिथि प्रान प्रिय पाये कन्द मूल फल मधुर मँगाये। (रा० च० मा०, अ० का०)

(६४) सकल सिद्धि साधन सुफल = आठों सिद्धियों की साधना के फलस्वरूप। यहाँ अङ्कुर की उपमा अमिय (अमृत) से दी गई है। अतएव उपमा अलङ्कार है। जब सीता, राम और लक्ष्मण वाल्मीकि के आश्रम को गये तो महर्षि ने सब प्रकार से उनका आदर किया। फिर उनकी स्तुति करते-करते मग्न हो गये जो सब सिद्धियों की साधना के फल-स्वरूप हैं।

जाके हित मन गो त्रसित, साधत साधन धाम।
मोह मदादिक गुन तजै, अहनिसि जागत जाम॥
* अहनिसि जागत जाम ताप जप जोग विरागे।
मानस ब्रह्म निरूप रहत निसि दिन अनुरागे॥
निसि दिन अनुरागे रहै, ध्यान ज्ञान मन्दिर लसित।
सो प्रतिच्छ मूरति लखा, जाके हित मन गोत्र सित॥६५॥

राम कहेउ कर जोरि कै, मुनिनायक सुनि बैन।
† आस्रम पावन दीजियै, जहाँ करहुँ चित ऐन॥
करहुँ तहाँ सुचि ऐन दिवस कछु तहाँ बिताऊँ।
कारन जानत सकल कहा कहि प्रगट जनाऊँ॥
प्रगट जनाऊँ आसरम, देहु मुनीस निहोरि कै।
चलिय कृपा करि देहु मुनि, राम कहेउ कर जोरि कै॥६६॥

---

* "करहिं जोग जोगी जेहि लागी। कोह मोह ममता मद त्यागी॥" (रा० च० मा०)
"सञ्जम जप तप नेम धरम व्रत बहु भेषज समुदाई।
तुलसिदास भवरोग रामपद प्रेमहीन नहिं जाई॥" (विनयपत्रिका ८१)

(६५) गो = इन्द्रिय। मानस = मन; हृदय। अनुरागे = लगे हुए। लसित = शोभित। इस पद्य में साधु, उदासी, तपस्वी, जपी, योगी, वैरागी और वेदान्तवादियों से भक्त हृदय की तुलना की गई है जो भगवान् के प्रत्यक्ष दर्शन पाकर प्रफुल्लित हो उठता है।

† "अस जिय जानि कहिय सोइ ठाऊँ। सिय सौमित्रि सहित जहँ जाऊँ॥"
(रा० च० मा०, अ० का०)

(६६) आस्रम = स्थान। पावन = पवित्र। निहोरि कै = कृपा कर। रामचन्द्रजी ने हाथ जोड़कर मुनिवर से कहा कि हमें कोई ऐसा पवित्र स्थान दीजिए जहाँ कुछ दिन निवास कर सकें। हमारे यहाँ रहने का कारण आप जानते ही हैं फिर भला आपसे क्या कहें।

सुन्दर गिरि गन सरित बन, देखि जाइ मुनि संग।
* कहत महातम पर्म थल, देखि होहि दुख भंग ॥
देखि होइ दुख भंग सुखी खग मृग बनचारी।
† तरुवर फलित विभाग सुधासम सुन्दर वारी ॥
सुन्दर जल थल निरख यह, चित्रकूट मङ्गल भरित।
पावन करिय विहार थलु सुन्दर वन गिरिगन सरित ॥६७॥

राम लखन आश्रम करयो, चित्रकूट सिय सङ्ग।
मनहु विपिनि बसि तप करत, रति ऋतुराज अनङ्ग ॥
रति ऋतुराज अनङ्ग राम लखि सुख वनचारी।
‡ भरि भरि दौना सुफल भेट धरि वदन निहारी ॥
वदन निहारि निहारि सब, मगन सदन मङ्गल भरयौ।
§ विपिन भयो कामद सुखद, राम लखन आश्रम करयौ ॥६८॥

---

* "कहत महातम अति अनुरागा। देखि होहि दुख दारिद भंगा ॥"
(रा० च० मा०, अ० का०)

† "विटप बेलि फूलहिं फलहिं, जल थल विमल विसेषि।" (रामाज्ञाप्रश्न)

(६७) पर्म थल=उत्तम स्थान। भंग=नष्ट। सुधा=अमृत। पावन=पवित्र। ऋषि के साथ जाकर रामचन्द्रजी ने सुन्दर पहाड़ियों से तथा नदी और वन से घिरे हुए चित्रकूट नामक पुण्यस्थान को देखा जो माङ्गलिक पदार्थों से युक्त है और जिसके दर्शन से ही सब पाप नष्ट हो जाते हैं, जहाँ जड़ चेतन सभी प्रफुल्लित हो रहे हैं, जहाँ का जल स्वादिष्ठ और स्थल रमणीक है। मुनिवर ने कहा कि विहार करके इस स्थल को पवित्र कीजिए।

‡ "दोना भरि भरि राखेनि आनी।"

§ "कामद भे गिरि रामप्रसादा।" (रा० च० मा०, अ० का०)

(६८) चित्रकूट=एक पर्वत का नाम है। विपिनि=वन। अनङ्ग=कामदेव। कामद=वाञ्छित फल देनेवाला। राम, लक्ष्मण और जानकी चित्रकूट में निवास करने लगे, मानों कामदेव, रति और वसन्त तप कर रहे हों। राम को देखकर सभी वन के निवासी प्रसन्न हुए और दोनों में भरकर अच्छे अच्छे फल लाये। वह कामद वन सुखदायी हो गया, क्योंकि श्रीरामचन्द्रजी के दर्शन पाकर सभी प्रसन्न हो रहे हैं। इस छन्द में 'उत्प्रेक्षा' अलङ्कार है।

अब सुमन्त अवधहि चले, राम बिदा जब कीन।
हय न चलहिं रघुवर विरह, सचिव भयौ दुख दीन ॥
* सचिव भयौ दुख दीन सिथिल रथ हाँकि न आयौ।
विकल विषाद निहारि अवधि केवट पहुँचायौ ॥
† केवट गृह आयो बहुरि, साँझ पाइ औसर भले।
‡ हानि गिलानि बिहाल उर, अब सुमन्त अवधहिं चले ॥६९॥

§ कहु सुमन्त कहँ राम सिय, उठे विकल नरनाह।
सचिव हृदय भेट्यौ नृपति, नैनन नीर-प्रवाह ॥
नैननि नीर-प्रवाह सचिव सन बोलि न आयौ।
राम सिया सन्देस सकल मुख कहन न पायौ ॥
कहन न पायौ मुख वचन, ब्रह्मरन्ध्र पथ कढ़ेउ जिय।
लखन राम सिय राम सिय, कहु सुमन्त कहँ राम सिय ॥७०॥

---

* "शोक सिथिल रथ सकै न हाँकी।" (रा० च० मा०, अ० का०)
† "साँझ समय तब अवसर पावा।" (" ")
‡ "हानि गिलानि विपुल मन ब्यापी।" (" ")

(६९) हय = घोड़ा। विरह = वियोग। इधर सुमन्तजी अयोध्या को चले; क्योंकि रामचन्द्रजी ने गङ्गातट से ही उन्हें बिदा कर दिया। किन्तु राम के विरह में न तो घोड़े ही चलते हैं और न दुःख और दैन्य से शिथिल हो जाने के कारण सुमन्त उन्हें हाँक ही पाते हैं। यह देख-कर केवट उन्हें अयोध्या तक पहुँचाकर शाम तक घर लौट आया किन्तु सुमन्त का हृदय राम के चले जाने की हानि की ग्लानि से विहाल था।

"हय हाँके फिरि दखिन दिसि, हेरि हेरि हिहिनात।
भये निषाद विषाद बस, अवध सुमन्तहि जात ॥"
(रामाज्ञा, द्वितीय सर्ग, सतक ३, दोहा ४)

§ "सुनत उठे व्याकुल नृपति, कहु सुमन्त कहँ राम।" (रा० च० मा०, अ० का०)

(७०) नरनाह = राजा। सचिव = मन्त्री। ब्रह्मरन्ध्र = ब्रह्माण्ड, शिर। महाराज दशरथ ने व्याकुल होकर मन्त्री को हृदय से लगा लिया और पूछा कि राम और सीता कहाँ हैं। सुमन्त की आँखों से आँसुओं की धारा बह रही थी, अतः बोलते न बनता था। वे सीता और राम का पूरा सँदेसा भी न कह पाये थे कि राम, लक्ष्मण और जानकी को स्मरण करते हुए राजा के प्राण ब्रह्मरन्ध्र की राह निकल गये।

भूप भवन रोदन परचो, रानी पुर नर नारि।
अवधिनाथ अथयो मनहु, रवि निसि अवधि निहारि॥
* निसि सम अवधि निहारि, गारि सब कुमतिहिं देई।
† विपति वियोग कुयोग कलह दृढ़ दीन्हेसि नेई॥
दोन्हेसि सब कहँ दुसह दुख, जेहि के करतब नृप मरचौ।
हाय हाय लायौ नगर, भूप भवन रोदन परचौ॥७१॥

राखि भूप तन करि जतन, कह वसिष्ठ समुझाइ।
दूत पठाये भरत पहँ, आतुर चार बुलाइ॥
§ आतुर चार बुलाइ भूप गति प्रकटेहु नाहीं।
‖ गुरु बुलवाये भरत वेगि लै गवनेहु ताही॥
गमन कीन्ह सिर नाइ तब हय गति मारग मुनि बचन।
मुनि बुझाइ रानी सकल, राखि भूप तन करि जतन॥७२॥

---

* "गारी सकल कैकयिहिं देहीं।" (रा० च० मा०, अ० का०)
† "दीन्हेसि अचल बिपति कै नेई।" (" ")
(७१) कुमति=कुत्सित बुद्धिवाली, कैकेयी। कलह=झगड़ा। नेई=निहाई। करतब=करनी। राजमहल में रोना-पीटना पड़ गया। अयोध्या में रात आई देखकर दशरथरूपी सूर्य अस्ताचल को चले गये। सब लोग कारणभूता कैकेयी को गाली देने लगे; क्योंकि उसी के कारण अवध में हाहाकार छा गया।

‡ "तेल नाव भरि नृप तन राखा।" (रा० च० मा०, अ० का०)
§ "नृप सुधि कतहुँ कहहु जनि काहू।" (" ")
‖ "गुरु बुलाइ पठये दोउ भाई।" (" ")
(७०) आतुर=शीघ्र। वशिष्ठजी ने राजा के शरीर को यत्न-पूर्वक सुरक्षित रक्खा। चार दूतों को भरतजी के लिवाने के लिए भेज दिया और यह आदेश कर दिया कि दशरथजी के मरण का हाल न खुलने पावे और इधर रानियों को समझाना-बुझाना प्रारम्भ कर दिया।

* गुरु सँदेस आये भरत, असगुन नगर नगीच।
 † स्वान अगाल उलूक खर, बोलत असुभ कुनीच॥
बोलत असुभ कुनीच भरत मति थित गति नाहीं।
 भरत देखि नर नारि वाम दाहिन चलि जाहीं॥
वाम अवधपुर देखि कै, दुख जुर सों छाती जरत।
 धरत पाँव डगमग परत, गुरु सँदेस आये भरत॥७३॥

भूषन भाजन साजि कै, सुत आगमन बिचारि।
 ‡ लै आई केकयसुता, सुत आरती उतारि॥
सुत आरती उतारि भाइ दोउ भ्रम ते भूले।
 पियो न जल थल बैठि सूल के अङ्कुर सूले॥
अङ्कुर सूल विचारि कै, कुसल पूछि निज राजि कै।
 § बोली सुत दाहक वचन, भूषन भाजन साजि कै॥७४॥

---

* "गुरु आयसु आये भरत" (रामाज्ञाप्रश्न)

† "खर सियार बोलहिं प्रतिकूला"। (रा० च० मा०, अ० का०)

(७३) स्वान=(श्वान) कुत्ता। मति=बुद्धि। जुर=ज्वर। गुरुजी का सँदेसा पाकर भरतजी आ रहे हैं पर अयोध्या के पास उन्हें अपशकुन होने लगे। कुत्ते, सियार, उल्लू और गधे अमङ्गल-सूचक शब्द करने लगे, भरतजी की बुद्धि अस्थिर होने लगी। उन्हें देखकर स्त्री-पुरुष दाहिनी ओर से बाईं ओर जाने लगे। यह देखकर वे व्याकुल हो उठे। चलने में पैर ठीक नहीं पड़ते थे, डगमगाते थे।

‡ "सजि आरती मुदित उठि धाई। द्वारेहि भेटि भवन लै आई"॥ (रा० च० मा०, अ० का०)

§ "भरत श्रवन मन सूल सम, पापिनि बोली बयन"॥ (रा० च० मा०, अ० का०)

(७४) सूल (शूल)=पीड़ा, दुःख। राजि=राज्य। दाहक=जलानेवाली, दुःख देनेवाली। पुत्र का आना सोचकर कैकेयी ने सुसज्जित होकर भरतजी की आरती उतारी और उन्हें घर के भीतर ले आई; पर दोनों भाई भ्रम में पड़े थे। अतः बिना पानी पिये पृथ्वी पर बैठ गये और हृदय की तपन शांत करने के लिए अपने वंश की कुशल पूछी, तब कैकेयी ने पुत्र को दुखी करनेवाली बात कही।

* कुसल काज सब राजि मैं, राख्यौं पुत्र सुधारि।
भई मन्थरा परम हित, दोष दुखन सब जारि॥
दोष दुखन सब जारि राज सब तुम्हरे जाग्यौ।
कंटक भे सब दूरि अगम वर नृप सन माँग्यौ॥
अगम सुधारी बात मैं नृप सुरपुर सुख साज मैं।
† कछुक बिगार्यौ विधि यहै, कुसल राज सब काज मैं॥७५॥

राम लखन सिय वन गये, मरे भूप तेहिं सोच।
तुम कहँ राजि विलास अब, कीजै छाँड़ि सकोच॥
कीजै छाँड़ि सकोच होत सब विधि के कीनो।
मरन जियन जग रीति लेहु पुर राजि नवीनो॥
राजि सुनत व्याकुल गिर्यौ, रोदन करि मूर्छित भये।
‡ तात तात हा तात कह, राम लखन सिय वन गये॥७६॥

---

*"तात बात मैं सकल सँवारी। भइ मन्थरा सहाय बिचारी"॥ (रा० च० मा०, अ० का०)

† "कछुक काज बिधि बीच बिगार्यो"। (रा० च० मा०, अ० का०)

(७५) कंटक=विघ्न, शत्रु। अगम=अटल। हे पुत्र, मैंने कुशल का कार्य सब सँभाल रक्खा है और इस कार्य में मन्थरा ने मेरी विशेष सहायता की है। दोष और दुःख सब जल गये, तुम्हारे लिए राजा से मैंने निष्कण्टक राज्य माँग लिया है। ब्रह्मा ने इतनी ही बात बिगाड़ दी जो ऐसे सुख-साज के समय राजा को परलोक भेज दिया, अन्यथा सब कुशल है।

‡ "तात तात हा तात पुकारी। परे भूमि-तल व्याकुल भारी"॥ (रा० च० मा०, अ० का०)

(७६) भूप=राजा। विलास=सुख। जग=संसार। कैकेयी ने कहा कि राम, लक्ष्मण और जानकी वन को चले गये। इसी सोच में राजा की मृत्यु हो गई। पर तुम्हारे लिए राज्य का सुख है सो निःसंकोच होकर इसका भोग करो; क्योंकि संसार में मरना-जीना लगा ही रहता है। जो ब्रह्मा करता है वही होता है। इतना सुनते ही भरतजी पिताजी को तथा राम-लक्ष्मण और जानकी को स्मरण करते हुए व्याकुल होकर मूर्च्छित हो गये।

* परे न कीरा मुहुँ जरयौ, वर माँगत जड़ तोहि।
कुमति कठोर न नृप लखी, मिथ्या जनमे मोहिं॥
मिथ्या जनमे मोहिं जगत मुख कारिख लाई।
राम सुवन वन प्रीति पठै नव लीन बड़ाई॥
कारिख लाई मोहिं मुख, राम विपिन कहँ मन धरयौ।
को तू काके रूप घर, परे न कीरा मुहुँ जरयौ॥७७॥

† प्रीतम मारत नहिं डरी, बन पठये सिय राम।
प्रेत पिसाचिनि रूप तू, भई कहाँ की वाम॥
भई कहाँ की वाम राम तोहिं अनहित लागे।
‡ जो हसि सो उठि बैठि ओट तजि आँखिन आगे॥
आँखिन आगे ते टरै, धृक मैं जनम्यौ जिहिं घरी।
राम सुवन पठये वनहिं, प्रीतम मारत नहिं डरी॥७८॥

---

* "वर माँगत मन भई न पीरा। गिरि न जीह मुख परयौ न कीरा"॥ (रा०च०मा०, अ०का०)
ऐसे तैं क्यों कटु बचन कह्यो री।
'राम जाहु कानन' कठोर तेरे कैसे धौं हृदय रह्यो री॥" (गीतावली, अ० का० ६०)

(७७) मिथ्या = झूठ, व्यर्थ। सुवन = पुत्र। नव = नवीन। होश में आने पर भरतजी बोले कि वर माँगते समय मुँह जल क्यों न गया और उसमें कीड़े क्यों न पड़ गये? हे दुर्बुद्धे, राजा भी तेरी कठोरता को न समझ पाये! तूने मुझे व्यर्थ उत्पन्न किया। तूने मेरे मुख में कालिख लगा दी। राम जैसे पुत्र को वन भेजकर नवीन प्रेम का परिचय दिया। सच बता, तू कौन है और किस रूप में हमारे घर में विद्यमान है जो ये सब बातें कीं?

† "भूप मरन प्रभु वन गवनु, सब बिधि अवध अनाथ।
रोवत समुझि कुमातु कृत, मींजि हाथ धुनि माथ॥" (रामाज्ञा, द्वि० सतक ५, दो०-२)

‡ "जो हसि सो हसि मुख मसि लाई। आँखि ओट उठ बैठहि जाई"। (रा०च०मा०,अ०का०)

(७८) प्रीतम = पति। अनहित = अप्रिय। सीताराम को वन भेजकर अपने पति को मारते समय तू डरी नहीं। तू पिशाचनी स्त्री-रूप में कहाँ से आ गई, जो राम तुझे अप्रिय लगे। तू जो भी हो, अब मेरी आँखों के सामने से हट जा। उस घड़ी को धिक्कार है जब मेरा जन्म हुआ; क्योंकि यह सब अनर्थ मेरे ही कारण हुआ।

आई दुखदाइनि त्रिया, नाम मन्थरा जाहि।
भूषन भार सिंगार तन, रिपुहन लखि चष चाहि ।।
* रिपुहन लखि चलि चाहि दौरि पग कूबर मारयौ।
परी धरनि धर केस घसीटत तनक न हारयौ।।
तनक न हारयौ वीर तब, भरत जाइ रक्षन किया।
उठे त्यागि कुल-दाहिनी, आई दुखदाइनि त्रिया ।।७९।।

† उठत कौसिला गिरि परी, भरत देखि उठि दौरि।
लीन्हे हृदय उठाइ कै, आँगन गिरी बहोरि ।।
‡ आँगन गिरी बहोरि रोइ दीन्हे दुहु भाई।
मातु लगाई कंठ अश्रुधारा नहवाई ।।
नहवाये चष नीर ते, वीर भरत धीरज धरी।
विकल भरत समझावती, उठत कौसला गिरि परी ।।८०।।

---

* "हुमगि लात तकि कूबर मारा।" (रा० च० मा०, अ० का०)

(७९) चष = नेत्र। दाहिनी = जलानेवाली, नाश करनेवाली। मन्थरा नाम की दासी सुसज्जित होकर आई और शत्रुघ्न को स्नेहभरी दृष्टि से देखने लगी। शत्रुघ्न ने उसके कूबड़ में एक लात मारी और बाल पकड़कर पृथ्वी पर ख़ूब घसीटा। भरतजी के बचाने पर ही शत्रुघ्न ने उसे छोड़ा; क्योंकि वंश में उसी ने दुःख की दावाग्नि लगाई थी।

† "भरतहिं देखि मातु उठि धाई। मुरछित अवनि परी झइँ आई ।।"
(रा० च० मा०, अ० का०)

‡ "रोवत समुझि कुमातु कृत" (रामाज्ञाप्रश्न)

(८०) कंठ = गला। नीर = जल, आँसू। भरतजी को देखकर कौशल्याजी गिरती-पड़ती दौड़कर आईं और उन्हें हृदय से लगा लिया और आँगन में फिर गिर पड़ीं। माता की यह विह्वलता देखकर दोनों भाई रोने लगे। माता ने उन्हें फिर कंठ से लगा लिया और आँसुओं से नहला दिया, फिर भरत को समझाने लगीं।

* आँचर नैन लगाइ कै, आँसू पोंछति मातु।
तोहिं बिना सुत यह दसा, उठत न पैयत गात॥
उठन न पैयत गात राम सिय वनहिं सिधाये।
पुर परिजन भे विकल लखन सिय बहु समुझाये॥
बहु समुझाये नहिं रहे, राम चले सँग लाइ कै।
सुनत भरत जल चष भरे, अंचल पोंछति धाइ कै॥८१॥

† मातु जगत जनम्यौ वृथा, भई न केकइ बाँझ।
राम सिया अप्रिय भये, अजस मूल जग माँझ॥
अजस मूल जग माँझ जासु हित यह गति तोरी।
जनमत हत्यौ न मोहिं देति विष माहुर घोरी॥
‡ माहुर दै मार्‌यो जगत, कुल-कुठार उपज्यौ जथा।
नृप गति यह रघुपति विपिनि, मातु जगत जनम्यौ वृथा॥८२॥

---

* "तुलसिदास समुझाइ भरत कहँ, आँसु पोंछि उर लाये।" (गीतावली)
"आँसु पोंछि मृदु बचन उचारे।" (रा० च० मा०, अ० का०)

(८१) गात=शरीर। परिजन=परिवार के लोग। माता अञ्चल से भरतजी के आँसू पोंछकर कहती हैं कि यहाँ तुम्हारे न रहने से हमारा यह हाल हुआ कि उठने भी नहीं पातीं। सीता और राम वन को चले गये। लोगों ने लक्ष्मण और सीता को बहुत समझाया पर वे भी यहाँ न रहे तो राम उन्हें लिवाकर वन चले गये। इतना सुनकर भरतजी फिर रोने लगे।

† "केकइ कत जनमी जग माँझा। जो जनमि त भइ काहे न बाँझा॥" (रा०च०मा०अ०का०)

‡ "कहि कुल के कुठार सों" (कवितावली)

(८२) मूल=जड़, कारण। माहुर=विष। वृथा=बेकार। मेरा जन्म व्यर्थ हुआ क्योंकि मेरे ही कारण राजा का मरण और राम को वनवास हुआ और तुम्हारी यह शोचनीय दशा हुई। 'कुलकुठार' में 'छेकानुप्रास' तथा 'रूपक' है।

सुर गुर दिज पातक परै, जो जानै यह बात।
बाल बाल बध अघ अजस, गाइबैठ पुर घात ॥
*गाइबैठ पुर घात मीत नृप माहुर दीन्हे।
†-पर धन पर त्रिय हानि परै अघ गोवध कीन्हे ॥
गोवध निन्दा वेद की, पर अपकारी अघ करै।
जो जननी जानहु तनकु, सुर गुर दिज पातक परै ॥८३॥

पर घर अगिनि लगावहीं, कुपथ पंथ पग देइँ।
बाल त्रिया कर धन धरैं रन भगि अपजस लेइँ ॥
रन भगि अपजस लेइ मातु पित विप्र न मानैं।
§ हरि हर ते पद विमुख भूत प्रेतन उर आनैं ॥
उर आनै तीरथ कुकृत, निज कुटुम्ब तृन लावहीं।
जो जानौ तौ अघ परै, पर घर अगिनि लगावहीं ॥८४॥

---

* "मीत महीपति माहुर दीने"। (रा० च० मा०, अ० का०)

† "जे पर धन पर दार रत" (दोहावली)

(८३) पातक = पाप। बाल = बच्चा, स्त्री। गाइबैठ = गोशाला। मीत = मित्र। माहुर = विष। यदि मैं पहले से यह बात जानता होऊँ तो मुझे सब महापातक और उपपातक लगें। दूसरी पंक्ति में 'बाल' का भिन्न भिन्न अर्थों में प्रयोग हुआ है, अतएव यहाँ 'यमक' अलङ्कार है।

‡ "वेद पथ छाँड़ि कुपंथ गहा है।" (विनयपत्रिका)

§ "जे परिहरि हरि हर चरन, भजहिं भूत घनघोर।
तिनकै गति मोहिं देहु बिधि, जो जननी मत मोर ॥" (रा० च० मा०, अ० का०)

(८४) कुपथ = पापमार्ग। रन (रण) = युद्ध। अपजस = कलङ्क। कुकृत = दुष्कर्म। तृन लावहीं = जलाकर ध्वंस कर देते हैं। अघ = पाप। दूसरे के घर को जलानेवाले, स्त्री और बालक का बध करनेवाले, लड़ाई में पीठ दिखानेवाले, माता-पिता और ब्राह्मणों का निरादर करनेवाले, राम और शिव की भक्ति छोड़कर प्रेतों को माननेवाले, तीर्थों में पाप भावना लानेवाले जिस पाप के भागी होते हैं, वे सब पाप मुझे लगें, यदि मुझे इस बात का तनिक भी ज्ञान रहा हो। ('हरिहर' में छेकानुप्रास है)।

* लोभ मोह फाँसे रहैं, साधु संग नहि लेइँ।
मीत विप्र कुल कष्ट लखि, असन नीर नहिं देइँ ॥
असन नीर नहिं देइँ कूप सर बाग विधंसैं।
तन पोषक बिन तोष ग्रहत विष धन पर अंसैं ॥
पर अंसै जे नित धरैं, कटुक बोलि छाती दहैं।
† तिनकी गति विधि देहु जग, लोभ मोह फाँसे रहैं ॥८५॥

ये नर जग होतै मरैं, करैं जनम भरि पाप।
रन मंडल अपजस लहैं, देहि विप्र गुर ताप ॥
देहिं विप्र गुर ताप बसत घर लाय उजारैं।
‡ संत सभा नहिं बैठि मृषा मुख बोल उचारैं ॥
मृषा साखि जग उच्चरैं, नित्त रारि उठि गृह करैं।
§ राम सिया जेहिं प्रिय नहीं, ये नर जग होतै मरैं ॥८६॥

---

* "काम लोलुप भ्रमत मन हरि भगति परिहरि तोरि।" (विनयपत्रिका)

† "तिन कइ गति विधि देहु मोहि, जौ जननी मति मोर।" (रा० च० मा०, अ० का०)

(८५) मीत=मित्र। असन=भोजन। विधंसैं=नष्ट करते हैं। कटुक=कठोर वचन। यहाँ पर भरतजी कलि के कटु प्रभावों का वर्णन कर रहे हैं, फिर उनका निराकरण करके अपनी सफ़ाई देते हैं कि श्रीराम को वन भेजने में "मेरी सम्मति रही हो तो ये सब पाप मुझे लगें।" पर इनकी सम्मति तो थी ही नहीं, इसलिए शपथ भी खाते हैं।

‡ "जे नहिं साधु संग अनुरागी।" (रा० च० मा०, अ० का०)

§ "जाके प्रिय न राम-बैदेही।" (विनयपत्रिका)

(८६) ताप=दुःख। मृषा=झूठ। रारि=झगड़ा। इस छंद में दुष्ट क्षत्रियों के चरित्र का वर्णन करके कायर, अत्याचारी, अनाचारी, झूठे और सीताराम की भक्ति के विरोधी मनुष्यों को शाप दिया गया है।

* तुम सुत सपथ न खाँचियै, राम प्रानप्रिय तोहिं।
† तुम रामहिं अति प्रिय सदा, विधि गति बाँकी होहि ॥
विधि गति वंकित होहि देहु दूषन जनि काहू।
‡ कर्म प्रधान किसान बवै लुनियत सोइ लाहू ॥
§ बयौ पाइयै जगत मैं, भूप मरे हम बाचियै।
राम चले प्रान न चले, तुम सुत सपथ न खाचियै ॥८७॥

‖ बड़े भोर मुनि आइगे, बैठेहि रैनि बिहानि।
भरत बुझाइ वसिष्ठ मुनि, भूप क्रिया-विधि आनि ॥
भूप क्रिया विधि आनि दाह सरजू तट दीन्हो।
रानिन को परिबोध भरत पायन परि कीन्हो ॥
पायन परि करि कर्म सब, तिल अंजुलि कृत राइ कै।
भरत सिखाये मृत करम, बड़े भोर मुनि आइ कै ॥८८॥

---

* "राम प्रान ते प्रान तुम्हारे। तुम रघुपतिहि प्रान ते प्यारे" ॥ (रा० च० मा०, अ० का०)

† "मोको आज बिधाता बावौं।" (गीतावली)

‡ "कर्म प्रधान विस्व रचि राखा। जो जस करै सो तस फल चाखा" ॥

(रा० च० मा०, अ० का०)

§ "बयो लुनियत सब याही दाढ़ीजार को।" (कवितावली, सु० १२)

(८७) खाँचियै=कीजिए। बाँकी=टेढ़ी, विपरीत। दूषन=पाप, कलंक, दोष। इस छन्द में लोकोक्ति अलंकार है। कौशल्याजी अपनी दुरवस्था का करुण चित्रण करती हैं। वे कहती हैं कि ब्रह्मा की गति टेढ़ी है, राम तुम्हें और तुम राम को प्राणों से भी प्यारे हो, तुम कसम मत खाओ।

‖ "बैठेहि बीति गई सब राती"। (रा० च० मा०, अ० का०)

(८८) भोर=प्रातःकाल। परिबोध=सन्तोष। बड़े सबेरे वशिष्ठजी आ गये और उन्होंने भरतजी से राजा का दाह कर्म सरयू-तट पर कराया। फिर भरतजी ने सब माताओं के चरण पकड़-कर उन्हें नाना प्रकार से समझाया। पाँचवीं पंक्ति में छेकानुप्रास है।

हय गय मनि भूषन दये, सिंघासन महि साज।
धेनु वसन आयुध चँवर, छत्र पात्र सिर ताज॥
छत्र पात्र सिर ताज सुमति गति मुनि जस भाषी।
* सत सत कीन विधान भरत करनी अभिलाषी॥
† करि करतूति प्रमान जस, सब प्रकार विधिवत भये।
सुद्ध सिद्ध करि काज सब, हय गय मनि भूषन दये॥८९॥

सुद्ध भये मुनिवर गये, जहाँ राज-दरबार।
नगर महाजन विप्र जन, सचिव सुभट सरदार॥
सचिव सुभट सरदार बोलि पठई सब रानी।
भरत सत्रुहन साथ बोलि लीन्हे मुनि ज्ञानी॥
‡ मुनि ज्ञानी बैठारि ढिग, मधुर बचन बोलत भये।
राज-सभा दरबार सब, सुद्ध भये मुनिवर गये॥९०॥

---

* "तहँ तस सहस भाँति सब कीन्हा"। (रा० च० मा०, अ० का०)

† "वेद विहित पितु करम करि"। (रामाज्ञा प्रश्न)

(८९) हय=घोड़ा। गय=हाथी। आयुध=अस्त्र-शस्त्र। भाषी=बतलाया। करतूति=मृतक-क्रिया। वशिष्ठ मुनि के आज्ञानुसार भरतजी ने विधिपूर्वक तथा रीति के अनुकूल शुद्ध भाव से सैकड़ों प्रकार की वस्तुएँ दान में दीं। 'सत सत कीन विधान'=एक एक की जगह सौ सौ वस्तुएँ दीं।

‡ "भरत वशिष्ठ निकट बैठारे, नीति धरम मय बचन उचारे"। (रा० च० मा०, अ० का०)

(९०) मुनिवर=मुनियों में श्रेष्ठ, वशिष्ठजी। सचिव=मंत्री। ढिग=निकट, पास। जब सूतक समाप्त होने पर सब शुद्ध हो चुके तो वशिष्ठजी राजदरबार में आकर ब्राह्मणों, मंत्रियों, वीर सरदारों, महाजनों और सब रानियों के सामने भरत और शत्रुघ्न को अपने पास बैठाकर इस प्रकार के मीठे वचन बोले।

* नृपति प्रेम पूरन कियौ, तेहि को सोचिय नाहि।
जाको जस ससि सरद सो, को नहिं देखि सिहाहि॥
को नहिं देखि सिहाहि भोग सुरपति सम कीन्हो।
† राम वियोग कृसान प्रान जेहिं तृन धरि दीन्हो॥
‡ राम लखन तुम सत्रुघन, चारि सुवन लखि जग जियौ।
बिछुरि गये सुरलोक वर नृपति प्रेम पूरन कियौ॥९१॥

राम सुभाव सनेह को, कहिय कौन विधि गाइ।
§ पितु आयसु तुरतहिं उठे, सब पुरजन समुझाइ॥
सब पुरजन समुझाय सिया लखनहि समुझायो।
प्रान तजैं यह जानि संग करि सोच न आयो॥
सोच न आयो भूप को, भूपति वचन अछेह को।
‖ धर्म सील गुन को कहै, राम सुभाय सनेह को॥९२॥

---

* "करी तुलसीदास दशरथ प्रीति परमिति पीन"। (गीतावली, अ० ५८)
† "बिछुरत दीनदयाल, प्रिय तन तृण इव परिहरेउ"। (रा० च० मा०, बा० का०)
‡ "राम लखन तुम सत्रुहन, सरिस सुवन सुचि जासु"। (रा० च० मा०, अ० का०)

(९१) सिहाहि = स्पर्धा करें। सुरपति = इन्द्र। कृसान = अग्नि। तृन धरि दीन्हो = तुच्छ समझकर छोड़ दिया। राजा ने सत्य और प्रेम दोनों का पालन किया, नियम और शील दोनों की रक्षा हुई। "जाको जस ससि सरद सो" में 'उपमा' और "वियोग कृसान" में 'रूपक' अलङ्कार है।

§ "आयसु सिर धरि चले हरषि हिय"। (गीतावली, अ० ५६)
‖ "सुनि सीतापति सील सुभाउ"। (विनयपत्रिका, १००)

(९२) सनेह = प्रेम। आयसु = आज्ञा। पुरजन = नगर के लोग। अछेह को = पालन करने के लिए। श्रीराम के चरित्र में स्नेह, धर्म, शील और गुण का जो स्वाभाविक विकास है, वह अवर्णनीय है।

कठिन केकई का कहौं, कहतहु कही न जाइ।
* कुमति कुआगि बराइ कै, दीन्ही अवधि लगाइ॥
दीन्ही अवधि लगाइ राम सिय बनहिं सिधाये।
पुर परिजन मन सोच भूप हठि प्रान पठाये॥
प्रान गँवाये भूप वर, भावी गति का नहिं दहै।
† बिधि बिधिता अति कठिन है, कठिन केकई का कहै॥९३॥

‡ भूप वचन प्रिय प्रान नहिं, भरत सुनौ सतिभाव।
सो फुर कीजिय सिर धरिय, धर्म सुमति स्रुति गाव॥
धर्म सुमति स्रुति गाव, तजे रघुवर जेहि लागी।
मातु सचिव पुर लोग जरत जुर नासहु आगी॥
नासहु आगी अवधि की अवधि लगे नृप राज लहि।
दोष न कछु मानस करौ, भूप बचन प्रिय प्रान नहिं॥९४॥

---

* "कुटिल कठोर कुबुद्धि अभागी। भइ रघुवंश बेनु बन आगी"॥
(रा० च० मा०, अ० का०)

† "विधि बाम की करनी कठिन जेहि मातु कीनी बावरी"॥ (,, ,,)

(९३) कठिन=कठोर हृदयवाली। कुआगि=दावाग्नि। बराइ कै=जलाकर। भावी=होनहार। कैकेयी की कठोरता तो है ही, पर ब्रह्मा की करनी भी विलक्षण है और होनहार तो होकर ही रहती है। प्रथम पंक्ति में 'क' की आवृत्ति कई बार होने के कारण 'वृत्ति' अनुप्रास है। 'कुआगि बराइ' में 'रूपक' है। 'कहतहु कही न जाइ' में विरोधाभास है।

‡ "भूप बचन प्रिय नहिं प्रिय प्राना। करहु तात पितु बचन प्रमाना"॥
(रा० च० मा०, अ० का०)

(९४) स्रुति (=श्रुति) वेद। सचिव=मंत्री। अवधि=अयोध्या, चौदह वर्ष श्रीरामचन्द्रजी के वनवास का समय। राजा को अपने वचन प्राणों से भी प्रिय थे अतः उनका पालन करो, जब तक राम के वनवास की अवधि है, तुम राज्य करो। इस छन्द में 'अवधि' का प्रयोग भिन्न भिन्न अर्थों में हुआ है, अतएव 'यमक' अलङ्कार है।

कहत कौसिला पाइँ परि, पूत सुनहु गुरु बात।
    * भूप मरे रघुपति गये, तुम यहि बिधि कदरात॥
तुम यहि बिधि कदरात अवधि उतपात बिचारौ।
    काल कर्म गति बाम कुदिन मुख कीजिय कारौ॥
कीजिय गुर आयस मुदित, पुर परिजन सिर भार धरि।
    पालि सोच सब को हरौ, कहत कौसिला पाइँ परि॥९५॥

भरत नैन धारा चले, सुनि गुर जननी बैन।
    हाथ जोरि बोले मधुर, जल उमड़े दोउ नैन॥
† जल उमड़े दोउ नैन सीख भलि दीन गोसाईं।
    मातु कहेउ उपदेस मोहिं पर दया सदाईं॥
दया सदाईं ते कहत, सचिव मातु गुर हित भले।
    उतर देत पातक लहौं, भरत नैन धारा चले॥९६॥

---

* "बन रघुपति सुरपुर नरनाहू, तुम यहि भाँति तात कदराहू"। (रा० च० मा०, अ० का०)

(९५) भूप=राजा। बाम=विरुद्ध। मुदित=प्रसन्न होकर। कौशल्याजी समझाती हैं कि गुरु की आज्ञा मानो, अयोध्या की रक्षा करो, समय और कर्म की गति बदल दो। बुरे दिन का मुँह काला कर दो, दुर्दिनों को दूर भगा दो; क्योंकि इसी से सब का सोच दूर होगा। इस छन्द में "मुख कीजिय कारौ" में वक्रोक्ति अलंकार है।

† "दीन मोहिं सिख नीक गोसाईं"। (रा० च० मा०, अ० का०)

(९६) धारा=आँसू। जननी=माता। पातक=पाप। भरत के चरित्र में स्वाभाविक संकोच है। जिस राज्य के लिए अनेक अनिष्ट हुए हों, राज्य के अधिकारी वन में भटकें, ऐसी अवस्था में राज्य का नाम सुनते ही भरत की आँखों से आँसू बहने लगते हैं; क्योंकि उत्तर देने से मर्यादा का उल्लंघन होता है।

* पायन पनहीं नहिं धरीं, राम विपिन किय गौन।
भूप मरे प्रन पूर करि, ताकौ सोचब कौन ॥
ताकौ सोचब कौन घाम यह तीछन लाग्यौ।
यहै पीर नित दहति रैनि भरि सोचन जाग्यौ ॥
सोचन जाग्यौ निसि सबै, जाति सकल छाती जरी।
रामलखन पट कटि तजे, पायन पनहीं नहिं धरीं ॥९७॥

प्रातकाल करिहैं। यहै, सुनहु सत्य सब बात।
धर्म जाय जग अजस लहि, नरकहु दुख सहि गात ॥
नरकहु सहि दुख गात जन्म भरि संकट होई।
सब दुख दावा दहौ अनल बरु डारहु कोई ॥
डारहु कोइ जवाल जुर, सकल दोष दुख भरि रहै।
‡ जाउँ अनुज जुत विपिनि कहँ, प्रातकाल करिहौं यहै ॥९८॥

---

* "बिनु पानहिन पयादेहि पाये। शंकर साखि रहेउँ यहि घाये" ॥ (रा०च०मा०, अ० का०)
† "एकै बड़ डर दुसह दवारी। मोहिं लगि भे सिय राम दुखारी" ॥ (,, ,,)

(९७) विपिन=वन। तीछन=(तीक्ष्ण) तेज़, कठिन, गहरा। पट=रेशमी वस्त्र। राजा दशरथ तो अपना प्रण पूरा कर चुके अतः उनकी तो कोई विशेष चिंता नहीं है, परंतु अपने प्रिय जनों के दुःख का स्मरण आने से भरतजी करुण भाव में अवगाहन करते हुए चले जाते हैं।

‡ "राम लखन सिय चरन बिलोकन काल्हि काननहिं जैहौं"। (गीतावली, अ० ६५)
"एकहि आँक इहै मन माहीं, प्रातकाल चलिहौं प्रभु पाहीं" ॥ (रा० च० मा०, अ० का०)

(९८) गात=शरीर। दावा=दावाग्नि। भरतजी को अपने ऊपर बड़ी ग्लानि लगती है। वे जानते हैं कि हमारे ही कारण राम को राज्य छोड़कर वन जाना पड़ा। अब चाहे जो हो, सबेरे उठकर पहला काम यही होगा कि भाई को लेकर राम के दर्शन के लिए वन की यात्रा की जाय। 'दुख दावा' में 'रूपक' अलङ्कार है। चतुर्थ पंक्ति में 'द' की आवृत्ति से 'वृत्ति' अनुप्रास है।

* सरन सामुहें देखिकै, रघुपति करिहैं छोहु।
सील सुभाव सुस्वामि कौ, समुझ्यो जन पर मोह ॥
समुझ्यो जन पर मोह राम सिय वाम न काहू।
मैं सिसु सेवक नीच कुमति उर प्रगटेउ साहू ॥
प्रगटेउ विधि अघ अजस लै, नीच दास सिसु लेखिकै।
राम सिया करिहैं कृपा, सरन सामुहैं देखिकै ॥९९॥

† भरत वचन लखि रवि जगे, राम विरह निसि पाइ।
भूप मरन केकइ कुमति, तिमिर रहेउ पुर छाइ ॥
तिमिर रहेउ पुर छाय मुरछि सोवत नर नारी।
लखन सीय को विरह बाघ वृक गरजत भारी ॥
गर्जत भारी भय विकल, तारागन मुनि दिज लगे।
दुखद सेज सोवत नगर, भरत वचन लखि रवि जगे ॥१००॥

---

* "सन्मुख गये सरन राखहिंगे रघुपति परम सँकोची"। (गी० अ० ६५)
"तदपि सरन सनमुख मोहि देखी। छमि सब करिहहिं कृपा विसेखी" ॥
(रा० च० मा०, अ० का०)

(९९) सामुहें=सामने। छोहु=कृपा, प्रेम। समुझ्यो=समझा हुआ है। वाम=विरुद्ध। भरतजी को पूरा विश्वास है कि रामचन्द्रजी अवश्य कृपा करेंगे; क्योंकि वे प्रेम-पूर्ण शील-स्वभाव-युक्त, सहज दयालु हैं, किसी के विरोधी नहीं हैं और शरणागत-रक्षक हैं।

† "मंत्र सबीज सुनत जनु जागे"। (रा० च० मा०, अ० का०)

(१००) विरह=वियोग। तिमिर=अन्धकार। राम के विरह के कारण अयोध्या में मोह का अंधकार छा गया है, द्विज और मुनि तारों की तरह टिमटिमा रहे हैं। लक्ष्मण और सीता का वियोग सिंह और बहेलियों की गर्जना के समान भयानक है। दुःख की सेज में अयोध्या सो रही है। रात का रूपक बाँधकर भरत के वचन-रूपी सूर्य के द्वारा मोह-रात्रि का नाश कराया गया है, जिसे देखते ही सब लोग जाग उठते हैं। इस छन्द में 'रूपक' अलङ्कार है।

सब के मन सब सुख भयौ, भरत भलो मत कीन।
दुख समुद्र बूड़त सकल, जेहि अवलंबन दीन ॥
* जेहिं अवलंबन दीन सभासद उठि भे ठाढ़े।
रामचंद्र सिय दरस मंत्र नर वारिधि बाढ़े ॥
वारिधि बाढ़े लोग सब, भरत मंत्र सब ही लयौ।
साजि साजि बाहन चले, सब के मन सब सुख भयौ ॥१०१॥

भरत साज साजत भये, मातु सकल पुर लोग।
† चले चित्रकूटहि भरत, कृसतन राम वियोग ॥
कृसतन राम वियोग चले सजि साज समाजे।
पायन पनहीं त्यागि सीस नहिं भूषन राजे ॥
भूषन साजे त्यागि कै, भाइ मातु सँग सब लये।
‡ राम प्रेम पूरन भरे, भरत साज साजत भये ॥१०२॥

---

* "शोक सिंधु बूड़त सबहिं तुम्ह अवलम्बन दीन " (रा० च० मा०, अ० का०)

(१०१) अवलंबन = सहारा। वारिधि = समुद्र। बाहन = सवारी। भरतजी की मंत्रणा सुनकर समुद्र के समान उमड़कर सब लोग राम के दर्शन करने चले। 'दुख समुद्र' में 'रूपक' अलङ्कार है।

† "चले चित्रकूटहि भरत ब्याकुल राम-वियोग ॥"

(रामाज्ञा प्रश्न, सर्ग २, सप्तक ५, दोहा ३)

‡ "भरतहि कहहिं सराहि सराही। राम प्रेम मूरति तनु आही ॥" (रा० च० मा०, अ० का०)

(१०२) कृस = दुबला। "कृसतन राम वियोग" = राम के वियोग में दुर्बल। राम के वियोग का शरीर दुर्बल हो गया। भरतजी नंगे पैरों, नंगे सिर, भाई के साथ सब माताओं को लेकर प्रजा के लोगों के सहित राम के प्रेम में विभोर चित्रकूट की ओर जा रहे हैं।

तमसा तीर निवास करि, प्रात समाज समेत।
सुरसरि देखी जाइ तब, केवट कहत सचेत॥
केवट कहत सचेत भरत सैना सँग लीन्हे।
* समुझि निषाद विचार कपट अन्तर महँ दीन्हे॥
अंतर कपट विचारि कै, सजग होउ सब घाट धरि।
राम जानि बन भरत सजि, तमसा तीर निवास करि॥१०३॥

† राम काज जूझहु सकल, भरत राम को भाय।
मैं सेवक रघुवीर को, लोहे देहुँ अघाय॥
लोहे देहु अघाय सुभट बिन कटक निहारौ।
हय गय रथ जल बोरि पाउँ पीछे जनि धारौ॥
‡ पाउँ न पीछे कोउ धरहु, राम काज अरु गंग तट।
मोर निहोर विचारि कै, स्वामिकाज जूझहु सुभट॥१०४॥

---

* "है कछु कपट भाव मन माहीं।" (रा० च० मा०, अ० का०)

(१०३) अन्तर = हृदय। सजग = तैयार। तमसा नदी के किनारे रात बिताकर सबेरा होते ही सारे समाज के साथ भरतजी ने आकर गंगाजी के दर्शन किये। उन्हें देखकर केवट भरतजी पर संदेह करने लगा कि ये अपने साथ सेना क्यों लाये हैं, फिर निषाद ने यह विचार किया कि भरत राम के साथ वन में कपट करने जा रहे हैं। इसलिए सब केवट भरत का सामना करने के लिए गंगाजी के घाट पर तैयार हो जायँ।

† "भरत भाय नृप मैं जन नीचू।"

‡ "जीवत पाउँ न पाछे धरहीं।" (रा० च० मा०, अ० का०)
" समर मरन अरु सुरसरि तीरा। रामकाज क्षणभंगु शरीरा" ॥

(१०४) जूझहु = प्राण दो, लड़ो। लोहे = मोरचा। अघाय = जी भरकर। कटक = सेना। निहोर = लिहाज़। सब लोग रामचन्द्रजी के काम के लिए लड़ मरो। भरत राम के भाई हैं तो क्या हुआ। मैं भी राम का सेवक हूँ। जी भरकर भरत पर वार करूँगा। हाथी, घोड़े, रथ आदि पानी में डुबाकर भरत को सेना-विहीन कर दूँगा। कोई लड़ाई में पैर पीछे न हटावे। एक तो रामचन्द्रजी का काम, दूसरे गंगाजी का किनारा है और मेरा अनुरोध भी है इसलिए हे वीरो, स्वामी के काम के लिए भरत से लड़ जाओ।

* पहिरत अँगुरी धनु धरत, भई छींक गति बाम।
सगुन सगुनियाँ कहि चल्यौ, सगुन सुमंगल धाम॥
सगुन सुमंगल धाम भरत नहिं कपट कुचाली।
† राम मनावन जाहिं संगु लै मातु सुचाली॥
संग मातु गुर सचिव पुर लोग राम सोचन जरत।
सहसा कर्म न कीजियै, पहिरत अँगुरी धनु धरत॥१०५॥

समुझि भेट नृप लै चलेउ, खग मृग धन पट मीन।
मिलन साज सँग लै चल्यौ, पुरजन परम प्रवीन॥
पुरजन परम प्रवीन मिल्यौ मुनिवर कहँ आगे।
‡ राम-सखा सुनि भरत चले मिलने रथ त्यागे॥
रथ त्यागे केवट कहेउ, नाम जाति पुर अनभले।
भरत चल्यौ उमगत नयन, समुझि भेटि जनु प्रभु मिले॥१०६॥

---

* "इतना कहत छीक भइ बायें। कहेउ सगुनियन खेत सुहाये॥" (रा०च० मा०, अ० का०)
"अँगरी पहिरि कुंडि सिर धरहीं।" (रा० च० मा०, अ० का०)

† "रामहिं भरत मनावन जाहीं।" (" ")

(१०५) अँगुरी = अंगुलित्राण, कवच। गति = दिशा। सचिव = मंत्री। जब केवट लोग अंगुलित्राण पहन रहे थे और धनुष धारण कर रहे थे तो बाईं ओर से छींक हुई। उस समय सगुन विचारनेवाला कहने लगा कि बड़ा मंगल-सूचक शकुन है। मालूम होता है कि भरतजी रामचन्द्रजी को मनाने जा रहे हैं, न कि कोई कपट का काम करने। इसी से साथ में सब माताएँ, गुरु वशिष्ठ, मंत्री, अयोध्या के लोग हैं जो राम के वियोग में व्याकुल हैं। इसलिए कोई काम बिना बिचारे एकदम न करना चाहिए।

‡ "राम सखा सुनि स्यन्दन त्यागा। चले उतरि उमगत अनुरागा॥"
(रा० च० मा०, अ० का०)

(१०६) मीन = मछली। प्रवीन = चतुर। मुनिवर = वशिष्ठ। यह समझकर कि भरतजी रामचन्द्रजी से मिलने जा रहे हैं, निषाद अनेक वस्तुएँ भेंट करके भरतजी से मिले। भरतजी को निषाद से मिलकर इतनी प्रसन्नता हुई जैसे रामचन्द्रजी स्वयं मिल गये हों। इस छन्द में 'अनुप्रास' और 'उत्प्रेक्षा' अलङ्कार हैं।

कुसल भरत पूछी सबै केवट विनती कीनि ।
* अब पग रज लखि सब कुसल, प्रभु दरसन जब दीनि ॥
प्रभु दरसन के लहत सकल दुख दूरि पराने ।
चलिय आपने पुरहिं राम जस सेवक जाने ॥
सेवक कहेउ पुकारि मैं, मातनि लखि सादर तबै ।
† दै असीस जनु लखन सम, हेत कुसल पूछी सबै ॥१०७॥

‡ सब सुपास सबको भयौ, सुरसरि भरत अन्हाय ।
राम-सखा सेवा करी, सबको वास दिवाय ॥
सबको वास दिवाइ रैनि सब तहाँ गँवाई ।
§ एकहि खेवा पार किये केवट अतुराई ॥
अतुराई सब सैन जुत, चले प्राग मारग लयौ ।
राम दरस लालस हृदय, सब सुपास सबको भयौ ॥१०८॥

---

* "कुसल मूल पद पंकज पेखी ।" (रा० च० मा०, अ० का०)
† "जानि लखन सम देहिं असीसा ।" (" ")

(१०७) लखि = मिलकर, देखकर । पराने = भाग गये । भरतजी के कुशल-प्रश्न पूछने पर निषाद ने कहा कि आपके दर्शन पाकर सब दुःख भाग गये, अतः कुशल ही कुशल है । फिर केवट ने भरत से शृंगवेरपुर चलने को कहा । निषाद के आदर करने पर माताओं ने उसे लक्ष्मण के समान समझ आशीष दी । इस छन्द में 'उत्प्रेक्षा' अलङ्कार है ।

‡ "भा सब भाँति सुपास ।" (रा० प्र०, सर्ग २ दो० ३७)
§ "प्रात पार भय एकहि खेवा ।" (रा० च० मा०, अ० का०)

(१०८) गँवाई = बिताई । अतुराई = शीघ्र । सुपास = सुविधा । वहाँ सबको हर प्रकार का सुपास मिला । भरतजी ने गंगाजी में स्नान किया, फिर निषाद ने सबके रहने का प्रबन्ध करके भरतजी की ख़ूब सेवा की । रात भर सब लोग वहाँ रहे, फिर एक ही खेवे में केवट ने सबको पार उतार दिया । तब रामचन्द्रजी के दर्शनों की लालसा लेकर सब प्रयागराज की ओर चले ।

न्हाय प्रयाग प्रनाम करि, दान दीन सुख पाय।
भरद्वाज आश्रम गये, मिले पूजि बैठाय॥
* मिले पूजि बैठाइ कहेउ हम सब सुधि पाई।
कस न करहु यह भरत प्रान सम प्रिय रघुराई॥
प्रान समान सनेह पद, तजि गलानि जनि हृदय धरि।
निसि रिषि कीन्ह सुपास सब, प्रात नहाय प्रनाम करि॥१०९॥

राम नाम रसना ललित, ध्यान राम सिय रूप।
स्रवन कथा रघुपति-चरित, हृदय चरित्र अनूप॥
† हृदय चरित्र अनूप परत मग पग पग डोलै।
सिथिल सनेह गँभीर रामसिय मुख भरि बोलैं॥
मुख भरि बोलैं राम सिय, पंथ अपंथहु निश्चलित।
बरसत सुर जै जै कहत, राम नाम रसना ललित॥११०॥

---

* "सुनहु भरत हम सब सुधि पाई।" (रा० च० मा०, अ० का०)
"सुधि मैं हूँ लही है।" (विनयपत्रिका)

(१०६) सुधि = समाचार। निसि = रात्रि। त्रिवेणी में स्नान करके प्रयागराज को प्रणाम किया और सुख-पूर्वक दान देकर भरद्वाज जी के स्थान को (भरतजी) गये। ऋषि ने भरतजी के प्रेम की प्रशंसा की और रात में सबको आराम दिया। सबेरा होते ही भरतजी ऋषि को प्रणाम करके वहाँ से चल दिये।

इस छन्द में 'रघुराई' की उपमा प्राण से दी गई है, अतएव उपमा अलङ्कार है।

† "सिथिल अंग पग मग डग डोलैं।" (रा० च० मा०, अ० का०)

(११०) रसना = जिह्वा। ललित = सुन्दर। स्रवन = कान। भरतजी रामनाम जपते जाते थे और मन में भी सीताराम का ही ध्यान था। कानों से राम का गुणानुवाद सुनते थे और हृदय राम के अद्वितीय चरित्र में ऐसा मग्न था कि राह में पैर डँगमगाते थे, प्रेम-शिथिल होकर गंभीरता-पूर्वक मुँह भरकर 'सीता राम' कह उठते थे और जहाँ रास्ता न होता था वहाँ भी चले जाते थे। उनकी यह विह्वलता देखकर देवता आकाश से जय जयकार करके फूल बरसाते जाते थे।

तृतीय पंक्ति में 'ग' की आवृत्ति के कारण वृत्ति अनुप्रास है।

* सुन्दर वन गिरिगन मुदित, मृग विहंग कपि भालु ।
† प्रमुदित प्रजा समाज सब, राजा सुखद सुकाल ॥
राजा सुखद सुकाल सकल तरु फल सुखदायक ।
सुधा सरिस सरि वारि कर्म अघ औगुन घायक ॥
औगुन छल दल दपट दुर, कपट दुरद केहरि विदित ।
केवट भरत बुझाइयौ, सुन्दर वन गिरिगन मुदित ॥१११॥

नाथ विटप वट तेहिं तरे, कीनि छावनी राम ।
‡ सिया बनाई वेदिका, निज कर ललित ललाम ॥
निज कर ललित ललाम राम सुभ आस्रम नीको ।
मुनिगन कहत पुरान सुनत दिनकर कुल टीको ॥
दिनकर कुल मंडन मही, दुख खंडन कहि जै हरे ।
राम सिया लछिमन लखौ, नाथ विटप वट तेहिं तरे ॥११२॥

---

* "चहुँ दिसि बन सम्पन्न विहँग मृग बोलत सोभा पावत" ॥ (गीतावली, अ० ५०)

† "समउ सुहावन सगुन सुभ राजा प्रजा प्रसंग" ॥ (रा० प्र०, सर्ग २, दो० ३८)

(१११) इस स्थल पर चित्रकूट की रमणीकता का बड़ा मनोहर वर्णन किया गया है। मुदित = प्रसन्न, शोभायुक्त । मृग = पशु । विहंग = पक्षी । सुधा = अमृत । घायक = नष्ट करनेवाला । केवट ने भरत को मार्ग में सुन्दर वन और पर्वत दिखाये जहाँ जड़ और चेतन सब सदा सुखी रहते हैं, तथा जहाँ की नदी का जल सब प्रकार के पापों को नष्ट कर देता है। इस छन्द में 'रूपक' तथा 'उपमा' अलङ्कार हैं।

‡ "बट छाया बेदिका सुहाई। सिय निज पानि सरोज बनाई" ॥ (रा० च० मा०, अ० का०)

(११२) विटप = वृक्ष । वट = बरगद । छावनी = डेरा । ललाम = सुन्दर । दिनकर = सूर्य । मंडन मही = पृथ्वी की रक्षा करनेवाले । केवट ने भरतजी को दूर से दिखाया कि उस बरगद के पेड़ के नीचे रामचन्द्रजी रहते हैं। वहाँ सीताजी ने अपने हाथ से बड़ी सुन्दर वेदी बनाई है, जहाँ मुनि लोग पुराणों की कथाएँ कहते हैं और पृथ्वी की रक्षा करनेवाले तथा दुःखों का नाश करनेवाले सूर्य-वंश के तिलक श्री रामचन्द्रजी शंकरजी की जय कहकर कथाएँ सुना करते हैं। देखो राम, लक्ष्मण और सीता वहाँ बैठे हैं।

जाय भरत पायन परे, त्राहि त्राहि भगवंत।
असरनसरन प्रताप जग, आदि मध्य नहिं अंत ॥
* आदि मध्य नहिं अन्त प्रनत जन रक्षक स्वामी।
सील सुभाव विचारि सरन पद रज अनुगामी ॥
अनुगामी सिसु औगुनी, धाइ आन प्रभु पग धरे।
त्राहि त्राहि रक्षक प्रभो जाय भरत पायन परे ॥११३॥

† भरत प्रेम रघुबर सिथिल, उठे सरीर बिसारि।
धनुष तीर पट सिर मुकुट, जटा दये छिटकारि ॥
जटा दये छिटकारि नैन उमगे जल-धारा।
दुहुँ कर लिये उठाइ मगन नहिं देह सम्हारा ॥
देह सम्हार विचार तज, भाय लाय उर मैं विकल।
देखि दसा सुरगन त्रसित, भरत प्रेम रघुबर सिथल ॥११४॥

---

* "नहिं तव आदि मध्य अवसाना"। (रा० च० मा०, बा० का०)

(११३) त्राहि = रक्षा करो। प्रनत = शरण में आया हुआ। सिसु = बच्चा। भरतजी यह कहते हुए जाकर रामचन्द्रजी के चरणों में गिर पड़े कि मेरी रक्षा करो। तुम्हारा आदि, मध्य और अवसान नहीं है। तुम्हारा यह प्रताप संसार में विख्यात है कि जिसे कहीं शरण न मिले उसे शरण देनेवाले हो और विनम्र भक्तों की रक्षा करते हो। मैं आपका एक छोटा सा दुर्गुणी अनुगामी हूँ और आपके सुशील स्वभाव का विचार करके आपके चरणों की धूलि की वन्दना करता हूँ।

† "उठे राम सुनि प्रेम अधीरा। कहुँ पट कहुँ निषंग धनु तीरा॥" (रा०च०मा०,अ०का०)
"तुलसिदास दशा देखि भरत की उठि धाये अतिहि अधीर"॥ (गीतावली, अ० ६९)

(११४) सिथिल = विह्वल। उर = हृदय। त्रसित = भयभीत, दुःखित। भरतजी का प्रेम देखकर रामचन्द्रजी विह्वल होकर उठे और शरीर की दशा तथा धनुष-बाण, वस्त्र और मुकुट सबको भूल गये। जटाएँ छिटकार दीं और आँखों में प्रेमाश्रु भरकर दोनों हाथों से व्याकुल भाई को उठाकर हृदय से लगा लिया और अपनी सुधि-बुधि भूल गये। यह हाल देखकर देवता लोग बहुत डरे कि रामचन्द्रजी भरत के साथ कहीं अयोध्या न लौट जायँ।

* छोड़ि न भावत सिथिल दोउ, भाय प्रेम परिपूरि।
मन बुधि चित हित लाइकै, करि कुतर्क सब दूरि॥
करि कुतर्क सब दूरि राम पुनि केवट भेंटे।
लखन भरत पुनि मिले सत्रुघन दुख सब मेटे॥
मेटि दुसह दुख दाह उर, भरत सीस पद धरे दोउ।
सकल सभा मुनि मन मगन, छाँड़ि न भावत सिथिल दोउ॥११५॥

केवट गुर आगमन कह, राम उठे सब संग।
धरे जाय मुनिपद कमल, भेंटे मुनि धरि अंग॥
भेंटे मुनि धरि अंग चले आस्रमहिं लिवाई।
† मातनि भेंटे आइ मनहु सिसु धेनु तुराई॥
धेनु तुराई गति मिली सिय सासुनि के चरन गहि।
रोवत करत विलाप करि, केवट गुर नृप मरन कहि॥११६॥

---

* "परम प्रेम पूरन दोउ भाई। मन बुधि चित अहमिति बिसराई"॥ (रा०च०म०,अ०का०)

(११५) कुतर्क=सन्देह। दाह=टीस, कसक, जलन। राम और भरत दोनों प्रेम में इतने तन्मय हैं कि छोड़ना अच्छा नहीं लगता। फिर राम केवट से तथा शत्रुघ्न से मिले। लक्ष्मणजी भी दोनों भाइयों से मिले। सभा के सब लोग और मुनि प्रसन्न हुए। पाँचवीं तथा छठीं पंक्ति में 'द' और 'म' की आवृत्ति के कारण 'वृत्ति' अनुप्रास है।

† "सुमिरि बच्छ जिमि धेनु लवाई"। (रा० च० मा०, अ० का०)

(११६) आगमन=आना। भेंटे=मिले। धरि अंग=चिपटाकर। केवट ने गुरु के आने का हाल सुनाया तो राम सबके साथ गुरुजी के पास आये और उनके चरणों की वन्दना की। मुनि ने उन्हें हृदय से लगा लिया तब राम गुरु को अपने आश्रम में लिवा लाये। जब राम माताओं से मिले तो वही दशा हुई जैसी गऊ के आतुर होकर अपने बछड़े से मिलने से होती है। सीताजी ने सब माताओं के चरण छुए, फिर केवट और गुरु ने विलाप करके राजा दशरथ की मृत्यु का हाल बताया। इस छन्द में 'रूपक' और 'उत्प्रेक्षा' अलङ्कार है।

* भये सुद्ध मुनि बचन कहि, भरत राम सब भाइ।
सब समाज करुना हरष, मात सचिव रिषि राइ॥
मात सचिव रिषि राय भरत विनती उठि कीन्ही।
श्री रघुवर सरबज्ञ सकल गति मति रति चीन्ही॥
मति गति चीन्हि सनेह सब, समुझि करिय सोइ आजु लहि।
† चलिय अवध नृपता करिय, भये सुद्ध मुनि वचन कहि ॥११७॥

आयसु नृप वन को दयो, सोई धरि सिर आज।
तुम को पितु पुर को दयौ, पूरन राज समाज॥
‡ पूरन राज समाज हमहु तुम आयसु कीजै।
पालिय पितु के बैन जनम अभिमत फल लीजै॥
अभिमत फल जिन जग लहेउ पितु आयसु जिन सिर लयो।
बचन न खंडित सो करौ आयसु नृप वन को दयो ॥११८॥

---

* "सुद्ध भये दुइ बासर बीते"। (रा० च० मा०, अ० का०)

† "यह बिचारि गवनहु पुनीत पुर। हरहु दुसह आरति परिजन की"॥ (गी० अ० ७१)

(११७) करुना (करुणा)=शोक। हरष=प्रसन्नता। सचिव=मंत्री। सरबज्ञ=सब कुछ जाननेवाले। ऋषि जब पूरी बात कह चुके तो सब भाई शुद्ध हुए। सब माताएँ, ऋषि, मंत्री तथा सारा समाज दुःख और आनन्द का अनुभव कर रहा था। तब भरतजी ने उठकर विनय की कि श्री रामचन्द्रजी आप सर्वज्ञ हैं और सबके कर्म, बुद्धि और प्रेम को पहचानते हैं अतः जो आप समझकर कहें वही हमें मान्य है। गुरु ने कहा कि अयोध्या चलकर राज्य करो।

‡ "पितु आयसु पालिय दोउ भाई"। (रा० च० मा०, अ० का०)

(११८) आयसु=आज्ञा। अभिमत=वाञ्छित। हमें राजा ने वनवास की आज्ञा दी है। आज हम उसे सिर पर रक्खे हुए हैं। तुम्हें पिताजी ने अयोध्या का पूरा राज्य दिया है। हम दोनों को चाहिए कि उनका कहना मानें, क्योंकि पिता के वचन का पालन करने से जन्म का मनमाना फल मिलता है, इसलिए हमें उनकी बात टालनी न चाहिए।

जो स्रुति कहै सु सत्य है, भरत कहत कर जोरि।
* पितु आयसु सिर राखियै, पर्म धर्म सत कोरि॥
पर्म धर्म सत कोरि तदपि पितु त्रिय बसि होई।
सन्यपात अति वात वारुनी सेवत सोई॥
सेवत सोई रोग-वस, वचन कुजोग अपत्य है।
समुझि नाथ कीजिय उचित, जो स्रुति कहै सु सत्य है॥११९॥

† प्रभु रुख लखि मन प्रन कियो, गये गंग के तीर।
जल उठाय संकल्प करि, जो न चलैं रघुवीर॥
जो न चलैं रघुवीर देह तृन सम तजि डारौं।
तन मन अर्पित देखि गंग त्रिय वेष सुधारौं॥
वेष सुधारिय एक मुख, ढिग उपदेस सुधा दियौ।
सुनि विवेक रामानुजें, प्रभु रुख लखि प्रन मन कियौ॥१२०॥

---

* "पितु आयसु सब धरम का टीका"। (रा० च० मा०, अ० का०)

(११६) स्रुति (श्रुति)=वेद। त्रिय=स्त्री। कुजोग=असङ्गत। अपत्य=हानिकर, आपत्तिजनक। भरतजी हाथ जोड़कर बोले कि वेद के वचन ठीक हैं। पिता की आज्ञा मानन सैकड़ों धर्मों से बड़ा धर्म है, परन्तु पिता यदि स्त्री के वश में हो, उसे सन्निपात हो गया हो, बाई का वेग हो, शराब पिये हो या बीमार हो तो उसके असङ्गत वचन आपत्तिजनक होते हैं। इसलिए हे स्वामी, आप जो उचित समझें वही करें।

† "प्रभु रुख देखि विनय बहु भाखी"। (रा० च० मा०, अ० का०)

(१२०) रुख=इच्छा। गंग=गंगा, मन्दाकिनी। विवेक=ज्ञान। भगवान् राम का रुख देखकर भरतजी ने गंगाजल लेकर प्रण किया कि श्रीराम लौट न चलेंगे तो मैं प्राण छोड़ दूँगा। यह देखकर गंगाजी ने स्त्री के रूप से भरतजी को अमृत के समान ज्ञान का उपदेश दिया। तृतीय तथा पञ्चम पंक्ति में 'रूपक' अलङ्कार है।

* सत्य सच्चिदानंद हरि, राम सकल सुर ईस।
ताहि न सुत भ्राता गनौ, सर्वोपरि जगदीस ॥
सर्वोपरि जगदीस संभु विधि हरि कारन कर।
† पद पताल सिर गगन लोककर पद गिरि सरवर ॥
गिरि सरवर धर अंग सब, भरन हरन थिति पूरि भरि।
हठ न करौ आयसु धरौ, ब्रह्म सच्चिदानंद हरि ॥१२१॥

सुर पालन खलगन दहन, चले विपिनि सुर काज।
मही देव स्रुति द्विज विकल, मुनिपालन तपसाज ॥
मुनिपालन तपसाज जात दसकंठहि मारैं।
‡ करि प्रमान निज कर्म अवधपुर तिलक सुधारैं ॥
तिलक राज लीला करहिं, मही मोद सुख निर्वहन।
उठहु राम आयसु करौ, सुरपालन खलगन दहन ॥१२२॥

---

* "शुद्ध सच्चिदानन्द मय कन्द भानुकुल केतु"। (रा० च० मा०, अ० का०)

† "पद पाताल सीस अज धामा"। (" " लं० का०)

(१२१) सच्चिदानन्द = (सत् = अस्तित्व + चित् = चैतन्य + आनन्द) आनन्दस्वरूप। हरि = विष्णु। कारनकर = उत्पन्न करनेवाले। श्री रामचन्द्रजी वास्तव में सब देवताओं के स्वामी सच्चिदानन्दस्वरूप साक्षात् विष्णु हैं। उन्हें केवल अपना भाई न समझो। वे तो सबके ऊपर संसार के स्वामी हैं और ब्रह्मा, विष्णु, महेश के भी बनानेवाले हैं। उनके पैर पाताल हैं, आकाश सिर है, सब लोक उनके हाथ हैं। वही सब पर्वतों और जलाशयों को धारण करते हैं। वही अपने सब अंगों को स्थिर रखते हैं, वही भरण-पोषण करते और वही संहार करते हैं, इसलिए उनकी आज्ञा मानो, हठ न करो। यहाँ प्रभु का विराट् रूप दिखाया गया है।

‡ "तात जात जानिए न ये दिन करि प्रमान पितुबानी"। (गीतावली, अ० ७५)

(१२२) विपिन = वन। प्रमान = पूर्ण। इस स्थल पर रामचन्द्रिका से कुछ भाव-साम्य मिलता है। रामचन्द्रजी देवताओं का काम करने, पृथ्वी का भार उतारने, वेद, देवता, ब्राह्मण और मुनियों का पालन करने तथा रावण को मारने के लिए वन को जा रहे हैं। अपना काम पूरा करके अयोध्या का राज्य करेंगे, आनन्द और सुख से पृथ्वी का निर्वाह करेंगे, अतः उनकी आज्ञा मानो।

सुभ आनन सुनिकै भरत, मगन भये सुरबृंद ।
भई अदृष्ट असीस दै, स्रवन सुधा सुभ छंद ॥
* स्रवन सुधा सुभ छंद भरत आनंद सिधाये ।
श्री रघुवर पद कमल प्रेम धरि सीस नवाये ॥
† सीस नाय विनती करी, देहु पादुका सिर धरत ।
करत अटन तीरथ विपिन सुभ आनन सुनि सिख भरत ॥१२३॥

मगन समाज सनेह सों, चित्रकूट वन देखि ।
सुखद राम वर वदन लखि, जीवन सुफल विसेषि ॥
जीवन सुफल विसेषि भरत श्रीराम बुलाये ।
बिदा हेत गुर वचन कहे सब कहँ समझाये ॥
‡ सब प्रबोधि भेटे मिले, चले समाज सुगेह को ।
§ अवधि आस पुर वास करि, मगन समाज सनेह को ॥१२४॥

---

* "श्रवन सुधा सब बचन सुनि पुलक प्रफुल्लित गात" । (रा० च० मा०, बा०)

† "यों कहि बार बार पाँयनि परि पाँवरि पुलकि लई है" । (गी०, अ० ७८)

"सुनि सिख आसिष पाँवरी पाइ नाइ पद माथ" । (रामाज्ञाप्रश्न, सर्ग २)

(१२३) अदृष्ट=अन्तर्धान । अटन=भ्रमण । गंगाजी के मुख से अमृत से मधुर वचन सुनकर भरतजी वहाँ से चले आये । देवताओं को भी बड़ा आनन्द हुआ । भरतजी ने रामचन्द्रजी को प्रेम-पूर्वक प्रणाम किया और उनकी खड़ाऊँ माँग लीं, फिर उस तीर्थ के वन का परिभ्रमण किया । 'पद कमल' में 'रूपक' अलङ्कार है ।

‡ "तुलसिदास अनुजहि प्रबोधि प्रभु चरन पीठ निज दीन्हें" । (गी०, अ०, ७५)

§ "तजि तजि भूषन भोग सुख जियत अवधि की आस" ॥ (रा० च० मा०, अ० का०)

(१२४) वदन=मुख । प्रबोधि=समझाकर । चित्रकूट के वन को देखकर सारा समाज प्रेम में मग्न हो गया और श्रीराम के मुखारविन्द को देखकर तो उनका जीवन विशेष रूप से सफल हो गया । तब श्रीराम ने भरत को बुलाया और गुरु से बिदा के लिए वचन कहे, फिर सब को समझाकर हृदय से लगाया । राम-वनवास की अवधि समाप्त होने की आशा लेकर सारा समाज प्रसन्नता-पूर्वक अयोध्या को लौट गया ।

राम भरत के प्रेम को, को कहि बरनत पार।
नेम क्रिया दृढ़ धर्म व्रत, कर्म पर्म आचार॥
* कर्म पर्म आचार वरनि सहसानन हारे।
† मति जड़ बरनहि काह मसक नभ अंत विचारे॥
‡ मसक अंत किमि पावई, गगन उड़ै करि नेम को।
तुलसिदास सठ क्यों कहै, राम भरत के प्रेम को॥१२५॥

बसे अवध पुर लोग सब, भरत बसे पुर त्यागि।
§ नन्दिग्राम खनि अवनि थल, व्रत मुनि निसि दिन जागि॥
|| निसि दिन मुनिव्रत साधि पादुका नृप करि सेवै।
राज काज सुभ साज करत पूजत द्विज देवै॥
देव मनावत अवधिहित, राम समागम होइ कब।
तुलसिदास मुनिव्रत धरे, बसे अवध पुर लोग सब॥१२६॥

---

* "तुलसिदास सठ क्योंकरि बरनै यह छवि निगम नेति कहि गाई"। (गीतावली, १०६)

† "भरत राम कर प्रेम जस तस कहि सकइ न सेस"। (रा० च० मा०, अ० का०)

‡ "जिमि निज बल अनुरूप ते मसक उड़ाहि अकास"। (रा० च० मा०, लं०)

(१२५) पार=थाह, अन्त। सहसानन=शेषनाग। गोस्वामीजी ने जहाँ भी 'सठ' शब्द का प्रयोग अपने लिए किया है, वहाँ अपना पूरा नाम 'तुलसीदास' दिया है, आधा नाम 'तुलसी' नहीं। यहाँ राम और भरत का प्रेम वर्णनातीत है। इस छन्द में 'परिकर' तथा 'दृष्टान्त' अलङ्कार है।

§ "नन्दि ग्राम खनि अवनि डासि कुस परन कुटी करि छाये"। (गी० अ०, ७६)
"नन्दिग्राम करि परन कुटीरा"। (रा० च० मा०, अ० का०)

|| "नित पूजत प्रभु पाँवरी प्रीति न हृदय समाति"। " "

(१२६) अवनि = पृथ्वी। समागम = मिलाप। सब लोग तो लौटकर अयोध्या में रहे, पर भरतजी नंदिग्राम में पृथ्वी खोदकर एक गुफा में रात-दिन मुनियों का सा व्रत धारण करके रहे। वह श्री राम की खड़ाउओं को राजा समझकर पूजते थे और देवताओं तथा ब्राह्मणों की पूजा करके राज-काज सँभालते थे और देवताओं से सदा यह मनाया करते थे कि कब श्री रामचन्द्रजी के दर्शन हों।

अरण्य काण्ड

* फटिक सिला सुन्दर सुखद बैठे सिय रघुबीर।
सुमन लषन आनहिं सुभग, सुरभित सुमुख सरीर॥
सुरभित सुमुख सरीर राम सिय भूषन साजे।
† अंग अंग प्रति रुचिर काम रति लखि छबि लाजे॥
लखि लाजे रति काम तन, इंद्र सुवन भरमे दुखद।
परब्रह्म श्रीराम सिय फटिक सिला सुन्दर सुखद॥१॥

समुझि मनुज औगुन करयौ, हत्यौ चोंच तन काग।
‡ रुधिर देखि सर सुमन को, कीन्ह क्रोध करि त्याग॥
कीन्ह क्रोध करि त्याग लोक लोकनि भ्रमि आयो।
मति गति विह्वल विकल मोह माया भरमायो॥
मोह अंध नारद लख्यौ, पाइ सीख पायन परयौ।
§ त्राहि त्राहि रक्षा करौ, समुझि मनुज औगुन करयौ॥२॥

---

* "फटिक सिला मन्दाकिनी सिय रघुबीर बिहार"। (रामाज्ञा प्रश्न, सर्ग २, दो० ३७)

† "छबि बिलोकि लाजैं अमित अनङ्ग"। (गी०, अरण्य०, ४)

(१) सुरभित = सुगन्धित। रुचिर = सुन्दर। छबि = शोभा। सुवन = पुत्र। सुख देनेवाली सुंदर स्फटिक की चट्टान पर श्रीराम और सीता बैठे। लक्ष्मणजी चुन-चुनकर अच्छे-अच्छे सुगंधित फूल लाये। राम और सीता को फूलों से सजाया। उनके एक-एक अङ्ग की शोभा देखकर कामदेव और रति लज्जित हो गये। उनकी सुन्दरता देखकर इंद्र के पुत्र जयन्त को भ्रम हो गया। इस छन्द में 'ललितोपमा' अलङ्कार है।

‡ "चला रुधिर रघुनायक जाना। सींक धनुष सायक सन्धाना"॥ (रा० च० मा०, अर०का०)

§ "त्राहि त्राहि दयालु रघुराई"। (रा० च० मा०, अर० का०)

(२) औगुन = अपराध। मति = बुद्धि। गति = दशा, चाल। उन्हें मनुष्य समझकर जयन्त ने यह अपराध किया कि शरीर में चोंच मार दी। खून बहता देखकर श्रीराम ने क्रोध करके फूल का बाण छोड़ा। जयन्त सब लोकों में घूमकर थक गया। उसकी बुद्धि की गति को मोह की माया ने ऐसा घुमाया कि वह व्याकुलता से शिथिल हो गया। नारदजी ने उसे मोह से अंधा देखकर शिक्षा दी, तब वह पैरों पर गिर पड़ा और रामचन्द्रजी के पास जाकर कहने लगा कि मेरी रक्षा करो। मैंने साधारण मनुष्य समझकर अपराध किया था।

* एक आँखि करि प्रभु तजौ कर्म कीन बड़ घोर।
कृपानिधान समान को, प्रन-पालन बरजोर ॥
प्रन-पालन बरजोरि चरित॰ सुर नर मुनि गावैं।
चित्रकूट बस सुखद जानि सब आश्रम आवैं ॥
आश्रम विदित विचारि कै, विपिनि साज सब तन सजो।
अत्रि जहाँ आश्रम गये, चित्रकूट प्रभु थल तजो ॥३॥

ऋषि अनंद भेंटत भये, देखि लखन सियराम।
आसन बैठारे मुदित, पूजे अभिमत काम ॥
पूजे अभिमत काम जानुकी लीन बोलाई।
† अनसुइया पट दीनि नित्य नूतन सुखदाई ॥
सुखदायनि उपदेस दै, पतिव्रत धर्मनि सब दये।
आदर अस्तुति मुनि करी, रिषि अनन्द भेंटत भये ॥४॥

---

* "एक नयन करि तजा भवानी"। (रा॰ च॰ मा॰, अर॰ का॰)

(३) घोर=कठोर। बरजोर=दृढ़। विदित=विख्यात। थल=स्थान। जयन्त ने बहुत बड़ा अपराध किया था, पर रामचन्द्रजी ने एक आँख हरकर उसे छोड़ दिया। प्रण पालने में दयासागर के समान कोई दृढ़ नहीं है। उनका गुणानुवाद देवता, ऋषि और मनुष्य सभी करते हैं। चित्रकूट में जब सब आने लगे तो राम वहाँ से अत्रि मुनि के आश्रम को चले गये। यहाँ 'कृपानिधान' का साभिप्राय प्रयोग है, अतएव 'परिकर' अलङ्कार है।

† "दिये अत्रि-तिय जानकिहि बसन विभूषन भूरि"। (रा॰ प्र॰, सर्ग २, दो॰ ३६)

(४) मुदित=प्रसन्न। पट=वस्त्र। नूतन=नवीन। श्रीराम, लक्ष्मण और सीता को देखकर अत्रि मुनि ने उनसे भेंट की और आसन दिया। ऋषि बहुत प्रसन्न हुए, क्योंकि उनके मन की कामना पूरी हो गई। अनसूयाजी ने सीताजी को बुलाकर सदा नये रहनेवाले सुखदायी वस्त्र दिये और पातिव्रत धर्म का सुखद उपदेश दिया। ऋषि ने प्रसन्न होकर स्तुति की और सब प्रकार से सबका आदर किया।

बिदा अत्रि सों प्रभु भये, सिया लखन रघुराइ।
चले विपिन आगे मुदित, महामुदित मन पाइ ॥
महामुदित मन पाइ सकल मुनि भये सुखारी।
* निर्भय जप तप करहिं जोग मख होम विचारी ॥
होम विचारि सम्हारि हरि, आसिष आदर सो दयो।
† मङ्गलमय कानन भयौ बिदा अत्रि सों प्रभु भयो ॥५॥

‡ वधि विराध मग सुख भये, देख जाइ सरभंग।
परिपूरन लखि राम छबि, प्रेम प्रफुल्लित अंग ॥
प्रेम प्रफुल्लित अंग जोरि कर विनय बढ़ाई।
करि निहोर रचि चिता अगिनि चढ़ि दीनि लगाई ॥
दीन अंग तन अर्पिकै राम लखन सिय उर लये।
गयो धाम श्रीराम लखि, वधि विराध मग सुख भये ॥६॥

---

* "निर्भय मुनि जप तप करहिं, पालक राम कृपाल" !! (रा० प्र०, सर्ग २, दो० ४६)

† "मङ्गल रूप भयो वन तब ते" । (रा० च० मा०, कि० का०)

(५) मुदित = प्रसन्न । निर्भय = निडर । मख = यज्ञ । कानन = जङ्गल । लक्ष्मण और सीता के साथ रामचन्द्रजी अत्रि मुनि से बिदा होकर प्रसन्नता-पूर्वक आगे बढ़े । सब मुनि श्री राम को अत्यन्त प्रसन्न देखकर बहुत सुखी हुए । सब निडर होकर जप, तप, योग, यज्ञ और हवन करने लगे और भगवान् को पाकर उनका आदर किया और उन्हें आशीर्वाद दिया । उस समय सारा वन सबका कल्याण करनेवाला हो गया ।

‡ "मिला असुर विराध मग जाता । आवत ही रघुवीर निपाता" ॥
(रा० च० मा०, अर० का०)

(६) मग = मार्ग । अर्पिकै = अर्पण करके, देकर । विराध को मारकर रास्ते को सुखद बना दिया, फिर शरभङ्ग ऋषि के आश्रम को गये । शरभङ्ग ने प्रेम में विभोर होकर राम की शोभा की पूरी झाँकी की और हाथ जोड़कर राम की प्रशंसा और विनती की, फिर प्रणाम करके चिता में बैठ गये और आग लगा दी । शरीर के सब अङ्ग अर्पण कर दिये पर हृदय में राम, लक्ष्मण और सीता को रखकर ऋषि श्रीराम के स्थान अर्थात् स्वर्ग को चले गये ।

मिले सुतीक्षन धाइकै, पुलक नैन जल धार।
जेहिं विधि सिव जोगीस मुनि, ध्यावत हृदि आगार ॥
हृदि मन्दिर ध्यावत सदा, आये ते वन आज हैं।
देखहु नैन सनेह भरि, मूरति सुख रघुराज हैं ॥
अन्तरजामी धार मन, मूरति नेह लगाइ कै।
* राम जगाये प्रेम परि, मिले सुतीक्षन धाइ कै ॥७॥

सङ्ग गयो मग मैं चल्यौ, जात लखत प्रभु रूप।
ऋषि अगस्ति आश्रम गये, हरषि सकल सुरभूप ॥
† हरषि देखि सुर भूप मिले मुनि भाग बखान्यौ।
आसन आदर पूजि वेद प्रतिमति प्रभु जान्यौ ॥
जानि ठानि सुख मानि प्रभु, मधुर वचन बोले भलो।
सुभ अस्थान बताइ ऋषि, सङ्ग गयो मग मैं चल्यो ॥८॥

---

* "मुनिहिं राम बहु भाँति जगावा"। (रा० च० मा०, अर० का०)

(७) ध्यावत = ध्यान करते हैं। हृदि = हृदय। आगार = राशि, घर। ब्रह्मा, महादेव, योगी और मुनि हृदय के मन्दिर में सदा जिनका ध्यान रखते हैं वही राम आज वन में आये हैं, अतः राम के सुखद स्वरूप के दर्शन आँखों में स्नेह भरकर करूँगा, यह कहते हुए मन में अंतर्यामी की मूर्ति से लौ लगाकर बैठ गये। जब राम ने समाधि से जगाया तो नेत्रों से प्रेमाश्रु बहाते हुए सुतीक्ष्ण दौड़कर राम से मिले।

† "मुनि करि बहु प्रकार प्रभु पूजा। मोहि सम भाग्यवंत नहिं दूजा" ॥
(रा० च० मा०, अर० का०)

(८) मग = मार्ग, रास्ता। हरषि = प्रसन्न होकर। सुरभूप = देवताओं के स्वामी, राम। भाग = भाग्य। ठानि = दृढ़ता। जब रामचन्द्रजी प्रसन्न होकर अगस्त्य मुनि के आश्रम को गये, सुतीक्ष्ण भी मार्ग में उनके दर्शन करते हुए साथ में चले गये। अगस्त्य ने राम को देखकर अपने भाग्य की प्रशंसा की, आदर करके उन्हें आसन दिया और भगवान् समझकर उनकी वेद-विहित पूजा की। यह दृढ़ता देखकर राम ने यह मधुर वचन कहे कि हमें रहने के लिए कोई अच्छी जगह बताइए।

सुभ गोदावरि सरितवर, सुन्दर वट सुख धाम।
 * पंचवटी आस्रम करिय, अति पावन श्रीराम॥
अति पावन श्रीराम हरषि मुनिराज बताई।
 सुभ थल तरु मग देखि कुटी मङ्गलमय छाई॥
मङ्गलमय कल्यान थल, राम लखन सिय सुभ चरित।
 कहत ज्ञान वैराग्य जनु सुभ गोदावरि गिरि सरित॥९॥

ज्ञान भक्ति वैराग्य जनु, की विधि त्रिय सुत आपु।
 महादेव गिरिजा गनप, लीन्हे बन कर चाप॥
† लीन्हे कर सर चाप मदन रति ऋतुपति तीनौ।
 परमारथ अरु जोग प्रीति जनु नर तनु कीनौ॥
नर तनु कीन्हौ वीर रस, सांत और सृंगार मनु।
 कमठ सेस सुरधेनु की, ज्ञान भक्ति वैराग्य जनु॥१०॥

---

* "है प्रभु परम मनोहर ठाऊँ। पावन पञ्चवटी तेहि नाऊँ"॥
"वास करहु तहँ रघुकुल राया"। (रा० च० मा०, अर० का०)

(९) सुभ (शुभ) = मनोहर। वट = बरगद। पावन = पवित्र। थल = स्थान। मङ्गल = कल्याण। ऋषि ने कहा कि गोदावरी नदी के किनारे बहुत अच्छे बरगद के वृक्ष हैं, वहीं पवित्र पञ्चवटी में निवास कीजिए। सुन्दर मार्ग और राह के वृक्षों को देखकर मङ्गलमय कुटी बनाई और राम, लक्ष्मण सीता ने अनेक अच्छे कार्य किये। मानो वहाँ पहाड़ी नदी गोदावरी ज्ञान और वैराग्य का उपदेश दे रही थी। इस छन्द में 'उत्प्रेक्षा' अलङ्कार है।

† "जनु मधु मदन मध्य रति लसई"। (रा० च० मा०, अर० का०)
"मानहु रति ऋतुनाथ सहित मुनिवेष बनाये है मैन"। (गी० अ० २४)

(१०) गनप = गणेश। मदन = कामदेव। ऋतुपति = वसन्त। कमठ = कच्छप (जो शेष का वाहन है)। राम, लक्ष्मण और सीता ज्ञान, भक्ति और वैराग्य हैं या स्त्री और पुत्र सहित ब्रह्मा या हाथ में धनुष-बाण लिये शङ्करजी पार्वती और गणेश के साथ वन में घूम रहे हैं या कामदेव, रति और वसन्त हैं या परमार्थ योग और प्रीति मनुष्य के शरीर में घूम रहे हैं अथवा वीर, शान्त और शृङ्गार रस हैं या कमठ, शेष और कामधेनु हैं। इस छन्द में 'उत्प्रेक्षा' और 'सन्देह' अलङ्कार हैं।

मन मोहेउ मुख कहि वचन, सूपनखा लखि राम।
मदन बान उर मैं लगे, सुनहु कुँवर घन स्याम॥
सुनहु कुँवर घन स्याम मोहिं दासी अब कीजै।
हैा कुमारि छवि-धाम भगिनि-रावन गनि लीजै॥
रावन-भगिनी जानि कै रमौ सङ्ग करिकै सदन।
सुख सम्पति सिधि पाइहै मन मोहेउ मुख कहि वचन॥११॥

सत्य कही बानी मृदुल, गजगामिनी विचारि।
लखन कुमारे बिन त्रिया, मेरे सँग यह नारि॥
मेरे सँग सुनि नारि लखन की ओर सिधाई।
* लछिमन कहेउ सक्रोध लाज तोहिं तनक न आई॥
तन मन लाज न तोहिं कछु, करत निलज औरेहि सकुल।
गई राम पहँ क्रोध करि, सत्य कही बानी मृदुल॥१२॥

---

(११) उर = हृदय। सिधि = सिद्धि; आठ हैं—अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व, वशित्व। राम को देखकर सूर्पनखा मोहित होकर बोली कि हे साँवले कुमार, तुम्हें देखकर मैं कामातुर हो गई हूँ अतः अपनी दासी बना लो। मैं रावण की अति सुन्दरी क्वाँरी बहन हूँ। यदि मेरे साथ रहकर रमण करोगे तो सब सुख, संपत्ति और सिद्धियाँ तुम्हें अपने आप मिल जायँगी। 'घन स्याम' में 'उपमा' अलङ्कार है।

* "लछिमन कहा तोहि सो बरई। जो तृन तोरि लाज परिहरई"॥ (रा०च०मा०, अर०का०)

(१२) मृदुल = कोमल। सिधाई = गई। तनक = कुछ भी। राम ने कहा कि हे गजगामिनी, तुम ठीक कहती हो पर मेरे साथ यह स्त्री है, हाँ कुमार लक्ष्मण के साथ स्त्री नहीं है। यह बात सुनकर वह लक्ष्मणजी की ओर गई, तब उन्होंने क्रोध-पूर्वक कहा कि न तुझे शारीरिक लज्जा है न मानसिक; दूसरे को भी सकुल निर्लज बनाना चाहती है। इतना सुनकर सूर्पनखा क्रुद्ध होकर फिर राम के पास गई।

हास्य समुझि धावत भई, राम वचन चित चाहि।
धरे रूप वंकट विकट, सभय सिया मन माहि॥
सभय सिया मन माहिं राम कहि लखन निहारे।
* लछिमन लाघव कान नासिका काट निवारे॥
† काटि निवारे अंग सुभ, असुभ अमंगल दुखमई।
खरदूषन पर गइ विकल, नास समुझि धावत भई॥१३॥

करि प्रबोध सैना सजी खरदूषन मन क्रोध।
राम बुझायो लखन को, सिय गिरि राखिय सोध॥
‡ सिय गिरि राखिय सोधि दनुज-सैना यह आई।
भान जान छपि गये धूरि नभ मंडल छाई॥
§ छाय धूरि नभ मैं रही, दुंदुभि दीरघ अति बजी।
सीतहिं राखौ कन्दरा, करि प्रबोध सैना सजी॥१४॥

---

* "लछिमन अति लाघव तेहि नाक कान बिनु कीन"। (रा० च० मा०, अर० का०)

† "असुभ अमंगल खानि"। (रा० प्र०, सर्ग ३, दो० ८)

(१३) विकट=भयानक। लाघव=शीघ्र ही, सरलता से। परिहास समझकर रामचन्द्रजी के वचन सुनने की इच्छा से बड़ा विकट भयानक रूप रखकर रामचन्द्रजी की ओर दौड़ी। सीताजी मन में सहम गईं। रामचन्द्रजी ने कुछ कहकर लक्ष्मण की ओर देखा तो लक्ष्मण ने बात की बात में उसके नाक-कान काट लिये, तब सूर्पनखा व्याकुल होकर खरदूषण के पास दौड़ती गई।

‡ "लै जानिकिहि जाहु गिरि कन्दर। आवा निसिचर कटक भयंकर"॥

(रा० च० मा०, अर० का०)

§ "धूरि पूरि नभ मण्डल रहा"। (रा० च० मा०, अर० का०)

(१४) सोध=सावधानी से। दनुज=राक्षस। भान (भानु)=सूर्य। दुंदुभि=नगाड़े। खरदूषण ने उसे समझाकर मन में क्रोधित होकर सेना सजाई। राम ने लक्ष्मण से सावधानी से सीता की रक्षा करने को कहा, और कहा कि इतनी धूल आकाश में छा गई है मानों सूर्य छिप गये हों। नगाड़ों का तीव्र शब्द गूँज रहा है, सीताजी को गुफा में छिपा रक्खो। इस छन्द में 'अतिशयोक्ति' अलङ्कार है।

धरहु धाइ बोले वचन, लखि छबि दूत पठाइ।
* नारि अग्र करि मिलहु नृप, कहेउ दूत यह आइ॥
कहेउ दूत यह आय राम तेहिं उत्तर दीन्हो।
† सुनि खरदूषन क्रोध सुभट लै दर्पित कीन्हो॥
दर्पित डारहिं अस्त्र बहु, परस सूल असि सक्ति घन।
मनहु मेघ बरषत अचल, धरहु धाय बोले वचन॥१५॥

‡ राम साज सारंग सर, चले विसिख जनु ब्याल।
§ कटे विकट खल उर चरन, भुज महि गिरहिं कपाल॥
भुज महि गिरहिं कपाल विकल भञ्जहि लखि सायक।
खल दल समय ससोक निरखि खरदूषन धायक॥
धाय क्रोध सायक तजे, रहे पूरि दिसि गगन धर।
सजि पावक सर जारि तम राम साजि सारंग सर॥१६॥

---

* "देहि तुरत निज नारि दुराई"। (रा० च० मा०, अर० का०)
† "सुनि खरदूषन उर अति दहेऊ"। (" ")

(१५) छबि = शोभा। अग्र = आगे। दर्पित = घमण्ड से भरे हुए, उत्तेजित। श्री राम के सौंदर्य को देखकर खरदूषण ने एक दूत भेजा। दूत ने रामचन्द्रजी से कहा कि अपनी स्त्री को आगे करके राजा से मिलो। राम ने उसे ऐसा मुँहतोड़ जवाब दिया कि जिसे सुनकर क्रोधित होकर खरदूषण ने वीरों को उत्तेजित किया। राक्षसों ने अनेक शस्त्रों तथा अस्त्रों का प्रहार किया, जिन्हें राम ने ऐसी दृढ़ता से सहन किया जैसे पर्वत पर पानी की बौछार पड़ रही हो। इस छन्द में 'उत्प्रेक्षा' अलङ्कार है।

‡ "तब चले बान कराल। फुंकरत जनु बहु ब्याल"॥ (रा० च० मा०, अर० का०)
§ "उर सीस भुज कर चरन। जहँ तहँ लगे महि परन" (" ")

(१६) सारङ्ग = धनुष। विसिख = बाण। सायक = बाण। गगन = आकाश। पावक = आग। तम = अन्धकार। राम ने जब धनुष-बाण सँभाला तो साँपों के से कराल बाण चले, राक्षसों के अङ्ग कट-कटकर गिरने लगे। दुष्टों की सेना राम के बाणों को देखकर भागती थी। यह देख खरदूषण ने ऐसे बाण छोड़े कि आकाश में सब ओर अँधेरा छा गया तब राम ने अग्निबाण चलाकर अन्धकार का नाश कर दिया। इस छन्द में 'उत्प्रेक्षा' और 'अतिशयोक्ति' अलङ्कार है।

खल दल वृंद निहारि कै, प्रभु मन कीन विचार।
    * राम रूप कीन्हो कटक, सब लरि मरचौ अपार ॥
सब लरि मरचौ अपार एक एकन धरि मारैं।
    कौतुक लखि सुर मगन राम को चरित निहारैं ॥
चरित निहारि पुकारि सुर, वरष प्रसून सुधारिकै।
    जय जय जय महिभार हर, खल दल मरन निहारिकै ॥१७॥

खरदूषन त्रिसिरा परे, सूपनखा लखि नैन।
    † रोवति रावन की सभा, कहि कहि आरति बैन ॥
‡ कहि कहि आरत बैन देस की सुरति बिसारी।
    सिर अरि-डेरा करचौ खबरि नहिं तोहिं सुरारी ॥
खबरि न तोहि निहारु मोहिं, अंग सकल स्रोनित भरे।
    जुरे जाइ भ्राता समर खरदूषन त्रिसिरा परे ॥१८॥

---

* "देखहिं परस्पर राम करि संग्राम रिपु दल लरि मरयो" ॥ (रा० च० मा०, अर० का०)

(१७) दल = सेना। वृन्द = समूह। कटक = सेना। कौतुक = खेल। रामचन्द्रजी ने विचार करके सब राक्षसों को राम-रूप-मय कर दिया तो सब आपस में ही लड़ मरे। यह आश्चर्य-जनक खेल देखकर देवता लोग प्रसन्न होकर रामचन्द्रजी का चरित्र देखने लगे और यह कहकर फूलों की वर्षा करने लगे कि आप पृथ्वी का भार उतारनेवाले हैं, आपकी जय हो।

† "रोवत रावन की सभा तात, मात हा ! भ्रात"। (रा० प्र०, सर्ग ३, दो० ६)

‡ "देस कोष की सुरति बिसारी।" (रा० च० मा०, अर० का०)

(१८) परे = मारे गये। आरत = दुखी। सुरति = याद, ध्यान। अरि = शत्रु। स्रोनित (शोणित) = रक्त। खरदूषण और त्रिशिरासुर को मरा हुआ देखकर सूर्पनखा रावण की सभा में जाकर दुःखभरे वचन कहने लगी कि हे रावण, तुझे अपने राज्य की परवाह नहीं है। तेरे सिर पर वैरी चढ़ आये हैं और तुझे ख़बर नहीं है; मुझे देख सब अंग ख़ून से सने हैं। दो भाइयों ने मिलकर युद्ध में खरदूषण और त्रिशिरा को मार डाला।

* ताहि संग वर भामिनी, रति रंभा छबि छीन।
रमा भारती विधि-त्रिया, लागहिं सकल मलीन ॥
लागहिं सकल मलीन कोटि ससि सम दुति सोभा।
खग मृग पसु जड़ जीव वाहि लखि विकल न को भा ॥
विकल नारि नर मुनि मगन, तजत जोग जप जामिनी।
दामिनि बरनत दुति कहा, ताहि संग वर भामिनी ॥१९॥

अवनि असुर खंडित करै, प्रबल सत्रु बलबंड।
† देखत बालक काल सम, अति बिसाल भुजदंड ॥
अति बिसाल भुजदंड मदन जनु वेष सँवारे।
मुनि मन भये अनंद विपिन विचरत भय डारे ॥
भय डारे मुनि जप करहिं, खल-दल दलि सुर-दुख हरैं।
भूप कुमार अपार छबि, अवनि असुर खंडित करै ॥२०॥

---

* "रति को जिन रंचक रूप दियो है"। (कवितावली, अ० का० १६)
"रति शत कोटि तासु बलिहारी"। (रा० च० मा०, अर० का०)

(१६) भामिनी=स्त्री। रमा=लक्ष्मी। भारती=सरस्वती। दुति=प्रकाश। जामिनी=रात। दामिनि=बिजली। उनके साथ ऐसी सुन्दर स्त्री है जो रति और रंभा की शोभा भी कम कर देती है। लक्ष्मी, सरस्वती और ब्रह्माणी भी उसके सामने मैली मालूम होती हैं। करोड़ों चन्द्रमाओं के समान उसकी शोभा है। उसे देखकर जड़ और चेतन सभी मग्न हो जाते हैं और योगियों की समाधि छूट जाती है। बिजली का प्रकाश तो उसके सामने कोई चीज़ ही नहीं है। इस छन्द में 'प्रतीप', 'उपमा' और 'अनुप्रास' अलङ्कार हैं।

† "देखत बालक काल समाना"। (रा० च० मा०, अर० का०)

(२०) असुर=राक्षस। मदन=कामदेव। तुम्हारे शत्रु देखने में तो बालक हैं, पर काल के समान बलवान् हैं। उनके बड़े-बड़े हाथ हैं। मालूम होता है राक्षसों का राज्य नष्ट कर देंगे। काम के समान सुन्दर कुमार निडर होकर वन में घूमते फिरते हैं। सब मुनि भी निर्भय होकर जप करते हैं, क्योंकि वे जानते हैं कि ये दुष्टों को मारकर देवताओं का दुःख दूर करेंगे। इस छन्द में 'उपमा' और 'उत्प्रेक्षा' अलङ्कार हैं।

करि प्रबोध रथ चढ़ि चल्यो, रावन मन अनुमानि।
जहँ मारीच स्थान सुभ, मंत्र तंत मन ठानि॥
मंत्र तंत मन ठानि गयो उर आदर कीनो।
मारीचहु मन लख्यो कछू स्वारथ मन दीन्हो॥
* स्वारथ घात विचारि जिमि, अंकुस धनु अहि छल छल्यो।
नवै बिलार विचार छल, करि प्रबोध रथ चढ़ि चल्यो॥२१॥

तात हेतु स्वारथ करै, कथा समस्त सुनाइ।
हरहु बाम नृप तनय की, बैर सकल बुझि जाय॥
† बैर सकल बुझि जाय होय मृग कपट बनाई।
भगिनी लखि दुख मोहिं करहिं बन मोरि सहाई॥
मोरि सहाय सम्हारि कै, निजकुल मंगल मन धरै।
बात जात घातक भयो, तात हेत स्वारथ करै॥२२॥

---

* "जिमि अंकुस धनु उरग बिलाई"। (रा० च० मा०, अर० का०)

(२१) प्रबोध = आश्वासन, समझाना। अनुमानि = विचारकर। अहि = साँप। सूपनखा को समझाने के बाद रथ पर चढ़कर कुछ युक्ति विचारता हुआ मारीच के यहाँ गया और हृदय से लगाकर उसका बड़ा आदर किया। मारीच भी समझ गया कि यह अपने मतलब से आया है, क्योंकि अंकुश, धनुष, साँप और बिल्ली की तरह नीच मनुष्य का झुकना भी भयानक होता है। इस छन्द में 'मालोपमा' अलङ्कार है।

† "होहु कपट मृग तुम छलकारी"। (रा० च० मा०, अर० का०)

(२२) वाम = स्त्री। मंगल = कल्याण। रावण ने पहले पूरी कथा सुनाई, फिर कहा कि राजकुमार की स्त्री हरकर मेरा काम करो तो वैर का बदला निकल आवे। तू छल से हिरन का रूप रख ले। मुझे अपनी बहन का हाल देखकर बहुत दुःख है, सो वन में मेरी सहायता कर और यह भी सोच ले कि इसी में राक्षस-वंश का कल्याण है, नहीं तो बात चली जाने से बहुत हानि हो जायगी।

सुन सुत ताहि न नर गनै, मैं जानत बल ताहि।
* बिन फर सर मोहिं मारियौ, गयौ समुद निरबाहि ॥
गयौ समुद निरबाहि मारि ताड़िका सुबाहै।
भंजेउ सिव कोदंड जनक-कन्यका बिवाहै ॥
जनक समाज नृपाल वह, मान मर्दि भृगुपति हनै।
† ताहि विरोध न कुसल है, सुनु सुत ताहि न नर गनै ॥२३॥

‡ ज्ञान सिखावत मोहिं कह, मैं सुर नर बसि कीनि।
उत्तर देहि न उठि चलै, डर डरात पुर तीनि ॥
डर डरात पुर तीनि समुझि मन देखि विचारी।
§ यहि मारे थल नरक राम कर सुरपद भारी ॥
सुरपद भारी पाइहौं, चल्यो नाइ सिर राम पहँ।
रावन आतुर चढ़ि चल्यो, ज्ञान सिखावत मोहिं कह ॥२४॥

---

* "बिनु फर सर रघुपति मोहिं मारा"। (रा० च० मा०, अर० का०)

† "ताहि विरोध न आइहि पूरा"। (,, ,,)

(२३) नर=मनुष्य। समुद=समुद्र। नृपाल=राजा। मारीच ने कहा हे रावण, उसे मनुष्य न समझ, मैं उसका बल जानता हूँ। मुझे बिना फर का बाण मारा था तो मैं समुद्र के पार जाकर गिरा था। ताड़का और सुबाहु को मारकर उसी ने शिव का धनुष तोड़ा था और जनक की कन्या से विवाह किया था। जनक की सभा में परशुराम (की दूसरे लोक में जाने की गति) को भी मारा था। उससे लड़ने में कुशल नहीं है।

‡ "गुरु जिमि मूढ़ करसि मम बोधा"। (रा० च० मा०, अर० का०)

§ "इत रावन उत राम कर, मीच जानि मारीच"। (रा० प्र०, सर्ग ३, दो० १३)

(२४) थल=स्थान। कर=हाथ। सुरपद=स्वर्ग। रावण ने कहा कि देवता और मनुष्य सबको मैंने वश में किया है। तू मुझी को ज्ञान सिखाता है और उत्तर देता है, उठकर चलता नहीं है। मेरे डर से तीनों लोक डरते हैं। मारीच ने विचार किया कि इसके मारने से नरक जाऊँगा और राम मारेंगे तो स्वर्ग पाऊँगा। अतः मारीच प्रणाम करके चला। रावण भी शीघ्र रथ पर बैठकर चल दिया। इस छन्द में 'छेकानुप्रास' और 'काकु वक्रोक्ति' है।

मायामय छाया करी, सिय आयसु उर मानि।
　　* मृग देख्यो सुचि हेममय, खचित रतन मनि खानि॥
खचित रतन मनि खानि लखत जानुकी सुखारी।
　　† यहि हति सुन्दर छाल करिय प्रभु धनु सर धारी॥
धनु सर धारी मन समुझि, जानत आगम की घरी।
　　चले लखन सिय सौंपिकै, मायामय छाया करी॥२५॥

‡ मारयो मृग दूरी निकरि, राम कठिन सर तानि।
　　§ हा लछिमन प्रथमै कहेउ, पीछे राम बखानि॥
पीछे राम बखानि कहत जानुकी विचारी।
　　कहीं लखन सों बात भाय तव संकट भारी॥
संकट बस सुमिरत तुम्हैं, जाहु तुरत धनु बान धरि।
　　असुर सेन अरिदल ग्रसे, मृग मारयो दूरी निकरि॥२६॥

---

* "कनक रचित मनि देह बनाई"। (रा० च० मा०, अर० का०)

† "मारेहु मंजुल छाला"। (गी०, अर० ३)

(२५) आयसु = आज्ञा। हेम = सोना। आगम = भविष्य। जब रामचन्द्रजी ने सीताजी के हृदय में प्रेरणा की तो उस आंतरिक आज्ञा को मानकर सीताजी ने माया का शरीर बना लिया और (अपना वास्तविक रूप अग्नि के अर्पण कर दिया) अपनी छायामात्र रक्खी। मारीच ने सुवर्ण तथा रत्नों से युक्त मायामृग का रूप रक्खा तो सीताजी ने प्रसन्न होकर कहा कि इसे मारकर सुन्दर मृगछाला बना लीजिए। राम जानते थे जो होनहार था। सीता का कहना मानकर हिरन मारने चले और सीता की माया-रूप छाया लक्ष्मण को सौंप गये। इस छन्द में 'परिकर' अलङ्कार है।

‡ "रघुवर दूरि जाइ मृग मारयो"। (गी०, अर० ६)

§ "लछिमन कर प्रथमहि लै नामा। पीछे सुमेरिसि मन महँ रामा"॥ (रा०च०मा०, अर०का०)

(२६) कठिन = तीक्ष्ण। अरि = शत्रु। दूर जाकर राम ने मृग को कराल बाण मारा। मारीच ने पहले लक्ष्मण को बुलाया, फिर राम कहा। सीता ने यह सुनकर लक्ष्मण से कहा कि तुम्हारे भाई पर आपत्ति आई है सो धनुष-बाण लेकर जल्दी जाओ। मालूम होता है, तुम्हारे भाई को शत्रुओं ने घेर लिया है। इस छन्द में 'भ्रान्ति' अलङ्कार है।

राम न संकट कहुँ परै, काल जुरै रन माहिं।
⊛ सकल सुरासुर लरि मरैं, समर जीतिहैं नाहिं ॥
समर जीतिहैं नाहिं सोच मन माझ निवारौ।
राम दीनता वचन बदन कबहूँ न उचारौ ॥
कबहुँ न संसय आनियै, सत्य बचन मेरे धरै।
† छली वेष निसिचर विपिनि, राम कबहुँ संकट परै ॥२७॥

‡ कहेउ वचन सहि नहिं गयेउ, उठयौ रेख धनु खाँचि।
§ जती वेष दसकंठ सठ, आयौ सिय ढिग जाँचि ॥
आयौ सिय ढिग जाँचि जानुकी ताहि बुलायो।
देन लागि फल मूल दुष्ट तब वचन सुनायो ॥
बचन सुनाइस सुखद कहि, बँधी भीख नहि कहुँ लयौ।
भावीबस सिय रेख तजि, वचन कहेउ नहिं सहि गयौ ॥२८॥

⁕ "सकल सुरासुर जुरहिं जुझारा। रामहिं समर न जीतनि दारा" ॥ (रा०च० मा०, अर०का०)

† "भृकुटि बिलास सृष्टि लय होई। सपनेहुँ संकट परै कि सोई" ॥ („ „)

(२७) समर=युद्ध। निवारौ=दूर करो। बदन=मुख। संसय=सन्देह। राम पर कभी संकट नहीं पड़ सकता, चाहे काल ही उनसे युद्ध क्यों न करे। सब देवता और राक्षस मिलकर भी राम से जीत नहीं सकते। सोच न करो राम, कभी ऐसे दीन वचन नहीं कह सकते। वन में राक्षस छली वेश से धोखा देते फिरते हैं। मेरी बात सच मानो। इस छन्द में 'भ्रान्तापह्नुति' अलङ्कार है।

‡ "मर्म वचन सीता जब बोली। हरि प्रेरित लक्ष्मण मति डोली ॥"
"चहुँदिसि रेखा खींचि अहीसा। बार बार नायउ पद सीसा ॥"
(रा० च० मा०, अर० का०)

§ "आवा निकट जती के वेषा।" (रा० च० मा०, अर० का०)

(२८) ढिग=निकट। लयौ=पाया। भावी=होनहार। सीताजी ने जब ऐसे कटु वचन कहे जो लक्ष्मणजी सह न सके, तो वह सीताजी के चारों ओर धनुष से रेखा खींचकर चले गये। दुष्ट रावण यह देखकर यती के वेष में सीताजी के पास आकर भिक्षा माँगने लगा। सीताजी बुलाकर उसे फल-मूल देने लगीं तो रावण ने कहा कि बँधी भीख मैंने कभी नहीं ली तो भावी के वश होकर सीताजी रेखा के बाहर आ गईं, क्योंकि रावण के वचन सह न सकीं।

रेख त्यागि सिय जब गई, रथ पर लई चढ़ाइ।
* चल्यौ गगन भय ते मगन, इत उत देखत जाइ ॥
इत उत देखत जाय सिया रावन जब जान्यो।
† कहत पुकारि कृपाल नाथ कहुँ दूरि परान्यो ॥
दूरि पराने लखन कह, मोहिं दसानन हरि लई।
परी बिबस दसकंठ के, रेख त्यागि जब सिय गई ॥२९॥

‡ राम राम कहि खग चल्यौ, गीध जटाई देखि।
रोक्यौ रथ रघुवर त्रिया, दससिर हरी बिसेषि ॥
दससिर हरी बिसेषि मारि रथ भूतल डारयौ।
§ सीतहिं लई छुड़ाइ बिकल दससिर महि पारयौ ॥
दससिर पारयौ भूमि तल, छत्र चूर उर थल दल्यौ।
मुकुट अस्त्र सत्रुहिं दपटि, राम राम सुनि खग चल्यौ ॥३०॥

---

* "चला गगन पथ आतुर, भयरथ हाँकि न जाइ" ॥ (रा० च० मा०, अर० का०)

† "बिलपति भूरि बिसूरि दूरि गये मृग सँग परम सनेही" । (गी०, अर० का०, ७)

"भूरि कृपा प्रभु दूरि सनेही" । (रा० च० मा०, अर० का०)

(२९) गगन = आकाश। परान्यौ = चले गये। रेखा लाँघने पर रावण सीता को रथ में बैठाकर आकाशमार्ग से चला, पर डर के मारे इधर-उधर देखता जाता था। जब सीता ने रावण को पहचाना तो पुकारकर कहने लगी कि हे दयालु स्वामी, क्या तुम कहीं दूर चले गये हो ? लक्ष्मण, कहाँ हो ? मुझे रावण हरे लिये जाता है, मैं पराधीन हो गई हूँ।

‡ "तुलसिदास रघुनाथ नाम धुनि अकनि गीध धुकि धायो" ॥ (गी०, अर० का०, ७)

§ "धरि कच विरथ कीन महि गिरा" । (रा० च० मा०, अर० का०)

"विरथ विकल कियो छीनि लीन्हि सिय" । (गी०, अर० का०, ८)

(३०) खग = पक्षी (जटायु)। भूतल = पृथ्वी। अस्त्र = जो फेंककर मारा जाय, जैसे बाण। गीध जटायु ने जब यह देखा कि रावण रामचन्द्रजी की पत्नी को हरे लिये जाता है, तो वह राम-राम कहता हुआ गया और रथ रोककर रावण को घायल करके पृथ्वी पर गिरा दिया तथा सीता को छीन लाया और उसका छत्र तोड़कर हृदय विदीर्ण कर दिया। उसने शत्रु को डपटकर उसके मुकुट और अस्त्र भी तोड़ डाले।

अति रिस रावन रन उच्यौ, तीछन काढ़ि कृपान।
* दल्यो पक्ष महि खग गिरयो, कहि मुख कृपानिधान ॥
कहि मुख कृपानिधान साजि सिंदन सिय लीन्ही।
लै नभ पथ फिरि चल्यौ गीध बिहवल गति कीन्ही ॥
बिहवल गति कपि सिय लखे, नूपुर दै कपि कर रुच्यौ।
तरु असोक तर राखि कै, अति रिस रावन फिरि उच्यौ ॥३१॥

लखन बात नीकी नहीं, बन सिय आये त्यागि।
† असगुन मम मन होत अति, सिय बिन उर बिरहागि ॥
सिय बिन उर बिरहागि लखन पद गहि समुझाये।
सोचत आश्रम देखि नयन उमड़े जल छाये ॥
उमड़े जल छाये बिकल, खोजत गिरि बन सर मही।
रुधिर धनुष आगे परयौ, लखन बात नीकी नहीं ॥३२॥

---

* "काटेसि पङ्ख परा खग धरनी। सुमिरि राम की अद्भुत करनी" ॥
(रा० च० मा०, अर० का०)

"तब असि काढ़ि काटि पर पाँवर लै प्रभु प्रिया परानो" ॥ (गी० अर० का०)

(३१) तीछन (तीक्ष्ण)=तेज। दल्यो=काटा। सिंदन (स्यन्दन)=रथ। तरु=वृक्ष। बहुत गुस्सा होकर रावण तलवार लेकर लड़ने के लिए उठा और जटायु के पङ्ख काट डाले। पक्षी, दयासागर राम का नाम लेकर, ज़मीन पर गिर पड़ा। गीध को बेहाल करके रावण आकाश-मार्ग से रथ में सीता को लेकर चला। व्याकुल सीता ने बन्दरों को देखकर अपना नूपुर फेंक दिया जिससे बन्दरों के हाथ अच्छे लगने लगे। रावण सीताजी को लङ्का ले गया और उन्हें अशोक-वाटिका में रक्खा।

† "मम मन सीता आश्रम नाहीं"। (रा० च० मा०, अर० का०)

(३२) त्यागि= छोड़कर। उर=हृदय। पद=चरण। सर=तालाब। जब लक्ष्मण राम के पास पहुँचे तो राम ने कहा कि लक्ष्मण, तुम सीता को अकेली छोड़ आये हो, यह अच्छा नहीं किया। मेरे मन में अपशकुन हो रहे हैं। यह कहते हुए जब कुटी में पहुँचे और सीता को न देखा तो राम सीता के वियोग में व्याकुल हो उठे। उनकी आँखों से आँसू बहने लगे। तब लक्ष्मणजी ने पैर पकड़कर उन्हें समझाया। जब पहाड़ों और वनों में ढूँढ़ते राम लक्ष्मण जा रहे थे तो राह में ख़ून से सना हुआ एक धनुष मिला।

※ राम राम रसना रटै, लख्यौ गीधपति जाय।
कही कथा सिय हेत गति, राम नैन जल छाय॥
† राम नैन जल छाय गोद धरि वचन उचारे।
परमारथ तुम तात प्रान धन तृन करि डारे॥
तृन समान प्रानन दयो, को परहित रन महँ कटै।
जियौ भोग भोगौ जगत, राम राम रसना रटै॥३३॥

‡ दरस लागि जीवन रहै, भाग उदै रघुराइ।
जेहि बिरंचि सिव सेवही, लियौ गोद मुहिं आइ॥
§ लियौ गोद मुहिं आय राम कहि प्रान गवाँये।
भयौ तुरत हरि-रूप चारि भुज अस्त्र सुहाये॥
अस्त्र सबै सिर मुकुट वर, पीताम्बर भूषन गहेउ।
जोरि पानि अस्तुति करत, दरस लागि जीवन रहेउ॥३४॥

※ "रटनि अकनि पहिचानि गीध फिरे करुनामय रघुराई"॥ (गी०, अर० ११)

† "सुनि रघुनाथ नैन जल छाए"। (रा० च० मा०, अर० का०)
"रघुवर विकल विहंग लखि सो बिलोकि दोउ वीर"।
"सिय सुधि कहि सियराम कहि देह तजी मति धीर"॥ (दोहावली २२६)

(३३) रसना = जिह्वा। सिय हेत गति = सीता के कारण यह दशा हुई। आगे जाकर रामनाम रटते हुए जटायु को देखा। उसने सब हाल बताया। यह सोचकर कि सीता के लिए ही जटायु का यह हाल हुआ, राम की आँखों में आँसू भर आये। धूल में सने हुए जटायु को गोद में लेकर राम बोले कि परोपकार के लिए तुमने प्राणों को तिनके के समान छोड़ दिया। तुम अभी जीवित रहो और संसार का सुख भोगो। इस छन्द में 'उपमा' अलङ्कार है।

‡ "दरस लागि प्रभु राखेउँ प्राना"। (रा० च० मा०, अर० का०)

§ "राम उछंग लियो हौं"। (गीतावली अर० १४)

(३४) लागि = लिये। जीवन = प्राण। भाग = भाग्य। बिरंचि = ब्रह्मा। पानि = हाथ। तुम्हारे दर्शनों के लिए ही मैं अब तक जीवित रहा। मेरे बड़े भाग्य हैं कि ब्रह्मा और शिव जिनकी सेवा करते हैं, उन्होंने मुझे अपनी गोद में ले लिया। राम कहकर उसने प्राण छोड़ दिये। उसी समय वह चार हाथों में अस्त्र लिये हुए सिर में सुन्दर मुकुट और शरीर में पीतांबर तथा गहने धारण करके विष्णु रूप हो दोनों हाथ जोड़कर प्रार्थना करने लगा।

* परम धाम गे गीधपति, क्रिया कीन श्रीराम।
चले विरह अंकुर भये, विपिनि सावरी धाम॥
विपिनि सावरी धाम अर्घ आसन सब साजे।
धूप दीप फल सुजल धरे रघुपति के काजे॥
सबस प्रेम पायन परी, दरस पाइ पावै न गति।
राम तुम्हारो रूप लखि परम धाम गे गीधपति॥३५॥

† काठ साजि रचिकै चिता, सिय सुधि कही बहोरि।
सवरी जरि सुरगति गई, क्रिया करी प्रभु कोरि॥
क्रिया करी प्रभु कोर चले बन दूनै भाई।
मुनिगन मिलत अनेक दरस अभिमत फल पाई॥
पावहिं अभिमत जीव जड़, करहिं जोग जेहिं प्रभु निता।
साजि साजि सुर-गति लही काठ सावरी रचि चिता॥३६॥

---

* "तेहि की क्रिया यथोचित निज कर कीन्ही राम"। (रा० च० मा०, अर० का०)
"दसरथ ते दसगुन भगति सहित तासु करि काज।" (रा० प्र०, सर्ग ३, दो० २०)

(३५) धाम = स्थान। विरह = वियोग। गीधपति स्वर्ग को चले गये। राम ने स्वयं उनकी दाह-क्रिया थी। अब विरह के अंकुर लेकर शवरी के स्थान को गये। शवरी ने अर्घ्य देकर आसन दिया, फिर धूप-दीप जलाकर, फल और ठंडा पानी लाई और प्रेम के वश में होकर पैर पड़ने लगी, क्योंकि केवल दर्शनों से उसे संतोष न हुआ। इस छन्द में 'रूपक' अलङ्कार है।

† "सिय-सुधि सब कही नख सिख निरखि निरखि दोउ भाई"। (गीतावली, अर० का, १७)

(३६) सुधि = समाचार। अभिमत = वाञ्छित, मनचाहा। निता = लिये। लकड़ियों की चिता लगाकर, सीता का समाचार कहती हुई शवरी जलकर स्वर्ग को चली गई। राम ने उसकी क्रिया की। फिर दोनों भाई वन को चले। मुनि लोग उन्हें देखकर मनमाना फल पाते थे। लोग जिन प्रभु के लिए योग साधते हैं, उन्हें जड़ और चेतन अपने आप पाने लगे।

राम सिया खोजत गये, पंपा सुभग तड़ाग।
सुन्दर जल तरु विहँग मुनि, मृगगन सदन सुबाग ॥
* मुनिगन सदन सुबाग करत तप जप मन लाई।
देखि सरोवर मुदित कीन मज्जन रघुराई ॥
रघुराई मज्जन करयौ, नारद मुनि आवत भये।
तुलसिदास सुर सुभग सर, राम सिया खोजत गये ॥३७॥

---

* "ताल समीप मुनिन्ह गृह छाये"। (रा० च० मा०, अर० का०)

(३७) सुभग = सुन्दर। सदन = गृह, निवासस्थान। तुलसीदासजी कहते हैं कि सीताजी को ढूँढ़ते हुए राम पम्पा झील में पहुँचे। वहाँ का पानी, पेड़, पशु और पक्षी सभी सुन्दर थे। मुनि लोग बग़ीचों में बनी हुई कुटियों में मन लगाकर जप-तप करते थे। सुन्दर तालाब देखकर राम ने प्रसन्न-होकर स्नान किया, तब नारदजी वहाँ आकर रामचन्द्रजी से मिले।

किष्किन्धाकाण्ड

कुण्डलिया

चले बिपिनि लछिमन सहित, मिले पवनसुत आय।
    * बिप्र रूप पूछत भये, को तुम कहौ बुझाय ॥
को तुम कहौ बुझाय बिपिनि सुकुमार सलोने।
    नृप दसरथ के सुवन तासु आयसु तजि भौने ॥
† तजेउ भवन आये बिपिनि नारि गई सोध न लहित।
    खोजत हम द्विज कवन तुम चलौ बिपिनि लछिमन सहित ॥१॥

‡ लै सुग्रीव मिलाइयौ, प्रभु गुन मन अनुमानि।
    कही कथा सब परसपर, नूपुर दये बखानि ॥
§ नूपुर दये बखानि राम लोचन भरि आये।
    || बिरह बिकल प्रभु देखि कीस बहु बिधि समुझाये ॥
समुझाये सुग्रीव अति, राम लखन सुख पाइयौ।
    प्रभु भेंटे हनुमंत उर, लै सुग्रीव मिलाइयौ ॥२॥

---

* "को तुम श्यामल गौर शरीरा"। (रा० च० मा०, कि० का०)

† "नहिं सिय सोधु लह्यो है"। (गी०, कि० २)

(१) पवनसुत = हनुमान्‌जी। बिप्र = ब्राह्मण। बुझाय = समझाकर। सलोने = सुन्दर। सुवन = पुत्र। सोध = समाचार। लक्ष्मणजी के साथ रामचन्द्रजी वन में जा रहे थे तो ब्राह्मण का रूप धरकर हनुमान्‌जी उनके पास आये और बोले कि आप कौन हैं जो इतने सुन्दर और कोमल होते हुए जङ्गल में घूम रहे हैं। राम ने कहा, हम राजा दशरथ के पुत्र हैं। पिता की आज्ञा से घर छोड़कर वन में आये तो हमारी स्त्री हर गई, हम उसे ढूँढ़ते फिरते हैं। हे ब्राह्मण, तुम कौन हो? चलो वन में सहायता करो।

‡ "जोरी प्रीति दृढ़ाइ"। (रा० च० मा०, कि० का०)

§ "नीरज नयन नीर भरे पिय के"। (गी० कि० १)

|| "बिरह विकल नर इव रघुराई"। (रा० च० मा०, बा० का०)

(२) अनुमानि = समझकर, अन्दाज़ करके। बखानि = प्रसङ्ग की बात कहकर। कीस = बन्दर। राम में भगवान् के गुण समझकर हनुमान्‌जी उन्हें सुग्रीव के पास ले गये। आपस में सब कथा कहकर सुग्रीव ने सीताजी के नूपुर दिये। राम की आँखों में आँसू भर आये तो सुग्रीव ने उन्हें कई तरह से समझाया तो राम-लक्ष्मण को सुख मिला। सुग्रीव से मिलने के उपलक्ष्य में राम ने हनुमान् को हृदय से लगा लिया। प्रथम पंक्ति में 'न' की आवृत्ति के कारण 'वृत्ति' अनुप्रास है।

* प्रभु बोले कारज कवन, बसत विपिन कपिराज।
कथा कही सब बालि की, कोपि कहा रघुराज॥
कोपि कहा रघुराज बालि एकहि सर मारौं।
संपति रिधि त्रिय सहित तोहि कपि तिलक सँवारौं॥
तिलक सँवारौं कालि नहिं किहिकिंधा नृपता भवन।
तौ न धनुष सर कर धरौं, मित्र करिय कारन कवन॥३॥

† तब सुग्रीव दिखाइयौ, बालि महाबल वीर।
गर्जि नगर जान्यौ सबहिं, चल्यौ क्रोध रनधीर॥
चल्यौ क्रोध रनधीर लरे पुनि दूनौं भाई।
सरनागत प्रन समुझि बान मारेउ रघुराई॥
मारेउ बान प्रमान करि, गिरयौ अवनि मुरझाइयौ।
राम रूप लोचन पुलित, तब सुग्रीव दिखाइयौ॥४॥

---

* "कारन कवन बसहु बन, मोहिं कहहु सुग्रीव"। (रा० च० मा०, कि० का०)

(३) कोपि = गुस्सा होकर। सर = बाण। राम ने सुग्रीव से पूछा कि तुम वन में क्यों रहते हो, तो उसने बालि की सब कथा सुनाई। तब राम ने कहा कि मैं एक ही बाण से बालि को मार दूँगा और स्त्री, धन तथा सब ऋद्धियों के सहित कल तुम्हारा राजतिलक कर दूँगा। नहीं तो मित्रता करने से लाभ ही क्या? कल यदि तुम्हें राजा न बना दूँ तो हाथ में धनुष-बाण धारण न करूँगा।

† "बालि महाबल अति रनधीरा"। (रा० च० मा०, कि० का०)

(४) सरनागत (शरणागत) = शरण में आया हुआ। अवनि = पृथ्वी। तब सुग्रीव ने राम को (दूर से) बलवान् बालि दिखाया। बालि क्रोधित होकर गरजता हुआ चला तो सब लोग जान गये कि बालि आ रहा है। फिर दोनों भाइयों में लड़ाई होने लगी। सुग्रीव को शरण में आया हुआ जानकर और प्रतिज्ञा याद करके राम ने बालि को मार दिया। ऐसा बाण लगा कि बालि पृथ्वी पर मूर्च्छित होकर गिर पड़ा, पर आँखें राम के रूप की ओर लगी रहीं।

*स्याम राम छवि उर धरी, बानो कहत कठोर।
नर गति हरि गति तजि दई, सम प्रकास सब ठौर ॥
सम प्रकास सब ठौर जगत अप्रिय कछु नाहीं।
जो अप्रिय तब होइ सकल इक संग बिलाहीं ॥
संग रंग नहिं चाहियै, विधि पिपील रचना करी।
जैति हरे श्रीराम कहि, स्याम राम उर छबि धरी ॥५॥

प्रान गये श्रीराम कहि, नारि विकल पुर लोग।
†सुग्रीवहिं आयसु दयौ, करौ मृतक कर जोग ॥
करहु मृतक को जोग लखन सबको समुझायौ।
राजि हेतु सुग्रीव अनुज सँग नगर पठायौ ॥
नगर बुलायौ द्विज सकल, अंगदादि कपि बोध लहि।
बालि सोच दूषन हरयौ, प्रान गये श्रीराम कहि ॥६॥

---

* "हृदय प्रीति मुख बचन कठोरा। बोला चितै राम की ओरा" ॥
(रा० च० मा०, कि० का०)

(५) छवि=शोभा। सम प्रकास=समदर्शी। राम की श्याम छवि हृदय में रख कर बालि कड़ी बातें कहने लगा कि तुमने भगवान् की चाल छोड़कर मनुष्य की दशा ग्रहण कर ली है, क्योंकि तुम्हारा प्रकाश तो सब जगह एक-सा है, संसार में तुम्हें कुछ अप्रिय नहीं है। तुमने चींटी से लेकर ब्रह्मा तक सबको बनाया है, अतः तुम पर मित्रता का रङ्ग न चढ़ना चाहिए था। इस छन्द में 'वक्रोक्ति' अलङ्कार है।

† "पुनि सुग्रीवहि आयसु दीन्हा। मृतक कर्म बिधिवत सब कीन्हा" ॥
(रा० च० मा०, कि० का०)

(६) आयसु=आज्ञा। जोग=क्रिया। बोध=सन्तोष। श्रीराम कहकर बालि ने प्राण छोड़ दिये। उसकी स्त्री और पुर के लोग विलाप करने लगे। राम ने सुग्रीव को दाह-क्रिया आदि करने की आज्ञा दी और लक्ष्मणजी ने सबको समझाया। राजतिलक करने के लिए राम ने लक्ष्मण को नगर में भेजा। उन्होंने ब्राह्मणों को बुलाकर राजतिलक कराया तथा अङ्गद आदि को समझाकर उनका सोच हरा।

* राम नाम कहि नृप करयौ तिलक सारि सिर ताज।
राम कृपानिधि जगत मैं विरद गरीबनिवाज ॥
† विरद गरीबनिवाज कियो सुग्रीव सुखारी।
गिरि बन विकल विहाल बालि डर कंपित भारी ॥
कंपित जल निरभय नहीं जात दुसह जुर उर जरयौ।
धाम बाम नृप ग्राम को राम नाम कहि नृप करयौ ॥७॥

‡ राजनीति कहि प्रभु रहै, सैल प्रवर्षन आइ।
अनुज सहित सुंदर सदन राखे देव बनाइ ॥
राखे देव बनाइ निरखि बरषा ऋतु आई।
घन घमंड नभ घोर मनहु रवि पर निसि धाई ॥
निसि धाई रवि भजि गये, नीर बुंद बाननि गहे।
तडित कृपान सुइंद्रधनु, राजनीति करि रवि रहे ॥८॥

---

* "तिलक सारि अस्तुति अनुसारी"। (रा० च० मा०, ल० का०)

† "विरद गरीब निवाज को" (विनयपत्रिका)

(७) नृप = राजा। विरद = यश। कंपित = काँप रहा था, भयभीत। जुर (ज्वर) = ताप। उर = हृदय। बाम = स्त्री। (लक्ष्मण ने) रामनाम लेकर सुग्रीव के मस्तक में तिलक करके ताज रख दिया, क्योंकि राम ही दयासागर हैं। उन्हें ही संसार में दीनों की रक्षा करने का यश प्राप्त हुआ है। बालि के डर से पर्वत, वन और जल काँप रहे थे, सब आन्तरिक व्यथा से जल रहे थे। अतः बालि को मारकर राम ने सुग्रीव को उसकी स्त्री, घर और गाँव का स्वामी (राजा) बना दिया।

‡ "बहु प्रकार नृप नीति सिखाई"। (रा० च० मा०, कि० का०)

§ "प्रथमहिं देवन गिरि गुहा, राखे रुचिर बनाइ"। (रा० च० मा०, कि० का०)

(८) सैल = पर्वत। सदन = घर। तड़ित = विद्युत्। श्रीरामचन्द्रजी राजनीति का उपदेश देकर लक्ष्मणजी के साथ प्रवर्षण गिरि पर रहने लगे। देवताओं ने उनके लिए वहाँ कुटी बना दी। बरसात आ गई, बादल मड़राने लगे, मानों सूर्य पर रात्रि ने हमला किया हो। पानी की बूँदों से बाणों की झड़ी लग लई। बिजली की तलवार चमकने लगी, इन्द्रधनुष ही धनुष बन गया, सूर्य छिप गये। इस छन्द में 'उत्प्रेक्षा' और 'रूपक' अलङ्कार हैं।

* करि मनोज डेरा जगत, सजि आयो करि सैन।
अंसित पीत सित घन अरुन तनि बितान सुख चैन॥
† तनि बितान सुख चैन तड़ित धुज सुन्दर राजै।
निसिदिन घन घहरात मनहु वर दुंदुभि बाजै॥
‡ दुंदुभि बाजै मोर पिक वक दादुर बंदी लगत।
§ विरहवंत कारन सज्यौ, करि मनोज डेरा जगत॥९॥

‖ सुरपति कै गिरिगन ग्रसे, बुंद बान झरि लाइ।
कहुँ कहुँ मारत बज्र सर, घन गज सीस चढ़ाइ॥
घन गज सीस चढ़ाइ मोर हरवलि पुर आये।
बाजै नौमति जीति कोकिला सुजस सुनाये॥
सुजस सुनाय बितान तनि बेलि विटप गृह गिरि बसे।
मुद्रित करि पाषान जड़ सुरपति कै गिरिगन ग्रसे॥१०॥

---

* "डेरा दीन्हेउ मनहुँ तब, कटक हटकि मनुजात"॥ (रा० च० मा०, अर० का०)

† "बिबिध बितान दिये जनु तानी"। (रा० च० मा०, अर० का०)

‡ "बोलत जो चातक मोर कोकिल कीर पारावत घने" (गीतावली, उ० ३११)

§ "विरह विकल बलहीन मोहिं, जानेसि निपट अकेल"। (रा० च० मा०, अर० का०)

(९) मनोज=कामदेव। असित=काला। दुंदुभि=नगाड़े। पिक=कोकिला। दादुर=मेढ़क। कामदेव ने अपनी सेना सजाकर संसार में डेरा डाल दिया, रङ्ग-विरङ्गे बादलों ने तम्बू तान दिये, बिजली के झण्डे फहराने लगे। रात-दिन बादल गरजते थे, मानों नगाड़े बज रहे हों। मोर, कोयल, बगुला और मेढ़क भाटों की तरह बोलने लगे। विरह के अनुभव कराने का सब सामान इकट्ठा था। इस छन्द में 'रूपक' और 'उत्प्रेक्षा' अलङ्कार हैं।

‖ "बान बुन्द भइ बृष्टि अपारा"। (रा० च० मा०, ल० का०)

(१०) सुरपति=इन्द्र। हरवलि=(हरावल) फ़ौज का अगला भाग। विटप=वृक्ष। या इन्द्र ने बूँदों के बाणों की वर्षा करके पहाड़ों को जीत लिया। कहीं-कहीं बादल-रूपी हाथियों को पर्वतों के सिर पर चढ़ाकर इन्द्र ने वज्र के प्रहार भी किये। मोरों ने वर्षा के आने की सूचना दी। विजय की नौबत बजी, कोयलें यशगान करने लगीं। बेलें और वृक्ष वितान तानकर पर्वत में घर बनाकर रहने लगे। यहाँ तक कि इन्द्र ने जड़ चट्टानों पर भी अपनी छाप लगा दी। इस छन्द में 'रूपक' अलङ्कार है।

कै समुद्र महि पर चढ़्यौ, महि मुद्रित करि दीनि।
सर सरिता जल दल बढ़े, सर पंजर महि कीनि ॥
* सर पंजर महि कीनि तड़ित बड़वागिनि मानौ।
बरषत नभ चढ़ि बारि त्रसित गिरि दिग्गज जानौ ॥
दिग्गज कंपहि घन सदल नाद बाद दस दिसि बढ़्यौ।
कंपमान महि गहि धरी, कै समुद्र महि पर चढ़्यौ ॥११॥

सरद भूप आयो मिलन, धवल रूप दुति साजि।
† कमल कोक खंजन चतुर, दूत उठे जग बाजि ॥
दूत उठे जग बाजि चंद जनु छत्र सुहायो।
‡ सरि सर निर्मल बारि पाँवड़े पावस नायौ ॥
पावस दीनो तिलक जग, सरद-राज राजत थलन।
पावस गयौ प्रनाम करि सरद भूप आयो मिलन ॥१२॥

---

* "माया बल कीन्हेसि सर पंजर"। (रा० च० मा०, ल० का०)

(११) महि = पृथ्वी। बड़वागिनि = समुद्र के भीतर जलनेवाली आग। त्रसित = भयभीत। वर्षा क्या हो रही है, मानो समुद्र ने पृथ्वी पर आक्रमण किया है। इस छन्द में 'रूपक' और 'उत्प्रेक्षा' अलङ्कार हैं।

† "जानि सरद ऋतु खंजन आये"। (रा० च० मा०, कि० का०)
‡ "सरिता सर निर्मल जल सोहा"। (" ")

(१२) धवल = उज्ज्वल। दुति = शोभा। पावस = वर्षा ऋतु। चन्द्रमा का छत्र लगाये हुए वर्षा व्यतीत होने पर शरद्राज शुभ्ररूप धारण करके श्री रामचन्द्रजी से मिलने आये। इस छन्द में 'रूपक' और 'उत्प्रेक्षा' अलङ्कार हैं।

सिया सोध अब लीजियै जाहु जहाँ कपिराज।
* खबरि बिसारी सुख सुपुर पाय नारि धन राज॥
पाइ नारि धन राज बालि थल तुम्है पठाऊँ।
कर धरि कीनो सखा ज्ञान दै मन समुझाऊँ॥
मन समुझाइ समेत कपि आय गवन पुर कीजियै।
वानर भालु पठाइ करि सिया सोध अब लीजियै॥१३॥

लछिमन चले रिसाइ कै प्रीति प्रबोध रिसाइ।
† वानर भालु बुलाइ कै गये जहाँ रघुराइ॥
गये जहाँ रघुराय मिले पायन कपि नाये।
रघुपति हँसि मृदु प्रकृति पुलकि गहि कंठ लगाये॥
कंठ लगाय बुझाय कपि विनय करी चित लाइकै।
वानर भाल विसाल भट लछिमन चले लिवाइकै॥१४॥

---

* "सुग्रीवहु सुधि मोरि बिसारी। पावा राज कोष पुर नारी" ॥ (रा० च० मा०, कि० का०)
"ताको तो कपिराज आज लौं कछु न काज निबह्यो है" ॥ (गी०, कि० २)

(१३) सोध=खोज। थल=स्थान। पठाऊँ=भेज दूँगा। रामचन्द्रजी ने लक्ष्मण जी को सुग्रीव के लाने के लिए भेजा और कहा कि स्त्री, धन और राज्य पाकर हमारी ख़बर यदि भूल गये तो उन्हें भी वहीं जाना पड़ेगा, जहाँ बालि गया है। विचार केवल इतना ही है कि मित्र बना चुका हूँ, इसलिए किष्किन्धा पुर जाकर सुग्रीव को लिवा लाओ, जिसमें बानरों और भालुओं को भेजकर सीताजी की खोज करें।

† "हरषि चले सुग्रीव तब, अंगदादि कपि साथ।
रामानुज आगे करि, आये जहँ रघुनाथ" ॥ (रा० च० मा०, कि० का०)

(१४) मृदु=कोमल। प्रकृति=स्वभाव। बिसाल भट=बड़े-बड़े वीर। लक्ष्मणजी क्रुद्ध होकर चले और पुर में जाकर सुग्रीव को प्रेमपूर्वक समझाया और क्रोध भी दिखाया। फिर बानरों और भालुओं को लिवाकर सुग्रीव के साथ रामजी के पास गये। सुग्रीव आकर चरणों पर गिर पड़े तो राम ने प्रसन्न होकर उन्हें हृदय से लगा लिया और समझाया। तब सुग्रीव ने रामचन्द्रजी की विनती की।

* कपि लछिमन सब सों कहेउ, सिय सुधि खोजहु जाइ।
† पाख दिवस बिनु सुधि लिये, हमहिं मिलहु जनि आइ॥
हमहिं मिलहु जनि आइ बहुरि अंगदहि बुलाये।
तुम मारुत-सुत साथ जाहु दक्षिन सिर नाये॥
‡ दक्षिन सिय सोधहु सुभट, भालु नील नल सुख लह्यौ।
मुदरी दै हनुमंत को प्रभु कपि लछिमन सब कहेउ॥१५॥

|| चले सुभट बंकट विकट खोजत गिरि सर खोह।
× राम काज लवलीन मन, बिसर्यो तन कर छोह॥
बिसर्यो तन कर छोह सघन बन जाय भुलाने।
तृषावंत भे विकल बिना जल सब अकुलाने॥
¶ अकुलाने हनुमंत लखि चल्यौ विवर पैठ्यो सुभट।
कथा सुनाई ससिप्रभा, चले सुभट बंकट विकट॥१६॥

---

* "जनक सुता कहँ खोजहु जाई। मास दिवस महँ आयहु भाई"॥
(रा० च० मा०, कि० का०)

† "पठये बदि बदि अवधि दशहुँ दिशि, चले बलु सबनि गह्यो है"। (गी० कि० २)

‡ "सकल सुभट मिलि दच्छिन जाहू"। (रा० च० मा०, कि० का०)

§ "कर मुद्रिक दे सिय उदेस हनुमान पठाये"। (छप्पय रा०, ८)
"दीन्ह मुद्रिका मुदित प्रभु पाइ मुदित हनुमान"॥ (रा० प्र०, अ० ४, दो० ४१)

(१५) पाख (पक्ष) = १५ दिन का एक पखवारा होता है। सुधि = समाचार। सुभट = वीर। सुग्रीव और लक्ष्मण ने सबसे कहा कि पन्द्रह दिन के भीतर बिना सीताजी का समाचार लिये हमसे मत मिलना। फिर अङ्गद को बुलाकर कहा कि तुम और हनुमान् दक्षिण की ओर जाओ। राम ने हनुमान् को सब बातें समझाकर अपनी अँगूठी दे दी।

|| "चले सकल बन खोजत, सरिता सर गिरि खोह।
राम काज लवलीन मन, बिसरा तनु कर छोह"॥ (रा० च० मा०, कि० का०)

× "खोजत सर गिरि खोह ऋच्छ कपि संग सगाई"। (छ० रा०, ६)

¶ पैठि बिवर मिलि तापसिहिं" (रा० प्र०, अ० ४, दो० ४५)

(१६) सुभट = वीर। खोह = विवर, गुफा। छोह = प्रेम। तृषावंत = प्यासे। बड़े-बड़े बाँके और वीर योद्धा अपने शरीर की सुध-बुध भूलकर पर्वतों, तालाबों और कन्दराओं में सीताजी को ढूँढ़ते हुए चले। सबका मन प्रभु के काम में लगा था। एक घने वन में आकर सब मार्ग भूल गये। पानी न मिला तो प्यास के मारे अकुला उठे। यह देखकर हनुमान्जी एक विवर में घुसे। वहाँ शशिप्रभा ने उन्हें सब हाल बताया। प्रथम पंक्ति में 'अनुप्रास' अलंकार है।

जल फल खाइ प्रनाम करि, तेहि पठये जलतीर।
सो सप्रेम पहुँची तहाँ, लछिमन श्री रघुवीर॥
*श्री रघुकुल मनि वीर पठै बदरीबन दीन्ही।
†कपि सब सागर तीर सीय हित चिंता कीन्ही॥
‡चिन्ता कीन्ही कपिन सब, संपाती लखि कहत डरि।
धन्य जटाई सुभट को जल थल देत प्रनाम करि॥१७॥
सुनि सब कथा प्रनाम करि, गयौ मुदित संपाति।
§भये पक्ष जल दीनि सुचि, कही पक्षगति भाँति॥
कही पक्ष गति भाँति धरहु धीरज सब भाई।
पइहौ सीतहिं तबहि पार सागर जो जाई॥
‖सागर सत जोजन उलँघ प्रबल वीर जाइहि जो परि।
सो सिय पावहि सत्य सुनि कपि सब कथा प्रनाम करि॥१८॥

---

* "बदरी बन कहँ सो गई, प्रभु आज्ञा धरि सीस"॥ (रा० च० मा०, कि० का०)

† "निरखि सिन्धु ठहरे सबै, करहिं विलाप कलापना"। (छ० रा०, ६)

‡ "सब सभीत संपाति लखि, हहरे हृदय हरास" (रा० प्र०, अ० ४, दो० ४७)

(१७) जलतीर=समुद्र के किनारे। बदरीबन=बदरिकाश्रम (तीर्थ)। शशिप्रभा उन्हें समुद्र के किनारे भेजकर राम-लक्ष्मण के पास आई। प्रभु ने उसे बदरीबन भेज दिया। इधर सब वानर, भालु सीता की खोज करते हुए सागर के तीर पहुँचे और संपाती को देख डरकर वीर जटायु को धन्य-धन्य कहने लगे।

§ "धरहु धीर साहस करहु, मुदित सीय सुधि पाइ"। (रा० प्र०, अ० ४, दो० ४८)

‖ "जो नाँघै सत जोजन सागर। करै सो राम काज अति आगर॥"

(रा० च० मा०, कि० का०)

(१८) मुदित=प्रसन्न। पक्षगति=पंखों से ही है गति जिसकी, पक्षी (गिद्ध)। भाँति=उपाय। जोजन=चार कोस का एक योजन। जटायु का नाम सुनकर संपाती उनके पास गया। उन लोगों ने संपाती के ऊपर पवित्र जल छिड़क दिया तो उसके पंख उग आये। तब पक्षी ने उपाय बताते हुए कहा—"हे भाई, धैर्य धारण करो, तुममें से जो वीर सौ योजन का सागर पार कर जाय वही सीताजी का पता लगा सकता है।" सब वानरों ने यह कथा सुनकर उसे प्रणाम किया।

गयो कहत यह गीधपति, कपि सब करत विचार।
* बहुरत संसय जिय कहै, अंगद जातौ पार॥
† अंगद जातौ पार कहत रिच्छेस बुढ़ाई।
नल औ नील सकोच जानकी कौन दिखाई॥
कौन दिखाई जानुकी, पुनि प्रचारि कह रिच्छपति।
कहा समुद हनुमंत तुहिं, गयौ कहत यह गीधपति॥१९॥

---

* "अंगद कहै जाउँ मैं पारा। जिय संसय कछु फिरती बारा"॥ (रा० च० मा०, कि० का०)

† जरठ भयउँ अब कहै रिछेसा"। (रा० च० मा०, कि० का०)

(१६) बहुरत = लौटते समय। समुद = समुद्र। सम्पाती यह कहता हुआ चला गया। सब वानर समुद्र पार जाने की समस्या पर विचार करने लगे। अङ्गद ने कहा कि पार तो जा सकता हूँ, लौटने में संशय है! जामवन्त ने कहा कि नल और नील को भी सङ्कोच है, जानकी का पता कौन लगावेगा। फिर ऋक्षपति ने गरजकर हनुमान्‌जी से कहा कि तुम्हारे लिए समुद्र क्या चीज़ है।

सुन्दरकाण्ड

कुण्डलिया

भयो हेमगिरि को सिखर, सुनत रिक्षपति बैन।
चढ्यौ तमकि भूधर अधर, फरकि अरुन करि नैन॥
अधर फरकि भुजदण्ड मसकि भूधर जब चम्पै।
जल पताल कौ कढ्यौ सेस कच्छप पर कम्पै॥
कंपि सेस सिर नमि गयौ, कूदि चल्यौ बलवन्त फिर।
मारि दुष्ट गिरि परसि पग, भयौ हेम गिरि कौ सिखर॥१॥

पटकि लंकिनी वाम कौं, पैठ्यौ सिय हित वीर।
लखी न पुर सिय घर घरन, खोजि भ्रमित रनधीर॥
खोजि भ्रमित रनधीर विभीषन भेद बतायौ।
गयौ वाटिका सीय तहाँ पुनि रावन आयौ॥
रावन आयौ देखि कपि, तरु बैठो विश्राम को।
कहे वचन रावन सुने, पटकि लंकिनी वाम को॥२॥

---

(१) हेमगिरि = सोने का पर्वत। रिक्षपति = जामवन्त। दुष्ट = राक्षस, जो समुद्र में रहता था। 'जल पताल......कम्पै' इस पद से गुसाईं जी ने हनुमान्‌जी का भयानक रूप दर्शाया है। 'मारि दुष्ट' रामचरितमानस में—

"निशिचर एक सिन्धु महँ रहई। करि माया नभ के खग गहई॥"
"ताहि मारि मारुत सुत वीरा। बारिधि पार गयउ मति धीरा॥"

(२) वाम = स्त्री। वाटिका = अशोकवाटिका। इस कुण्डलिया में लंकिनी-हनन, विभीषण-मिलन, सीताजी से रावण की वार्ता गागर में सागर है। 'कहे वचन रावन सुने' रामचरित मानस में भी 'तेहि अवसर रावन तहँ आवा' इत्यादि लिखा है।

सिय उत्तर ताको दयो, गयो सदन मतिमंद ।
सिय दुख लखि दै मुद्रिका, देखी मारुतनन्द ।।
देखी मारुतनंद जानकिहिं कथा सुनाई ।
मातु धरिय मन धीर कहेउ निज मुख रघुराई ।।
रघुराई आवन चहत, कीस कटक दल बल भयौ ।
सुत समान तेरी कटक, सिय उत्तर ताको दयो ।।३।।

राम प्रताप सम्हारि कै, भयौ हेम गिरिरूप ।
रघुवर कृपा विचारि तृन, होइ बज्र अनुरूप ।।
होइ बज्र अनुरूप सर्प सिसु गरुडहिं मारै ।
तिमिर खाइ ससि रविहिं मसक गिरि हेम उखारै ।।
मसक सुमेर उखारही, समुद पपीलि निवारिकै ।
जरौ जगत खद्यौत तब, राम प्रताप सम्हारिकै ।।४।।

---

(३) सदन = घर । मारुतनन्द = पवनसुत । 'सिय उत्तर ताको दयो' में यह भाव है कि सीताजी ने रावण को मुँहतोड़ उत्तर दिया । 'सिय दुख लखि'—रामचरितमानस में "देखि परम विरहाकुल सीता", 'सुत समान तेरी कटक' की जगह "सुन सुत कपि सब तुमहिं समाना" इत्यादि एक से ही शब्द हैं ।

(४) तृन = तिनका । बज्र = लोहा, हीरा । मसक = मच्छर अथवा विडाल । पपीलि = चींटी । 'सर्प सिसु गरुडहिं मारै' रामचरितमानस में 'प्रभुप्रताप ते गरुड़हि, खाइ परम लघु व्याल' लिखा है । इस कुण्डलिया में गुसाँईजी ने राम-प्रताप दिखाया है और यह दिखाया है कि उनकी कृपा से कौन क्या नहीं कर सकता ।

बूड़ि जाइ खुर कुंभजौ, सेस डारि महि भार।
वारि खाइ बड़वा अनल, संभु चंद सिर डार ॥
संभु चंद सिर डारि चारि मुख सृष्टि नसावै।
गिरि सर सागर डारि धरनि तजि धीरज धावै ॥
धीरज धरनी उर तजै, जलहि मिलै गिरि ह्वै रजौ।
राम बान खल ना बचै, बूड़ि जाइ खर कुंभजौ ॥५॥

मातु देहु आयसु मुदित, लखौं वाटिका जाइ।
सुंदर फल लागे विटप, भोजन करौं अघाइ।
भोजन करौं अघाय जानकी उत्तर दीन्हों।
सुत रखवारे प्रबल पवन परवेस न कीन्हों ॥
पवन सूर परवेस नहिं लखि न सकै रवि ससि उदित।
कह कपि यह भय तनक नहिं मातु देहु आयसु मुदित ॥६॥

---

(५) खुर = गऊ के खुर की बराबर गढ़ा। कुंभजौ = कुम्भज ऋषि भी, समुद्र। बड़वा अनल = समुद्र में जलनेवाली आग। सर = तालाब। 'राम बान खल ना बचै', रामचरितमानस में लिखा है 'राम बान रवि उदय जानकी, तम बरूथ कहँ यातुधान की'। इस कुण्डलिया में गुसाईंजी ने यह दिखलाया है कि चाहे ब्रह्मा, शेष, शम्भु आदि कर्तव्य-विमुख हो जायँ, परन्तु रामबाण ख़ाली नहीं जा सकता, रावण को मारेगा।

(६) मुदित = प्रसन्न होकर या अच्छे मन से। प्रबल = बड़े बलवान्। 'सुन्दर फल...... अघाइ' मानस में 'सुनहु मातु मोहिं अतिसय भूखा, लागि देखि सुन्दर फल रूखा'। 'कह कपि......आयसु मुदित' मानस में। तिनकर भय माता मोहिं नाहीं, जो तुम सुख मानहु मन माहीं।

करि प्रनाम कूद्यो सुभट, लग्यौ फूल फल खाइ ।
मूल चलावै समुद महँ, रक्षक पहुँचे जाइ ॥
रक्षक पहुँचे जाय मर्दि महि गर्द मिलाये ।
पुर पार्यौ अति सोर अक्ष रावन पठवाये ।
अक्ष वृक्ष लै कपि हन्यौ, मेघनाद आयो विकट ।
भिरे युगल रघुपति सुमिरि, करि प्रनाम कूद्यो सुभट ॥७॥

ब्रह्म बान कपि साधिकै, धरि लै गयौ बहोरि ।
रावन आगे धरि दियौ, कहि कटु वचन करोरि ॥
कहि कटु वचन करोर कही रावन तब बानी ।
को मर्कट इत कहा काहि बल फल करि हानी ॥
फल दल मूल विधंसि कर, रन कीन्हो अवराधि कै ।
कह कपि तब सुत छल कर्यौ, ब्रह्म बान कर साधि कै ॥८॥

---

(७) सुभट = महावीर । मर्दि = मसलकर । गर्द = धूल । युगल = दोनों । 'मर्दि महि गर्द मिलाये' मानस में 'कछु मारेसि कछु मर्देसि कछुक मिलायेसि धूरि ।' इस कुण्डलिया में गुसाईं जी ने हनुमान्‌जी का अति भयंकर युद्ध दिखलाया है ।

(८) मर्कट = बन्दर । विधंसि कर = नष्ट-भ्रष्ट करके । अवराधि कै = प्रचार कर, चुनौती देकर ।। 'को मर्कट...करि हानी' मानस में 'कह लंकेस कौन तैं कीसा, केहि के बल घालेसि बन खीसा' । 'रावन आगे धरि दियौ' से यह दिखलाया है कि हनुमान्‌जी को लादकर उसे बड़ी कठिनाई से ले जाना पड़ा ।

विधि हरि हर दिगपाल सब, ब्याल यक्ष गंधर्व।
पित्र प्रेत पसु मनुज जग, सचराचर सुर सर्व॥
सचराचर सुर सर्व गगन धरनी गिरि घेरे।
मैं तैं पुर परिवार धाम धन त्रिय सुत तेरे॥
त्रिय सुत तेरे लोक सब, भये रहे पुनि होहिं अब।
तासु दूत जेहि जग स्रज्यौ विधि हरि हर दिगपाल सब॥९॥

अति रिस पावक बारि कै, तेल वस्त्र घृत बोरि।
चढ़्यौ अटारी कनक की, विधिसर कर ते तोरि॥
विधिसर कर ते तोरि सकल पुर दीन्ही आगी।
छन महँ सब पुर जारि विभीषन भवन न लागी॥
भवन भस्म भूषन भये, समुद सुदर्प निवारिकै।
सियमनि लै कूदत भयौ, अति रिस पावक बारि कै॥१०॥

---

(९) व्याल = सर्प। प्रेत = भूत, चुड़ैल। गगन = आकाश। स्रज्यौ = रचना की है। 'सचराचर...गिरि घेरे' मानस में 'जाके बल विरंचि हरि ईसा, पालत हरत स्रजत दससीसा। जा बल सीस धरे सहसानन, अंड कोस समेत गिरि कानन' अक्षरशः मिलता है।

(१०) विधिसर = ब्रह्मास्त्र। सुदर्प = वह क्रोध। सियमनि = सीताजी की चूड़ामणि। 'छन महँ...न लागी' मानस में 'जारा नगर निमिष इक माहीं; एक विभीषण को गृह नाहीं।' एक कुण्डलिया में लङ्का—दहन पूर्ण रूप से वर्णन करना गुसाईंजी का ही कार्य्य है, साधारण कवि नहीं कर सकता।

करि प्रबोध साथी सकल, मधुबन के फल खाइ।
हरषि गहे प्रभु-पद-कमल, उर भेंटे रघुराइ॥
उर भेंटे रघुराइ दीन मणि प्रभु हँसि लीन्ही।
सिय दुर्दसा निहारि पवनसुत प्रगटित कीन्ही॥
प्रगटित कीन्ही सियदसा, सुनत दसा रघुपति विकल।
विजय करिय सिय आनियै, करि प्रबोध साथी सकल ॥११॥

राम वचन कपि-दल चल्यौ, दिग्गज अहि सकुचन्त।
भाल बली मर्कट सुभट, जूथ-जूथ बलवन्त॥
जूथ-जूथ बलवन्त अन्त को पावहि लेखा।
राम कटक को विभव रूप जानहिं जिन देखा॥
जिन देखा ते जानहीं, नभ अहिपुर भूतल हल्यौ।
समुद तीर डेरा परे, राम वचन सुनि दल चल्यौ ॥१२॥

---

(११) करि प्रबोध = सान्त्वना देकर। उर भेंटे = हृदय से लगा लिया। 'विजयकरिय सिव आनियै' मानस में 'वेगि चलिय सिय आनियै भुजबल खल दल जीति'। इस कुण्डलिया में हनुमान्‌जी द्वारा सीताजी की दुर्दशा वर्णन कराकर रामचन्द्रजी को रावण के प्रति क्रुद्ध कर उसे जीतकर जानकी लाने को प्रोत्साहित किया है।

(१२) सकुचन्त = सहम गये। जूथ-जूथ = दल के दल। भूतल = पृथ्वीमण्डल। 'भाल... बलवन्त' मानस में 'कपिपति वेगि बुलायौ आये यूथप यूथ, नाना बरन अतुल बल बानर भालु बरूथ'।

वचन सुनत रावण कहेउ, मन्त्री मित्र बुलाइ।
मन्त्र कहौ पूछत सबहिं, कहेउ बिभीषन आइ॥
कहेउ बिभीषन आइ मन्त्र मनि मानिय मेरो।
सीतहिं सौंपहु जाइ मिलहु रघुनाथ सबेरो॥
सुनि गुनि उठि लातन हत्यौ, मिलहि सत्रु को उर दह्यो।
चल्यो हृदय अनुमान करि, वचन सुनत रावन कह्यो॥१३॥

मन गलानि हरिहै कवन, चल्यौ ताकि प्रभु पाइ।
दीनबन्धु दाया हृदय, लीन्हो तुरत बुलाइ॥
लीन्हो तुरत बुलाइ तिलक पुनि निज कर सारयौ।
रावन पुर सब दियो मिल्यो जब सीस उतारयौ॥
* सीस उतारे सिव दयौ, तब पायो लङ्का भवन।
सो पुर धन पायन परत, मन गलानि हरिहै कवन॥१४॥

---

(१३) मन्त्र=सलाह। गुनि=समझकर। दह्यो=जल गया। 'सीतहिं सौंपहु जाइ' मानस में 'सीता देहु राम कहँ'। 'सुनि गुनि...उर दह्यो' मानस में 'मम पुर बसि तपसिन सन प्रीती, शठ मिलु जाइ तिनहिं कहु नीती। अस कहि कीन्हेसि चरन प्रहारा'। इस कुण्डलिया में गुसाईंजी ने विशेष बात यह दर्शाई है कि रावन भाँप गया कि विभीषण राम से मिल जायगा और बण्टाढार करेगा।

(१४) गलानि=संशय। हरिहै कवन=कौन हरेगा। जो संपति दससीस अरपि करि रावन सिव पहँ लीन्ही। सोइ संपदा विभीषन कहँ अति सकुच सहित प्रभु दीन्ही॥ (विनयपत्रिका)

'तिलक पुनि निज कर सारयौ' मानस में 'अस कहि राम तिलक तेहि सारा।' 'रावन पुर... भवन'। मानस में—

दोहा—जो सम्पति सिव रावनहि, दीन दिये दस माथ।
सो सम्पदा विभीषणहि, सकुचि दीन रघुनाथ॥

इस कुण्डलिया में विशेषकर भगवान् का जल्दी प्रसन्न होने का स्वभाव और उदारता की हद (पराकाष्ठा) दिखलाई है।

सखा निकट बैठाइ कै, पूछी सागर पाइ।
केहि विधि उतरै कपि कटक, कहि विधि करिय उपाइ ॥
केहि विधि करिय उपाय, मन्त्र करि व्रत तट कीन्ह्यों।
छुद्र न द्रवहि बिसेषि, तबहिं प्रभु धनु-सर लीन्ह्यों ॥
धनु सर उर मारयौ विकल, मिल्यो रतन लै आइकै।
पंथ देहि कपि कटक कहँ, सखा निकट बैठाइकै ॥१५॥

नाथ सुभग मारग रच्यौ, जल महि पावक पौन।
विटप सैल सरि जड़ रचे, इनको सिखवत कौन ॥
इनको सिखवत कौन करहु प्रभु एक उपाई।
गिरिगन बाँधहिं सेत नील नल दूनौ भाई ॥
दूनहुँ भाई बाँधिहैं, सैल सकल मर्कट सुच्यौ।
आपु प्रताप सहाइ मम, नाथ सुभग मारग रच्यौ ॥१६॥

---

(१५) कटक =सेना। विधि=युक्ति। छुद्र=नीच। न द्रवहि=नहीं पसीजता। 'छुद्र न द्रवहि बिसेषि' मानस में 'विनय न मान खगेस सुनु डाटेहि पै नव नीच'। 'मिल्यो रतन लै आइ कै' मानस में—'कनक-थार भरि मणिगण नाना, विप्र रूप आये तजि माना'। इसमें नीच का स्वभाव-परिचय देकर विशेषता प्रकट की है कि सच बातँ तो यह है कि 'बिनु भय होय न प्रीति गुसाईं।'

(१६) सुभग=सुन्दर। विटप=वृक्ष। सैल=पर्वत। सरि=नदी। 'नाथ सुभग... कौन' मानस में 'गगन समीर अनल जल धरनी, इनकी नाथ सहज जड़ करनी। तव प्रेरित माया उपजाये, सृष्टि हेतु सब ग्रन्थन गाये। 'गिरिगन...भाई' मानस में 'नाथ नील नल कपि दोउ भाई, लरिकाँई ऋषि आसिष पाई। तिनके परसि किये गिरि भारे, तैरहिं जलधि प्रताप तुम्हारे।'

सुनि साँचे सागर वचन, कपिपति कीस बुलाइ।
धावौ गिरि तरु आनि कै, नलहिं देहु सुख पाइ॥
नलहिं देहु सुख पाइ धरहि गिरि सागर माहीं।
सुनि आयस कपिवृन्द चले चहुँ दिसि भ्रम नाहीं॥
भ्रम नहिं सिर चंगुल करहि, कोटि कोटि गिरि धरि रचन।
देहिं आनि नल-नील कहँ, सुनि साँचे सागर वचन॥१७॥

---

(१७) कीस = बन्दर। आयस = आज्ञा। भ्रम = शक। चंगुल = पञ्जा। 'सुनि साँचे... बुलाइ' मानस में 'सिन्धु-बचन सुनि राम, सचिव बोलि प्रभु अस कहेउ।' 'सिर चंगुल करहिं' से गुसाईंजी ने बन्दरों के पर्वतों की चट्टानें लाने का चित्र खींच दिया है। सचमुच गुसाईंजी ने सुन्दरकाण्ड को सुन्दर बनाने में कोई कसर नहीं रक्खी :—

श्लोक सुन्दरे सुन्दरी सीता, सुन्दरे सुन्दरी कथा।
सुन्दरे सुन्दरो रामः सुन्दरे किन्न सुन्दरम्॥

लङ्काकाण्ड

कुण्डलिया

बाँधि सेतु मारग भयो, चली विपुल कपि सैन।
गर्जहिं मर्कट भालु सब, आये राजिवनैन ॥
* आये राजिवनैन मँदोदरि बहु समुझायो।
मृतक न रावन सुनै काल केहि मति न भ्रमायो ॥
मति अंगद पुर लै चल्यौ, सुभ उपदेसन को गयो।
चेतु चेतु कर हेत निज, बाँधि सेतु मारग भयो ॥१॥

मुंड रुंड सागर परै, राम बान परचंड।
मधु मुर बालि विधंसि जेहि, खरदूषन बलवंड ॥
† खरदूषन बलवंड खंडि ताड़िका सुबाहै।
सागर सडरित भयो देखि मारीच कहा है ॥
कहकहात तरकस पर्‌यौ, बार बार उठि उच्चरै।
मिलै जाइ सिय लाइ सँग, मुंड रुंड सागर परै ॥२॥

---

* "मन्दोदरि तब रावनहिं, बहुत कहा समुझाय" ॥ (रा० च० मा०, लं० का०)

(१) विपुल = बड़ी। मर्कट = बन्दर। राजिवनैन = कमलनेत्र, श्रीराम। मति = बुद्धि, विचारणीय बात, सन्देश। पुल बाँधने से रास्ता हो गया। बन्दरों और भालुओं की विशाल सेना गरजती हुई चली। श्रीराम आ गये। मन्दोदरी ने रावण को बहुत समझाया, किन्तु उसका काल आ गया था। उसने एक न सुनी। काल ने किसकी समझ नहीं फेर दी? अङ्गद सन्देश लेकर रावण को समझाने गया कि अब भी चित्त में चेत, जो पुल बनाकर समुद्र पार कर लिया है। 'मति' में श्लेष और 'चेतु-चेतु' में यमक तथा अन्तिम पंक्ति में वृत्त्यनुप्रास है। इस छन्द में 'उपमा' और 'लोकोक्ति' अलङ्कार हैं।

† "जेहि ताड़का सुबाहु मारि मख राखि जनायो आपु"। (गी०, लं० १)
"दूषण बिराध खर त्रिशिरा कबंध वधे"। (क०, ल० ११)
"खरदूषण त्रिशिरा बधे, मनुज कि अस बरिवंड"। (रा० च० मा०, अर० का०)

(२) परचंड = तीक्ष्ण, भयानक। बलवंड = बलवान्। कहकहात = हँसता है। राम के पैने बाणों से (कटकर) सिर और धड़ सागर में तैरेंगे, जिन्होंने मधु, मुर और बालि का संहार किया, खर-दूषण ताड़का और सुबाहु के टुकड़े कर दिये। मारीच ने अनुभव करके कहा था कि उसे छः ऋतुएँ समुद्र में ही बितानी पड़ी थीं। तुम्हारा तरकस भी गिरकर लुढ़कता है मानों बार-बार उठकर कहता है कि सीता को लेकर राम से मिलो। इस छन्द में 'अनुप्रास' अलङ्कार है।

*मैं रघुवर को दूत हौं, तू निसिचर-कुल-राइ।
सैन सहित लागौ सुभट, सकल उठावौ पाँइ॥
सकल उठावौ पाँय वचन हारे मन रोपौ।
सेस सीस मैं चोट भई अंगद जब कोपौ॥
अंगद पाँव उखारियो, कह रावन भट जूथ हौ।
हारे भट रावन उठ्यो, मैं रघुवर को दूत हौं॥३॥

मेरु हल्यौ पग नहिं हल्यो, अस्त हल्यो गिरि स्रंग।
उदय सैल कंपित भयौ, मंदर हर गिरि भंग॥
मंदर हर गिरि भंग सपत पाताल विहाले।
†सप्त समुद उच्छलत कमठ दिग्गज दिसि चाले॥
चाले दसकंधर वदन, लंक सदन ढहि-ढहि चल्यो।
थके जके सब दनुज भट, मेरु हल्यौ पग नहिं हल्यो॥४॥

---

* "तू रजनीचर नाथ महा रघुनाथ के सेवक को जन हौं"। (क०, लं० क० १३)
"तैं निसिचर पति गर्व बहूता। मैं रघुपति सेवक कर दूता"॥
(रा० च० मा०, लं० का०)

(३) राइ=राजा। सुभट=वीर। जूथ=समूह। मैं राम का दूत हूँ; तुम राक्षसकुल के राजा हो। मैं यह प्रण करके कहता हूँ कि तुम्हारे सब वीर मेरा पैर उठाने की कोशिश करें। अङ्गद ने जब कोप कर पैर जमाया तो शेषनाग के सिर तक धमक पहुँची। रावण ने सब वीरों से पैर उखाड़ने को कहा। जब कोई न उठा सका तो रावण उठा। इसपर अङ्गद ने कहा, राम के पैर छू मैं तो उनका दूत हूँ। इस छन्द में 'अत्युक्ति' अलङ्कार है।

† "महाबली बालि को दबत दलकतु भूमि, तुलसी उछलि सिन्धु मेरु मसकतु है"।
(क०, लं० १६)

(४) गिरि=पर्वत। स्रंग=चोटी। जके=ठग गये। दनुज=राक्षस। सपत पाताल=तल, अतल, वितल, सुतल, तलातल, रसातल, महातल, पाताल। मेरु, अस्ताचल, उदयाचल, मन्दर और कैलास आदि सब पर्वत हिल गये पर अङ्गद का पैर न हिला। सातों पाताल काँप उठे। सात समुद्र लहरा उठे। कच्छप तथा दिशाओं के हाथी विचलित हो उठे। रावण के दसों सिर हिल गये। लङ्का में घर गिरने लगे। सब राक्षस थककर हार गये पर अङ्गद का पैर हिला तक नहीं। इस छन्द में 'अत्युक्ति' अलङ्कार है।

हारि गये दलबल असुर, चल्यौ बालिसुत वीर।
मुकुट धरे प्रभु पाँय तर, मिले हरषि रघुवीर॥
मिले हरषि रघुवीर बालिसुत कारन भाष्यो।
* गढ़ घेर्‌यो करि मंत्र जहाँ लायक तहँ राख्यो॥
राखि वीर पुर भय दयौ, भई लंक अति प्रबल जुर।
भयो जुद्ध क्रुद्धित समर, हारि गये दलबल असुर॥५॥

मेघनाद जोधा सुभट, लछिमन हत्यौ प्रचारि।
भइ मुरछा प्रभु कपि लखे, हनुमत लीन प्रचारि॥
† हनुमत लीन प्रचारि औषधी लेन पठाये।
दुष्ट हन्यौ कपि नीच सैल सिर राखि सिधाये॥
‡ सैल सीस देखत भरत, मारि तानि सायक विकट।
राम हेत भेंटत कह्यो, लखन घाय पीड़ा सुभट॥६॥

---

* "जो जेहि लायक सो तहँ राखा"। (रा० च० मा०, अ० का०)

(५) गढ़=किला। मंत्र=सलाह। राक्षस अपनी सेना और शक्ति के साथ हार गये। बालि का वीर पुत्र चल दिया और उसने रावण के मुकुट प्रभु के चरणों में रख दिये और मुकुटों के आने का कारण कहा। सलाह करके लङ्का को चारों ओर से घेर लिया और सब वीरों को यथायोग्य स्थान में नियुक्त कर दिया। लङ्का में भय का आतङ्क छा गया। फिर क्रोधपूर्ण युद्ध हुआ, राक्षसों की सेना हार गई।

† "जामवन्त हनुमन्त बोलि तब अवसर जानि प्रचारे"। (गी०, लं० का० ७)

‡ "देखा भरत बिसाल अति, निसिचर मन अनुमानि।
बिनु फर सायक मारयो, चाप स्रवन लगि तानि"॥
(रा० च० मा, लं० का०)

(६) प्रचारि=ललकारकर। दुष्ट=कालनेमि। सायक=बाण। विकट=भयानक, तीक्ष्ण। वीर मेघनाद ने गरजकर लक्ष्मण को (शक्तिबाण) मारा, वे मूर्छित हो गये। राम ने हनुमान् को बुलाकर दवा लेने से लिए भेजा। हनुमान्‌जी ने मार्ग में (कंटक-स्वरूप) दुष्ट राक्षस को मारा और सिर में दोनागिरि को लेकर चले। भरत ने जब सिर में पर्वत ले जाते देखा तो खींचकर कराल बाण मारा, पर राम का हितुआ समझकर उन्हें भरत ने हृदय से लगा लिया। तब हनुमान्‌जी ने कहा कि वीर लक्ष्मण के घाव की पीड़ा हो रही है।

अति सनेह भेंव्यौ भरत, कहेउ कीस चढ़ि बान।
बिलँब तोहिं मारग अगम, पठवहुँ तोहिं प्रमान॥
पठवहुँ तोहिं प्रमान समुझि पुनि कहत कपीसा।
* तव प्रताप ते नाथ जाउँ जहँ प्रभु जगदीसा।
प्रभु जगदीस विचारिकै, दोउ पग धरि पायन परत।
धन्य धन्य हनुमंत जग, अति सनेह भेंव्यौ भरत॥७॥

† लछिमन उठि ठाढ़े भये, कीन्हों वैद उपाय।
सुनि रावन संसय भये, भ्राता जाय जगाय॥
भ्राता जाइ जगाय कहे कारन सब जेते।
तेहि तब कहेउ न मनुज ब्रह्म प्रभु कपि सुर तेते॥
कपि सुर रघुवर ब्रह्म हैं, तेहिं विरोध को नहिं गये।
यह कहि रनमंडल गयो, लछिमन उठि ठाढ़े भये॥८॥

---

* "तव प्रताप उर राखि प्रभु, जैहौं नाथ तुरन्त"। (रा० च० मा०, लं० का०)

(७) सनेह = प्रेम। कीस = वानर। प्रमान = सत्य, निश्चय। भरतजी बड़े प्रेम के साथ हनुमान्‌जी से मिले और कहा कि मार्ग कठिन है, तुम्हें देर हो जायगी। अतः तुम मेरे बाण पर बैठ जाओ तो निश्चय तुम्हें राम के पास पहुँचा दूँगा। हनुमान्‌जी ने विचारकर कहा कि तुम्हारे प्रताप से राम के पास मैं स्वयं पहुँच जाऊँगा। हनुमान्‌जी आकर राम के चरणों में गिर पड़े। हनुमान्‌जी धन्य हैं जिन्हें भरतजी ने प्रेम से हृदय में लगा लिया।

† "तुरत बैद तब कीन उपाई। उठि बैठे लछिमन हरषाई"॥ (रा० च० मा०, लं० का०)

"रावण भाइ जगाइ तब, कहा प्रसंग अचेत"। (रामाज्ञा प्रश्न, अ० ५, दो० ४३)

(८) संसय = सन्देह, चिंता। भ्राता = कुम्भकर्ण। वैद्य ने उपाय किया, लक्ष्मण उठ खड़े हुए। यह सुनकर रावण को संशय हुआ। उसने कुम्भकर्ण को जगाकर सब हाल सुनाया। कुम्भकर्ण ने कहा कि राम ब्रह्म हैं और जितने वानर हैं, सब देवता हैं। उनके विरोध से किसका नाश नहीं हुआ? इतना कहकर वह युद्ध-क्षेत्र में गया।

*मारि दुष्ट रन दलमलेउ, सुर दुंदुभी बजाय।
लछिमन को आयसु दियो, तात लंकपुर जाय॥
तात लंकपुर जाइ हतहु रावनसुत जाई।
आयसु सिर धरि लखन हत्यौ देवन-दुखदाई॥
दुखदाई मारे सकल, रावन मन सोचत चले।
† जय जय जय रघुबंसमनि, मारि दुष्ट रन दलमले॥९॥

रन रावन आतुर चल्यौ, असुर सैन दल साथ।
करत जुद्ध देवन डरत, धरत सरासन हाथ॥
‡ धरत सरासन हाथ चलत महि दिग्गज डोलैं।
छुभित उदधि जल स्रृंग-सैल खसि महिधर बोलैं॥
महिधर बोलैं अति सभय, रवि मुद्रित सब थल हल्यौ।
भुज प्रचंड रन मंडियो, रावन रन आतुर चल्यौ॥१०॥

---

* "बरषि सुमन हिय हरषि प्रसंसत बिबुध बजाइ निसान"। (गी०, लं० का० ६)

† "जय जय जय रघुबंसमनि धाये कपि दै हूह"। (रा० च० मा०, लं० का०)

(९) रन=युद्ध। आयसु=आज्ञा। राम ने दुष्ट को मारकर उसकी सेना का संहार किया, देवताओं ने दुंदुमी बजाई। फिर लक्ष्मण को लङ्का जाकर मेघनाद को मारने की आज्ञा दी। राम की आज्ञा मानकर लक्ष्मण ने मेघनाद को और अन्य दुःखदायी राक्षसों को मारा। रावण मन में सोच करता चला। रघुवंश में श्रेष्ठ राम की विजय हुई, राक्षसों का संहार हुआ।

‡ "चलत दशानन डोलत अवनी"। (रा० च० मा०, बा० का०)

(१०) आतुर=शीघ्र। सरासन=धनुष। महि=पृथ्वी। रवि मुद्रित=जहाँ सूर्य का प्रकाश पड़ता हो। राक्षसों की सेना लेकर रावण युद्ध करने चला। उसने जैसे ही लड़ने को धनुष उठाया, पृथ्वी काँपने लगी, दिग्गज विचलित हो गये, समुद्र व्याकुल हो उठा, जल खौलने लगा, पर्वत की चोटियाँ गिरने लगीं जैसे महीधर डरकर बोल उठे हों। उसने अपनी भयानक भुजाओं से जब रण-रङ्ग रच दिया तो जितने स्थानों पर सूर्य का प्रकाश पड़ता है, सब हिलने लगे। इस छन्द में 'अत्युक्ति' अलङ्कार है।

राम रावना जुद्ध को, को कवि पावहि पार।
* सेष सारदा निगम बिधि, संकर मुनि अवतार॥
संकर मुनि अवतार कलप कोटिन कहि हारैं।
बल दल समर प्रचंड मन्द जे कहन विचारैं॥
कहन विचारे मति कवन, सब कहि हारे बुद्धि को।
तुलसिदास सो किमि कहै, राम रावना जुद्ध को॥११॥

† प्रभु मारयो प्रभु ह्वै गयो, ताको बरनै कौन।
बल पौरुष अरु वीरता, जानत रवि ससि पौन॥
जानत रवि ससि पौन बड़ो रन रावन कीन्हो।
निज बल सम गनि ताहि परम पद पावन दीन्हो॥
पावन पद लखि देव सब, पुहुप वृष्टि दुंदुभि दयौ।
करहि विनय सादर सकल, प्रभु मारयौ प्रभु ह्वै गयौ॥१२॥

---

* "श्रीराम रावन समर चरित अनेक कल्प जो गावहीं।
सत शेष शारद निगम कवि तेउ तदपि पार न पावहीं" ॥ (रा० च० मा०, लं० का०)

(११) निगम = वेद। मन्द = मूर्ख। राम और रावण की लड़ाई का पूरा वर्णन भला कौन कवि कर सकता है, जिसे शेषनाग, सरस्वती, वेद, ब्रह्मा, शिव और वाल्मीकि करोड़ों कल्प तक कहकर हार चुके हैं। प्रचण्ड शक्ति, सेना और युद्ध का पूरा हाल कहने का जो विचार भी करे वह मन्दबुद्धि है। जब सभी की बुद्धि कहकर हार गई तो तुलसीदासजी कहते हैं कि मैं उसका वर्णन कैसे कर सकता हूँ।

† "तासु तेज प्रभु बदन समाना"। (रा० च० मा०, लं० का०)
"बिबुध बजावत दुन्दुभी, हरषत बरषत फूल"। (रा० प्र०, अ० ५, दो० ४८)

(१२) परम पद = मोक्ष। पावन = पवित्र। पुहुप (पुष्प) = फूल। रावण प्रभु के हाथ से मारा गया, फिर राम में ही लीन हो गया। उसकी शक्ति, पराक्रम और वीरता सूर्य, चन्द्र और वायु भी जानते हैं। वे इस बात के साक्षी हैं कि रावण ने बड़ा भयानक युद्ध किया था। राम ने अपने समान वीर समझकर रावण को मोक्ष पद दिया। यह देखकर देवताओं ने विनय करके फूल बरसाये और दुन्दुभी बजाई। दूसरी पंक्ति में 'क्रमालङ्कार' और पहली पंक्ति में 'अतिशयोक्ति' अलङ्कार है।

सिय संकट दूरी करयौ, राजि विभीषन दीनि।
सत्य सुजस कपि को कह्यो, सपथ तीय सुचि कीनि ॥
* सपथ तीय सुचि कीनि चढ़े पुष्पक रघुराई।
कपि सिय लखन समेत चले सुर जयति सुनाई ॥
जय जय प्रभु बल दल दल्यो, सुर मुनि द्विज महि दुख हर्यो।
अमर नाग भूतल सुखी, सिय संकट दूरी कर्यो ॥१३॥

† पूजा संकर की करी, सेतु सिया दरसाइ।
पंचवटी कुंभजहिं मिलि, अत्रि आदि ऋषिराइ ॥
अत्रि आदि ऋषिराज मिले अनसुइयहिं जाई।
‡ आसिष आयसु पाय चले आगे रघुराई ॥
रघुराई आये तहाँ चित्रकूट मंगल थरी।
पय अन्हाय मुनिगन मिले पूजा संकर की करी ॥१४॥

---

* "चढ़ि पुष्पक आरूढ़ राम सिय लखन समेता"। (छ० रा०, लं० २६)
"सीता शपथ प्रसंग शुभ, शीतल भयउ कृसानु"। (रा० प्र०, अ० ६, दो० ३)

(१३) राजि = राज्य। सुचि = पवित्र। सीता का सङ्कट दूर किया, विभीषण को राज्य दे दिया, कपि का सच्चा यश कहा और जानकी की अग्नि-परीक्षा लेकर सीता लक्ष्मण और वानरों के साथ श्रीरामचन्द्रजी पुष्पक विमान में बैठकर चले। देवताओं ने जयजयकार के नारे लगा दिये। पृथ्वी, ब्राह्मण तथा मुनियों का दुःख दूर हो गया और देवता, नाग तथा भूतल सुख से भर गये।

† "वैदेहि पश्यामलयाद्विभक्तं मत्सेतुना फेनिलमम्बुराशिम्"। (रघुवंश)

‡ "सकल ऋषिन सन पाइ असीसा। चित्रकूट आयउ जगदीसा" ॥
(रा० च० मा०, लं० का०)

(१४) दरसाइ = दिखलाकर। थरी (स्थली) = स्थान। सीताजी को सेतु की छटा दिखाकर रामेश्वर-महादेव की पूजा की, फिर पञ्चवटी गये और कुम्भज, अत्रि तथा अनसूया का आशीर्वाद और उनकी आज्ञा पाकर श्रीरामचन्द्रजी चित्रकूट की पुण्यभूमि में आये। वहाँ स्नानादि करके मुनियों से मिले और शङ्करजी की पूजा की।

आयसु पायो मुनि दयो, चले हरषि श्रीराम।
जमुनहिं पूजि सप्रेम मय, हरषित कीन प्रनाम॥
कीन प्रयाग प्रनाम मिले मुनिगन प्रभु जाई।
* करि मज्जन सिय सहित विप्र मानता बड़ाई॥
मान बड़ाई पूजि कै, पुनि बिवान आतुर गयो।
मिले निषादहिं गंग तट, आयसु पायौ मुनि दयो॥१५॥

† कपि हनुमंत पठाइयो, भरत कुसलता देखि।
आवत सिय लछिमन सहित, यह तुम कहौ विसेषि॥
यह तुम कहौ विसेषि प्रात उठि भरत निहारौं।
पुरवासिन पुनि मिलौं मातु को सोच निवारौं॥
सोच निवारौं अवध को, सब प्रकार समुझाइयौ।
भरत प्रबोधन हेत प्रभु कपि हनुमंत पठाइयौ॥१६॥

---

* "पुनि प्रभु आइ त्रिवेनी, हरषित मज्जन कीन।
कपिन सहित विप्रन कहँ, दान बिबिध बिधि दीन"॥ (रा० च० मा०, लं० का०)

(१५) मय = तन्मय होकर। मज्जन = स्नान। आतुर = जल्दी। मुनि से आज्ञा पाकर श्रीरामचन्द्र आगे बढ़े। प्रेम में विभोर होकर यमुनाजी की पूजा की और प्रसन्नता-पूर्वक प्रणाम किया। फिर प्रयागराज को सिर झुकाकर मुनियों से मिले और सीता के सहित स्नान करके ब्राह्मणों का आदर किया। वहाँ से विमान वेग से चला और गङ्गा-किनारे आकर राम ने निषादराज से भेंट की।

† "आये तीरथराज भेजि हनुमान भरत पहँ"। (छ० रा०, लं० का० २६)

(१६) निहारौं = दर्शन करो, मिलो। प्रबोधन = आश्वासन, समझाने के लिए। वहाँ से हनुमान्‌जी को भरत की कुशल देखने और सीता-लक्ष्मण सहित अपने आने का हाल कहने के लिए अयोध्या भेजा। राम ने यह भी कहलाया कि सबेरा होते ही मैं भरत के दर्शन करूँगा, फिर पुरवासियों से मिलकर माताओं का और जन्मभूमि का सोच हरूँगा। भरत को सब प्रकार से समझाने के लिए प्रभु ने कपि को भरत के पास भेजा।

पुनि निषाद उर लाइयौ, रघुपति करुना पुंज।
लै आयौ मन्दिर परम, सुजल धोइ पदकंज ॥
सुजल धोइ पदकंज रुचिर आसन बैठारयौ।
*धूप दीप नैवेद्य फूल फल अंकुर धार्यौ ॥
अंकुर खाये प्रेमजुत राम बहुत सुख पाइयौ।
प्रात समाज विमान चढ़ि पुनि निषाद उर लाइयौ ॥१७॥

भरत देखि हनुमंत जब, कृस सरीर दुख दीन।
जटा सीस मुनि व्रत धरम प्रेम पाँवरी लीन ॥
प्रेम पाँवरी लीन राम सिय वदन उचारे।
कुस आसन आसीन वसन भूषन तजि डारे ॥
भूषन तजि भजि नाम प्रभु, अवधि अंत दिन आहि अब।
अहह मोहिं धृक धृक कहत भरत देखि हनुमंत जब ॥१८॥

---

* "धूप दीप नैवेद्य वेद विधि"। (रा० च० मा०, बा० का०)

(१७) कंज = कमल। रुचिर = सुन्दर। नैवेद्य = भोग, भोजन के योग्य पदार्थ। करुणानिधान राम ने निषाद को हृदय से लगा लिया। वह उन्हें अपने घर ले आया और चरण-कमल धोकर सुन्दर आसन दिया तथा धूप, दीप, नैवेद्य, फूल, फल और अङ्कुर अर्पण किये। श्रीराम ने अङ्कुर आदि सुखपूर्वक ग्रहण किये और निषाद से बिदा माँगकर विमान पर चढ़कर अयोध्या को चले। 'पदकंज' में 'रूपक' अलङ्कार है।

† "रहा एक दिन अवधि अधारा"। (रा० च० मा०, उ० का०)

(१८) कृस = दुबला। पाँवरी = खड़ाऊँ। आसीन = बैठे हुए। अवधि = समय की सीमा। हनुमान्‌जी ने भरत को बड़ी करुण अवस्था में देखा। वे सिर में जटा धारण किये मुनियों का सा धर्म निभा रहे थे और श्रीराम की खड़ाऊँ लिये सीताराम का जाप कर रहे थे। सब आभूषण उतारकर यह कह रहे थे कि हाय मुझे धिक्कार है जो आज अवधि का अन्तिम दिन होने पर भी राम नहीं आये।

सुनहु भरत हनुमत कही, आये लछिमन राम।
सिय समेत मंगल कुसल, जीति असुर संग्राम॥
* जीति असुर संग्राम देव सब सुथल बसाये।
† राज विभीषन दीनि सुजस नारद सिव गाये॥
नारद सारद संभु सुक प्रभु कीरति पावनि लही।
सो प्रभु आवत अवधपुर सुनहु भरत हनुमत कही॥१९॥

स्रवन भरत आनँद लह्यो, सुनत भावती बात।
चकित थकित सुख सपन धौं, कहत कोई सक्षात॥
कहत कोई सक्षात भरत पुनि नयन उघारे।
पुनि हनुमत कह राम अवध आये सुख भारे॥
‡ सुख भारे उठि भरत कर, हिये भेटि आनँद गह्यौ।
अस्रुपात गातन पुलकि, सुनत भरत आनँद लह्यौ॥२०॥

---

* "रिपु रन जीति सुजस सुर गावत। सीता अनुज सहित प्रभु आवत"॥
(रा० च० मा०, उ० का०)

† "अविचल राज विभीषनहिं, दीन राम रघुराज"। (रा० प्र०, अ० ६, दो० २१)

(१९) सुक=शुकदेवजी। पावनि=पवित्र। लही=प्राप्त किया। हनुमान्‌जी ने कहा—"हे भरतजी, राम और लक्ष्मण, सीताजी सहित, राक्षसों को युद्ध में जीतकर, कुशलता-पूर्वक आ रहे हैं। देवताओं को अच्छे स्थानों में बसा दिया है तथा विभीषण को लङ्का का राजा बना दिया है। नारद, सरस्वती, शङ्कर और शुकदेवजी प्रभु की पवित्र कीर्ति का गान कर रहे हैं।"

‡ "सुनत भरत भेंटे उठि सादर"। (रा० च० मा०, उ० का०)

(२०) स्रवन=कान। भावती=अच्छी लगनेवाली। सक्षात=प्रत्यक्ष। भरतजी ने कानों से जब भावती बात सुनी तो वह बहुत प्रसन्न हुए और चकित होकर सोचने लगे कि यह स्वप्न है या वास्तव में कोई प्रत्यक्ष कह रहा है। इतने में उन्होंने आँखें खोलीं तो हनुमान् ने फिर राम के आने की बात कही। भरत ने उन्हें हृदय से लगा लिया, मानों आनन्द को हाथों से पकड़ लिया हो। उनके प्रेमाश्रु गिरने लगे और सब अङ्ग पुलकित हो उठे।

आये यह संदेस लै, कहा देहुँ तुहि तात।
* यहि पटतर त्रय लोक नहिं, कही अमृत सम बात ॥
कही अमृत सम बात राम सिय कुसल विसेषी।
लछिमन सहित सुछेम अवधि आवत तुम देखी ॥
आवत देखि विसेषि तुम, कह हनुमंत प्रदेस लै।
मिले बहुरि कपि कंठ लगि, आये यह संदेस लै ॥२१॥

† अवध आय प्रगटीं सबै गुरु पुरजन समुझाइ।
मातु कुसल आये लषन, सिया सहित रघुराइ ॥
सिया सहित रघुराइ बसहु मंगल सब नारी।
बंदनवार पताक चँवर चामर गज भारी ॥
गज भारी रथ तुरँग सँग, साजि भरत मंगल सबै।
चले नगर बाहेर मिलन, छबि सोभा प्रगटी सबै ॥२२॥

---

* "यह संदेस सरिस जग माहीं। करि बिचार देखेउँ कछु नाहीं" ॥
(रा० च० मा०, उ० का०)

(२१) पटतर = बराबर। सुछेम = कुशल। भरतजी बोले कि तुम ऐसा शुभ समाचार लेकर आये हो कि इसके समान तीनों लोकों में कोई वस्तु नहीं है। मैं तुम्हें भला क्या दूँ, तुमने लक्ष्मण सहित कुशल से सीताराम के आने की अमृत सी मधुर बात कही। क्या तुमने उन्हें अयोध्या में आते देखा है? हनुमान्‌जी ने कहा कि अवध प्रदेश तक मैंने उन्हें देखा है। यह सुनकर भरत ने महावीरजी को फिर कण्ठ से लगा लिया। इस छन्द में 'उपमा' अलङ्कार है।

† "हरषि भरत कोसल पुर आये। समाचार सब गुरुहि सुनाये" ॥
(रा० च० मा०, उ० का०)

"भरत आय गुरु निकट मातु पुर लोग जनाई"। (छप्पय रा०, लं० २७)

(२२) गज = हाथी। तुरँग = घोड़ा। भरत ने अयोध्या में आकर गुरु से, पुरजनों से और माताओं से सीताराम और लक्ष्मण के आने का हाल प्रकट किया और कहा कि सब स्त्रियाँ मङ्गल के साज सजा लें। बन्दनवार और ध्वजा लगाकर, चँवर आदि लेकर, बड़े-बड़े हाथी, घोड़े और रथ आदि सब मङ्गल के सामान सजाकर नगर के बाहर राम से मिलने चले। उस समय बड़ी कान्ति और शोभा प्रकट हो रही थी।

भरत संग हनुमंत लै, देखत गगन विमान।
नगर नारि नर देखि कै, उतरे कृपानिधान॥
* उतरे कृपानिधान मिले गुर प्रथम गुसाँई।
आसिष देइ सनेह कुसल पूछी मुनिराई॥
मुनिराई प्रभु भेंटि कै, भरत हृदय भगवंत लै।
अति सनेह पूरे मगन, भरत संग हनुमंत लै॥२३॥

मिले सकल पुरजन मुदित, रामचरित यह कीन।
सब जानत प्रथमै मिले, हम कहँ राम प्रवीन॥
हम कहँ राम प्रवीन ऊँच मध्यम नर नारी।
† जथाजोग मिलि सबहिं, बहुरि भेटीं महतारीं॥
भेटीं महतारीं सबै, प्रथम केकई परम हित।
बिरह बिथा नासी सकल, मिले सकल पुरजन मुदित॥२४॥

---

* "उतरि यान ते पुर समीप भेंटे मुनि गुरुजन"। (छ० रा०, उ० २८)

"मिले गुरुहि जन परिजनहिं, भेटत भरत सप्रीति"। (रा० प्र०, अ० ६, दो० ६)

(२३) गगन = आकाश। सनेह = प्रेम। भरतजी हनुमान्‌जी के साथ आकाश में विमान देख रहे थे। नगर के पास स्त्री-पुरुषों को देखकर दयासागर राम विमान से उतरे और पहले गुरु वशिष्ठजी से मिले। गुरुजी ने प्रेम से आशीर्वाद देकर कुशल पूछी। फिर प्रभु आनन्द में विभोर होकर भरतजी से मिले।

† "जथाजोग मिलि सबहिं कृपाला"। (रा० च० मा०, उ० का०)

"जो जेहि जोग राम तेहि बिधि मिलि, सबके उर अति मोद बढ़ायो"। (गी० लं० २१)

(२४) मुदित = प्रसन्न। भेटीं = मिले। हित = प्रेम। बिथा (व्यथा) = पीड़ा, दुःख। श्रीरामचन्द्रजी सब पुरवासियों से ऐसे विचित्र ढङ्ग से मिले कि सब यह समझे कि प्रभु हमसे पहले मिले हैं। ऊँच नीच और स्त्री-पुरुषों से उचित रूप से मिलकर श्रीराम माताओं से मिले। पर सबसे पहले प्रेम-सहित कैकेयी से मिले। इस प्रकार प्रभु ने सबका विरह और कष्ट दूर किया।

उत्तरकाण्ड

कुण्डलिया

राम अवध आये कुसल, घर घर मंगल साज।
पुरी भई अमरावती, राम राजि के राज॥
राम राजि के काज भरत सब साज सजाई।
सुर गंधर्व मुनीस सकल आये सुरसाँई॥
सुरसाईं मंगल सजे, बजे अवध दुंदुभि विमल।
* बरषि सुमन जय जय कहत, राम अवध आये कुसल॥१॥

सुभ सिंघासन सुचि बन्यौ, रघुपति बैठे आप।
भूषन मनिगन जगमगत, कोटिन भानु प्रताप॥
कोटिन भानु प्रताप वेद-धुनि विप्र उचारैं।
† छत्र चँवर धनु बान दंड भरतादिक धारैं॥
भरतादिक सुखमय मगन, सिय आई भूषन धन्यौ।
राम सिया सोभित भये, सुचि सिंघासन सुभ बन्यौ॥२॥

---

* "हरषत सुर बरसत सुमन, शकुन सुमंगल गान।
अवधनाथ गवने अवध, क्षेम कुशल कल्यान"॥ (रा० प्र०, अ० ६, दे० ५)

(१) साज=तैयारी। अमरावती=इन्द्रपुरी। सुरसाईं=इन्द्र। दुंदुभि=नगाड़े। श्रीरामचन्द्रजी कुशल-पूर्वक अयोध्या में आ गये। प्रत्येक घर माङ्गलिक पदार्थों से सजाया गया। उनके राज्य में अयोध्या पुरी अमरावती बन गई। भरत ने नगर को सजाने का काम अपने हाथ में लिया था। देवता, गन्धर्व, मुनि और इन्द्र आदि सब मङ्गल के साज सजाकर आये थे। फूलों की वर्षा हो रही थी, निर्मल दुन्दुभि बज रहे थे और सब श्रीरामचन्द्र की जयजयकार कर रहे थे।

† "गहे छत्र चामर व्यजन धनु असि चर्म शक्ति बिराजते"। (रा० च० मा०, उ० का०)
"भरत गहे कर छत्र चँवर सिय राम निहारे"। (छ० रा०, उ० २६)

(२) सुभ=सुन्दर। जगमगत=प्रकाशमान। भानु=सूर्य। शुभ सिंहासन श्रीरामचन्द्रजी के बैठने से पवित्र हो गया। आभूषणों की मणियाँ चमक रही थीं जैसे करोड़ों सूर्य प्रकाश कर रहे हों। ब्राह्मण वेद-ध्वनि कर रहे थे। भरत आदि छत्र-चँवर, धनुष-बाण और दण्ड लिये थे। जब सीताजी भी आभूषणों से सुसज्जित होकर आ गईं तो वह सिंहासन और भी सुन्दर हो गया। इस छन्द में 'उपमा' अलङ्कार है।

* प्रथम तिलक गुरु उच्चरयो, विप्रन आयसु दीन।
देव मुनिन जय उच्चरी, दुंदुभि हने नवीन॥
दुंदुभि हने नवीन सबहि वर अस्तुति ठानी।
† मातनि आरति साजि गीत गावैं मृदु बानी॥
मृदु बानी सुर मुनि सबै, जयति राम जय जय कह्यो।
वंदि वेद विरदावली, प्रथम तिलक गुरु उच्चरयो॥३॥

कह वसिष्ठ प्रथमै वचन, सब प्रकार सामर्थ।
सुर पाले खलदल दले द्विज महि सज्जन अर्थ॥
‡ द्विज महि सज्जन अर्थ भये दसरथ के बारे।
निगम सेत प्रतिपालि सुजस जग महँ विस्तारे॥
विस्तारे अद्भुत चरित, पालय लय कृत पुनि रचन।
जै जै नर अवधेस सुत, कह वसिष्ठ प्रथमै वचन॥४॥

---

* "प्रथम तिलक वशिष्ठ मुनि कीना। पुनि सब विप्रन आयसु दीना" ॥
(रा० च० मा०, उ० का०)

† "मुदित जन्म फल पाय मातु आरती उतारे"। (छ० रा०, उ० २६)

(३) नवीन = नया। मृदु = कोमल। पहले गुरु वशिष्ट ने मन्त्र पढ़कर राजतिलक किया, फिर ब्राह्मणों को तिलक करने की आज्ञा दी। देवता और मुनियों ने श्रीराम की जय बोलकर नगाड़े बजाये और सब लोग स्तुति करने लगे। सब माताओं ने आरती सजाई और कोमल वाणी से गाने लगीं। देवता, मुनि, बन्दीजन और वेद विरुदावली गाकर श्रीराम की जय मनाने लगे।

‡ "निज इच्छा प्रभु अवतरइ, सुर महि गो द्विज लागि"। (रा० च० मा०, कि० का०)

(४) अर्थ = भलाई के लिए। बारे = पुत्र। निगम = वेद। सेत = पुल, मार्ग। पहले वशिष्ठजी ने कहा कि दशरथजी के पुत्र सब तरह से सामर्थ्यवान् हैं, जिन्होंने ब्राह्मण, पृथ्वी और सज्जनों के लिए जन्म लेकर देवताओं का पालन करके दुष्टों की सेना का संहार किया तथा वेदों के मार्ग की रक्षा करके संसार में अपनी कीर्ति फैलाई। अवधेश-कुमार की जय हो, जिनके चरित्र विचित्र हैं। यही संसार का पालन, संहार और फिर से निर्माण करते हैं।

* कह विधि सबहिं सुनाइ कै, रामचरित्र अपार।
 † निगम सेष संकर सकल को जग जाननहार॥
को जग जाननहार अमित अवतार विहारी।
 सुर सज्जन के हेतु करत लीला वपुधारी॥
लीला तन मंगल भवन, खल दलि भुवन बसाइकै।
 जग मंगल कारन करन, कह विधि सकल सुनाइ कै॥५॥

‡ उठि संकर जय जय कहत राम सरूप तुम्हार।
 मंगलमय मूरति मधुर सुमिरत सब दातार॥
सुमिरत सब दातार लहत सुख सुंदर ध्याये।
 § गुनगन पावन गाइ तरत भवनिधि सुख पाये॥
सुख पाये मुनि मन सुखी, ध्यान ज्ञान सोचत रहत।
 || रवि-कुल-कमल-दिनेस प्रभु, उठि संकर जै जै कहत॥६॥

---

* "रामचरित अवगाह सिंधु कोइ पार न पावा।
 शेष शारदा निगम नेति कहि निज मुख गावा"। (छ० रा०, उ० ३१)

† "रामचरित गुनसागर थाह कि पावइ कोइ"। (रा० च० मा०, उ० का०)

(५) अपार = अथाह। अमित = अनेक। वपु = शरीर। ब्रह्माजी ने सबको सुनाकर कहा कि रामचन्द्रजी के चरित्रों का पार नहीं है। इनका पूरा चरित्र वेद, शेषनाग और शिव भी नहीं जानते, क्योंकि ये अनेक अवतार धारण करते हैं। देवता और सन्तों के लिए ही शरीर रख के लीला करते हैं। इनका लीलामय शरीर कल्याण का केन्द्र है जो भुवन को बसाकर दुष्टों का नाश और संसार का कल्याण करता है। इस छन्द में 'अतिशयोक्ति' अलङ्कार है।

‡ "राम सरूप तुम्हार, बचन अगोचर बुद्धि पर"। (रा० च० मा०, अ० का०)
 "शंभु आय कृत बिबिध भाँति स्तुति श्रीरामा"। (छ० रा०, उ० ३०)

§ "भवताप भयाकुल पाहि जनं"। (रा० च० मा०, उ० का०)

|| "सुनत सभा सम्भ्रम उठे, रविकुल-कमल-दिनेस"। (रा० च० मा०, अ० का०)

(६) दातार = देनेवाला। ध्याये = ध्यान करने से। सोचत रहत = चिन्तना किया करते हैं। शिवजी कहते हैं कि राम आप सूर्यवंशरूपी कमल को खिलाने के लिए सूर्य के समान हैं। आपका स्वरूप कल्याणकर है और मोहिनी मूर्ति के स्मरण से ही सब कुछ मिल जाता है। आपके ध्यान से सब सुख मिलते हैं और गुणगान करने से संसार-सागर सुख से पार हो जाता है। मुनि लोग भी ध्यान और ज्ञान में आप ही का चिन्तन करते हैं, आपकी जय हो। इस छन्द में 'रूपक' अलङ्कार है।

सुरपति कहत प्रनाम कै, राम सुनहु सुरभूप ।
प्रति अवतार अपार गुन, बरनत वेद अनूप ॥
बरनत वेद अनूप दुष्ट जन खंडनहारे ।
मन गो तन को त्रसित, राम तुम ताहि पियारे ॥
ताहि पियारे तुम लगत, बचे मोह मद नाम कै ।
* हम निसि-दिन विषया बिबस, सुरपति कहत प्रनाम कै ॥७॥

रवि अंजुलि जोरे कहत, राम सुनहु मम बैन ।
† कृपा करिय निजु चरन रति, निसदिन राजिवनैन ॥
दीजिय राजिवनैन तोष बड़ हृदय हमारे ।
जब ते मम कुल जन्म रावरे नरतनु धारे ॥
नरतनुं धरि जसु विस्तरयो, चिरंजीव जोरी रहत ।
जय जय रविकुल रवि विमल, रवि अंजुलि जोरे कहत ॥८॥

---

* "भव प्रवाह संतत हम परे" । (रा० च० मा०, लं० का०)

(७) खंडनहारे = नाश करनेवाले । त्रसित = भयभीत । विषया = वासना, विषयानुराग, माया । इन्द्र ने प्रणाम करके कहा—"हे राम, आप देवताओं के स्वामी हैं । अनुपम वेद भी यही कहते हैं कि आपके प्रत्येक अवतार में अपार गुण रहते हैं । आप दुष्टों का संहार करते हैं । यह मन, जिसे तुम प्यारे हो, शरीर और इन्द्रियों से त्रस्त है । पर तुम्हें मोह और मद नाम को भी नहीं छू गया । हम लोग सदा वासना से व्यस्त रहते हैं इसलिए परवश हैं, आपको प्रणाम करते हैं ।"

† नृपनायक दे वरदानमिदं, चरणाम्बुज प्रेम सदा सुखदं" । (रा० च० मा०, लं० का०)

(८) तोष = सन्तोष । रवि = सूर्य । सूर्य भगवान् अंजलि बाँधकर बोले—"हे कमल-नेत्र ! ऐसी कृपा करो कि दिन-रात आपके चरणों में प्रेम बना रहे । आपने जब से हमारे वंश में जन्म लिया है, हमारे हृदय में बड़ा सन्तोष है । आपने मनुष्य का शरीर रखकर कीर्ति फैलाई । यह जोड़ी चिरायु हो । हे राम, आप सूर्यवंश में मेरे ही समान हैं, आपकी जय हो ।" इस छन्द में 'रूपक' अलङ्कार है ।

अनिल अनल धर विनय करि, खल खंडन तुम राम।
राजु आजु त्रय पुर विसद, राजहि जग अभिराम॥
राजहि जग अभिराम सन्त सज्जन सुखकारी।
* नरतनु धनु धरि हाथ हरयो धरनी अघ भारी॥
धरनी मंडन खंडि खल राजु विराजत भुवन भरि।
जय जय श्री सीतारमन अनिल अनल धर विनय करि॥९॥

† निगम विप्रतन करि कहैं राम सुनहु सुर-ईस।
कोटि कोटि जतननि करत, नहिं पावत जोगीस॥
नहिं पावत जोगीस हृदय संकर पहिं हारे।
विधि सनकादिक नेम धर्म्म करि तुम्हैं निहारे॥
तुम्हैं निहारत सुख लहै, ते कपि भालुहि कर गहै।
जयति राम लीला अगम, निगम विप्रतन करि कहै॥१०॥

---

* "जय हरन धरनी भार"। (रा० च० मा०, लं० का०)

(९) अनिल = वायु। अनल = अग्नि। अभिराम = सुन्दर। पवन और अग्नि ने विनय की—हे राम, तुम दुष्टों का नाश करते हो। आज तुम्हारे राज्य में इस संसार में हो तीनों लोकों की विशदता वर्तमान है। जगत् में सुखदायी सन्त और सज्जन शोभा पा रहे हैं। आपने मनुष्य का शरीर धारण करके धनुष लेकर पृथ्वी के घोर पाप नष्ट कर दिये। आप दुष्टों का नाश करके पृथ्वी की रक्षा करते हैं। आपके राज्य में सारा भुवन भरा-पूरा है। हे सीता रमण, आपकी जय हो, जय हो।

† "वंदि वेष धरि वेद तब, आये जहँ श्रीराम"। (रा० च० मा०, उ० का०)
"वेद स्तुति करि जयति भनि भक्ति देहु रामापना"। (छ० रा०, उ० २९)

(१०) निगम = वेद। कर = हाथ। अगम = अपार। वेद ब्राह्मणों का शरीर धारण करके बोले—हे राम, आप देवताओं के स्वामी हैं। बड़े-बड़े योगी करोड़ों यत्न करने पर भी आपको नहीं पाते जो अपना हृदय शङ्करजी को अर्पण कर देते हैं। ब्रह्मा और सनकादि आदि भी धार्मिक नियमों का पालन करते हुए तुम्हारा ध्यान किया करते हैं। इतना होने पर भी आप वानरों और भालुओं का हाथ ग्रहण किये हुए हैं। आपकी लीलाएँ अपार हैं, आपकी जय हो।

सारद नारद जोरि कर विनय करत चित लाइ।
अद्भुत चरित तुम्हार प्रभु, सुनियै श्री रघुराइ ॥
सुनियै श्री रघुराइ पिता दसरथ सम जाही।
* त्रन सम तन तजि दीन सुजस जाको जग माहीं ॥
सुजस-कियो जेहिं जगत भरि, गयो विरह लै अमर-घर।
गीध क्रिया निज कर कहैं, सारद नारद जोरि कर ॥११॥

† अस्तुति करि मुनि सुर गये, राम भरत बुलवाइ।
‡ कपिपति रीछ विभीषनै, नल नीलहिं अन्हवाइ ॥
नल नीलहिं अन्हवाइ भरत भूषन पहिराये।
अंगद सहित समाजु राम सब निकट बुलाये ॥
राम निकट बैठाइ कै मधुर बचन बोलत भये।
कपि कीरति प्रभु उच्चरत, अस्तुति करि मुनि सुर गये ॥१२॥

---

* "बिछुरत दीनदयाल, प्रिय तन तृन इव परिहरेउ"। (रा० च मा०, बा० का०)

(११) अमर-घर = स्वर्ग। सरस्वती और नारद हाथ जोड़कर चित्त लगाकर विनय करते हैं— हे राम! आपके चरित्र बड़े विचित्र हैं। आपके पिता दशरथ जैसे हैं, जिनका यश संसार भर में फैल गया और जिन्होंने तिनके की तरह शरीर छोड़ दिया। आप का विरह हृदय में लिये हुए वे स्वर्ग चले गये। आपने गीध की क्रिया भी अपने हाथ से की। इस छन्द में 'उपमा' अलङ्कार है।

† "पाय रजायसु चले देव सब निज निज धामा"। (छ० रा०, उ० ३०)

‡ "भालु बिभीषण कीशपति, पूजे सहित समाज"। (रा० प्र०, अ० ६, दो० १६)

(१२) रीछ = जामवन्त। जब देवता और मुनि स्तुति करके चले गये तो राम ने भरत को बुलवाया और सुग्रीव, जाम्बवान्, विभीषण, नल और नील को स्नान कराया। भरतजी ने सबको आभूषण पहनाये। फिर राम ने अङ्गद को सब समाज के सहित बुलवाया और अपने पास बैठाकर मीठे वचनों से वानरों की प्रशंसा करने लगे।

मुनिनायक ये नील नल, कीन्हे अद्भुत कर्म।
* सत जोजन सागर बँध्यो, सेतु उपल गिरि धर्म॥
सेतु उपल धरि धर्म सीस रावन के फारे।
मंदिर सुबरन खंभ कलस महिधर बहु डारे॥
महिधर डारि सँघारि अरि, रन मंडल हति असुर दल।
महावीर बानैत बल, मुनिनायक ये नील नल॥१३॥

मुनिनायक कपिराज ये, करे हमारे काज।
† बानर कोटि पठाइयौ सिय सोधन सिरताज॥
सिय सोधन सिरताज करयो रन मंडल भारी।
मंत्र तंत्र सब सुद्रढ़ सैन बल अबल बिचारी।
अबल बिचारी ठौर जहँ, तहँ बल दिये समाज ये।
महाबली बुधिवंत अति, मुनिनायक कपिराज ये॥१४॥

---

* "बाँधा सेतु नील नल नागर"। (रा० च० मा०, लं० का०)

(१३) उपल=पत्थर। धर्म=धारण करनेवाला। सुबरन (स्वर्ण)=सोना। महिधर=पर्वत। सँघार=नाश। हे मुनिवर! ये नील और नल हैं, जिन्होंने पर्वत की शिलाओं से सौ योजन के समुद्र में पुल बना दिया (शिलाओं ने अपना धर्म रखकर पुल का काम दिया)। इन्होंने रावण के सिर फोड़े। पर्वतों की वर्षा करके सोने के मकानों के खम्भे और कलसे गिरा दिये। युद्धक्षेत्र में राक्षसों को मारकर शत्रु का संहार किया। ये बड़े बलवान् तथा पटे और पैंतरे में बहुत प्रवीण हैं।

† "जेहि विधि कपिपति कीश पठाये"। (रा० च० मा०, उ० का०)

"सीय सोध कपि भालु सब, बिदा किये कपिनाथ"। (रा० प्र०, अ० ४, दो० ३८)

(१४) सोधन=खोज। सिरताज=शिरोमणि। ठौर=स्थान। हे गुरुवर! ये वानरों के राजा सुग्रीव हैं, जिन्होंने सीताजी को ढूँढ़ने के लिए करोड़ों वानर भेजकर हमारा काम किया। थोड़ी सेना होने पर भी मन्त्रों और तन्त्रों से सुदृढ़ करके बड़ा भयानक समर किया। समय पड़ने पर, निर्बल सेना होने पर भी, बड़े समाज की सी शक्ति दिखाई। अत्यन्त बलवान् होते हुए भी ये बड़े बुद्धिमान् हैं।

सुनहु विभीषन बहु कियो, मिल्यो मोहिं तजि भाइ।
रावन अरु घननाद की, दई मीचु दरसाइ॥
*दई मीच दरसाइ गदा पुनि रावन मारयो।
लछिमन घायल भये बैद को नाम उचारयो॥
नाम उचार्यौ सत्रुदल, करि उपाय लछिमन जियौ।
राम कहत मुनिराज सों, सुनहु विभीषन बहु कियौ॥१५॥

रीछनाथ बल दल महा, रावन हत्यौ प्रचारि।
† मेघनाद को पाँउ धरि, लंक गयो फटकारि॥
लंक गयौ फटकारि असुर दल दले समाजन।
सेत बाँधि धरि जुत्थ हाथ सिर धरि गिरिराजन॥
सिर धरि गिरि रावन दले, सभय सत्रु रन नहिं रहा।
मुनिनायक लायक सबै, रीछनाथ बल दल महा॥१६॥

---

* "देखि विभीषन प्रभु श्रम पायो। गहि कर गदा क्रुद्ध होइ धायो"॥
(रा० च० मा०, लं० का०)
"नाभि कुंड पियूष बस याके। नाथ जियत रावन बल ताके"॥
(रा० च० मा०, लं० का०)

(१५) तजि=छोड़कर। मीचु=मृत्यु। विभीषण ने तो हमारे साथ बड़ा उपकार किया कि अपने भाई को छोड़कर हमारा साथ दिया और रावण तथा मेघनाद को मारने का तरीक़ा बता दिया। रावण के गदा मारी और लक्ष्मण के शक्ति लगने पर इन्होंने वैद्य का नाम बताया। शत्रुदल के होते हुए भी उपाय करके लक्ष्मण को जिला लिया। श्रीरामचन्द्रजी वशिष्ठजी से कहते हैं कि विभीषण ने वास्तव में बहुत कुछ किया।

† "तब पद गहि लङ्का पर डारा"। (रा० च० मा०, लं० का०)

(१६) प्रचारि=गरजकर। फटकारि=पटककर, फेंक दिया। दले=मारा। जुत्थ (यूथ)=समूह। हे ऋषिवर! रीछों की बड़ी भारी सेना के स्वामी, जामवन्त बड़े बलवान् हैं। इन्होंने गरजकर रावण पर प्रहार किया और मेघनाद का पैर पकड़कर फेंक दिया तो वह लङ्का में गिरा। राक्षसों की अनेक सेनाओं को पीस डाला। समुद्र में पुल बाँधते समय पर्वतों को सिर में और भुजाओं में रखकर उठा लाये। लड़ाई में रावण पर पर्वतों की वर्षा की तो शत्रु भयभीत होकर रण-भूमि में न रहा। ये सब प्रकार से योग्य और सम्पन्न हैं।

ये अंगद मुनि अति बली, जिन रावन पुर जाइ।
* मान ज्ञान अरि दल दलेउ, रोपि सभा धरि पाइ॥
रोपि सभा धरि पाइ केस धरि रावन-रानी।
महि कठोरि पुनि हत्यौ सीस दस चरन डरानी॥
चरन धरे कंपत असुर, सैन समर अति दलमली।
रन विजई सुभ सुजसदा, ये अंगद मुनि अति बली॥१७॥

ये हनुमंत विचारु मुनि, प्रथम मिलायो मोहिं।
कपिपति पुनि दल जोरिकै, लै मुद्रिक कर जोहि॥
लै मुद्रिक कर जाहि वीर लै सुभट सिधायो।
† त्रिषित लगे सब मरन जाइँ तेहिं सुजल पियायो॥
सुजल पियायो सबहि को, समुद तीर रचि मंत्र पुनि।
पक्ष तक्ष संपाति दै, ये हनुमंत बिचारि मुनि॥१८॥

---

* "सभा माँझ पन करि पद रोपा"। (रा० च० मा०, लं० का०)

(१७) अरि=शत्रु। दल=सेना। समर=युद्ध। हे मुनिवर! अङ्गद अत्यन्त बलवान् हैं जिन्होंने लङ्का में जाकर अपना पैर जमा दिया और शत्रु की सेना का घमण्ड और ज्ञान चूर्ण कर दिया। रावण की रानी को बाल पकड़कर खींचा। इनके पहुँचते ही राक्षस काँपने लगते थे। इन्होंने युद्ध-क्षेत्र में बहुत बड़ी सेना का संहार किया। ये युद्ध में विजय प्राप्त करके हमें सुयश देनेवाले हैं।

† "लागि तृषा अतिशय अकुलाने"। (रा० च० मा०, कि० का०)

(१८) मुद्रिक=मुँदरी। सुभट=वीर। त्रिषित=प्यासे। हे मुनिवर! विचारिए तो कि पहले तो हनुमान्‌जी ने मुझे सुग्रीव से मिलाया, फिर सेना एकत्रित की और मुद्रिका लेकर वीरों के साथ सीता की खोज में निकले। राह में सब प्यास के मारे मरने लगे तो स्वच्छ जल पिलाया और समुद्र के किनारे सलाह करके सम्पाती को पङ्ख-युक्त कर दिया।

गयो उदधि पारै सुभट, साथी तट बैठाइ ।
देखि सिया मनि हाथ लै, बन उजारि फल खाइ ॥
* बन उजारि फल खाइ असुर मारे भट भारी ।
करि उपाइ पुर लंक कूदि घर घर पुनि जारी ॥
जारि बारि पुनि वारिनिधि, कूदि चल्यौ बंकट विकट ।
गर्जत घोर कठोर अति, गयौ उदधि पारै सुभट ॥१९॥

सिय मनि दै दल लै चल्यौ, दिग्गज दरकत अंग ।
पार जाइ घेरो अरिहिं, दुर्ग कियो पुर भंग ॥
दुर्ग कियो पुर भंग समर लछिमन दुख पायौ ।
† दोनागिरि धरि सीस रैनि नभ मारग धायौ ॥
मारग धावत सर लयौ, भरत कोपि उरथल दल्यौ ।
लषन सोच उर मानिकै, सिय हित गिरि सिर लै चल्यौ ॥२०॥

---

* "बन उजारि जार्‌यो नगर, कूदि कूदि कपिनाथ" । (रा० प्र०, अ० ५, दो० ३०)

(१९) उदधि=समुद्र । भट=वीर । वीरवर अपने साथियों को किनारे पर बैठाकर समुद्र के पार चले गये और सीताजी को मुद्रिका दे आये । लङ्का का उपवन उजाड़कर फल खाये और अनेक वीर राक्षसों को मारा । अपने उपाय से कूदकर लङ्का का प्रत्येक घर जला दिया । लङ्का जलाकर समुद्र में कूद पड़े और भयानक गर्जना करते हुए चले आये ।

† "गहि गिरि निशि नभ धावत भयऊ" । (रा० च० मा०, लं० का०)

(२०) दरकत=दबते हुए । नभ=आकाश । सीताजी को मणिमुद्रिका देने के बाद यहाँ से ऐसी विशाल सेना लेकर चले कि दिशाओं के हाथियों के अंग फटने लगे । पार जाकर शत्रु को घेर लिया और लंका का क़िला तोड़ डाला । युद्ध में लक्ष्मण पर दुःख पड़ने पर सिर पर दोनागिरि रखकर रातोंरात आकाशमार्ग से दौड़ आये । राह में भरत ने क्रुद्ध होकर हृदय में बाण भी मारा पर लक्ष्मण की चिंता और सीता के हित का विचार करके सिर पर पर्वत लेकर चले ही आये ।

कहँ लौं गुन मुनि मैं कहौं, कपि समाज के काज।
* भरत लषन ते प्रिय सदा, कपिनायक सिरताज ॥
† कपिनायक सिरताज मिले उठि सबहिं बहोरी।
बिदा किये सनमानि परसपर प्रीति न थोरी ॥
प्रीति न थोरी प्रभु करी सब प्रनाम करि सुख लहौ।
बार बार जस प्रभु कहैं, कहँ लगि गुन मुनि मैं कहौं ॥२१॥

‡ रामराज राजत भयौ, गयौ सकल दुख भागि।
§ रोग सोग अपगति मरन, काल कर्म गुन त्यागि ॥
|| काल कर्म गुन त्यागि, भई सतजुग की करनी।
बारिद मन-गति वारि, भई सुरभी सुर-धरनी ॥
सुरभी सुर-धरनी भई, कपट दंभ पाखँड गयौ।
धर्म विवेक विचार नर, रामराज राजत भयौ ॥२२॥

---

* "भरतहुँ ते मोहिं अधिक पियारे"। (रा० च० मा०, उ० का०)

† "बिदा कियो सब सखहिं प्रभु देव जयति कह जापना"। (छ० रा०, ३०)

"भली भाँति सनमानि सब बिदा किये रघुराज"। (रा० प्र०, अ० ६, दो० १६)

(२१) नायक=स्वामी, राजा। वानरों ने जो काम किया है, उसके गुण मैं भला कहाँ तक कहूँ। सुग्रीव तो सबके सिरताज ही हैं। ये मुझे लक्ष्मण और भरत से भी अधिक प्यारे हैं, इतना कहकर श्री रामचन्द्रजी सबसे मिले और सम्मान-पूर्वक सबको बिदा किया। दोनों ओर से अगाध प्रेम उमड़ रहा था। भगवान् स्नेह प्रदर्शित करते थे और वे लोग चरणों में प्रणाम करके ही सुख का अनुभव करते थे। बार-बार उनकी कीर्ति का वर्णन करके भी प्रभु कहते थे कि मैं कहाँ तक इनके गुणों का बखान करूँ।

‡ "राम राज बैठे त्रय लोका। हरषित भये गये सब शोका" ॥ (रा० च० मा०, उ० का०)

"राम राज भयो काज शकुन शुभ राजा राम जगतविजई है"। (वि० १४०)

"भये राम राजा अवध शकुन सुमंगल मूल"। (रा० प्र०, अ० ६, दो० १५)

§ "राम राज नभगेश सुनु सचराचर जग माहिं।
काल कर्म स्वभाव गुण कृत दुख काहुहि नाहिं" ॥ (रा० च० मा०, उ० का०)

|| "त्रेता भइ कृतयुग की करनी"। (रा० च० मा०, उ० का०)

(२२) अपगति=दुर्गति। गुन (गुण)=(स्वभाव) सत्त्व, रज और तम। सुर-धरनी=देवभूमि, आकाश। रामराज्य के स्थापित होते ही रोग-शोक, दुर्गति और मरण आदि के दुःख भाग गये। काल, कर्म और गुणों ने अपना-अपना प्रभाव छोड़ दिया। सतयुग की सी पवित्र करनी होने लगी; इच्छानुसार बादल पानी बरसाने लगे; पृथ्वी कामधेनु के समान हो गई। छल, घमण्ड और आडम्बर नष्ट हो गये। रामराज्य में सभी मनुष्य धार्मिक, बुद्धिमान् और बिचारवान् हो गये।

काम क्रोध अघ रोग सब, मान मोह मद गर्व ।
* दोष दुष्य जुर पीर खल, दारिद दाहन सर्व ॥
† दारिद दाहन सर्व बैर पर धन पर नारी ।
गे सुभाय सब छूटि, गये मति पर अपकारी ॥
पर उपकारी लोग सुख, भोग जोग महि प्रगट अब ।
गये अमंगल कृत जगत काम क्रोध अघ रोग सब ॥२३॥

नेम प्रेम प्रगटे जगत, दया छिमा संतोष ।
‡ जोग जग्य जप तप सुपथ, वेद सुमंगल पोष ॥
§ वेद सुमंगल पोष रह्यो परमारथ पूरी ।
पर अघ निज कृत दुकृत कुकृत दुस्तर भये दूरी ॥
‖ दुस्तर भय दूरी करे राम तेज रवि जगमगत ।
कमल कोक सब धर्म वर, नेम प्रेम प्रगटे जगत ॥२४॥

---

* "राग न रोष न द्वेष दुख, सुलभ पदारथ चारि" । (रा० प्र०, स० ६, दो० ३६)

† "नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना" । (रा० च० मा०, उ० का०)

(२३) गर्व = अभिमान । दाहन = जलानेवाला, जलन, नाशक । काम, क्रोध, पाप, सब प्रकार के रोग, मैं और मेरा आदि का मद और अभिमान, दोष, अवगुण, ज्वर, पीड़ा, दुष्टता और दरिद्रता आदि दुष्प्रवृत्तियाँ रामराज्य में नष्ट हो गईं । दूसरों की स्त्री और धन से लोग पराङ्मुख हो गये । दूसरों का अपकार करने का स्वभाव ही किसी में न रहा । अमाङ्गलिक कर्म लुप्त हो गये । सांसारिक भोग और योग पूर्ण रूप से प्रकट हो गये ।

‡ "राम राज मंगल शकुन, सुफल जाग जप जोग" ॥ (रा० प्र०, स० ६, दो० ४१)

§ "निरत वेद पथ लोग" । (रा० च० मा०, उ० का०)

¶ "रामचरित राकेस कर, सरिस सुखद सब काहु ।
सज्जन कुमुद चकोर चित, हित विसेष बड़ लाहु" ॥ (दोहावली)

(२४) छिमा = क्षमा । दुस्तर = कठिन । रवि = सूर्य । श्रीरामचन्द्रजी के तेजरूपी सूर्य के उदय होते ही सब पापों का अन्धकार दूर हो गया । यम, नियम आदि का पूर्ण आविर्भाव हुआ । दया, क्षमा और सन्तोष आदि वृत्तियाँ समाज में जाग उठीं । इस छन्द में 'अनुप्रास' और 'रूपक' अलंकार हैं ।

* एक राम गुन गाइबो, यह कलि कर्म न और।
तातें तुलसीदास के, मंत्र यहै सिरमौर ॥
मंत्र यहै सिरमौर राम सुचि कीरति गाऊँ।
† साधन उत्तम जानि सुमति निज मनहिं द्रढाऊँ ॥
मनहिं द्रढाऊँ मंत्र यह, जेहि प्रसाद सुख पाइबो।
‡ सुक नारद की सीख यह, एक राम गुन गाइबो ॥२५॥

§ एक राम मुख नाम धृत, ध्यान राम को रूप।
रामचरित गावत परम, धर्म पवित्र अनूप ॥
धर्म पवित्र अनूप करिय जब लौं जग जीजै।
रसना रस करि चरित सरित निसि बासर पीजै ॥
निसि बासर श्रम तजि भजै, तुलसिदास यहि सुभ सुकृत।
|| कामधेनु कलि कल्पतरु, एक राम मुख नाम धृत ॥२६॥

---

* "एक अधार राम गुन गाना"। (रा० च० मा०, बा० का०)
"आश राम नाम को भरोसो राम नाम को"। (क०, उ० १७२)
"विश्वास एक राम नाम को"। (वि०, १५६)
† "तुलसी की साहसी सराहिए कृपालु राम, नाम के भरोसे परिनाम को निसोचु है"। (क०, ८१)
"राम नाम पर तुलसी नेह निबाहु, एहि ते अधिक न एहि सम जीवनलाहु।" (ब० रा०,५७)
‡ "शम्भु सिखावन रसनहू नित राम नामहिं घोष"। (वि०, १५६)

(२५) सिरमौर = सबसे बढ़कर। सुचि = पवित्र। सीख = शिक्षा। कलियुग में रामनाम के गुणगान के समान कोई दूसरा कर्म नहीं है, इसलिए गोस्वामीजी की दृष्टि में यही मंत्र सर्वश्रेष्ठ है। वे कहते हैं कि इसी से मैं राम का पवित्र यश गाता हूँ। इसी मंत्र की साधना से मैं अपने मन को स्थिर करता हूँ; क्योंकि इसी के प्रसाद से सुख मिलता है। शुकदेव और नारद आदि ऋषियों का भी यही आदेश है कि केवल श्रीराम के गुणों को गाना चाहिए। इस छंद में 'अनन्वय' अलङ्कार है।

§ "राम नाम रति नाम गति, राम नाम विश्वास"। (रा० प्र०, स० ६, दो० २८)
|| "कलि नाम कामतरु राम को"। (वि० १५६) "रामनाम कलि कामतरु राम भगति सुरधेनु"। (रा० प्र०, स० ५, दो० १)
"कामधेनु हरि नाम कामतरु राम"। (ब० उ०, ६२)
"राम की शपथ सरबस मेरे राम नाम कामधेनु कामतरु मोसे छीन दाम को"।
(क० उ०, १७२)

(२६) रसना = जिह्वा। अद्वितीय पवित्र धर्म यही है कि मुख में एक रामनाम रखा रहे, राम के स्वरूप का ध्यान होता रहे और (वाणी) सदा श्रीराम के चरित्र गाया करे। जब तक संसार में जीवित रहिए इसी धर्म का पालन किया कीजिए और रामचन्द्रजी के चरित्र की सरिता का रस जिह्वा से स्वाद लेकर पिया कीजिए। सब प्रकार की चिन्ता छोड़कर दिन-रात भजन किया करे। तुलसीदास जी कहते हैं कि यही एक शुभ और पुण्य (कर्म) है। कलियुग में रामनाम ही कामधेनु और कल्पवृक्ष के समान मनवांछित फल देनेवाला है; अतः सदा रामनाम का ही जप करते रहना चाहिए। अंतिम पंक्ति और 'चरित-सरित' में 'रूपक' अलंकार है।

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ संख्या	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१	१	गोस्वामा	गोस्वामी
२	३	कुभ	कुंभ
४	३	कुंडलिया	कुंडलियाँ
४	१४	का प्रवृत्ति	की प्रवृत्ति
५	६	ऐसे हा	ऐसे ही
५	९	रही	रही है।
५	२५	श्री शाङ्ग	श्री शार्ङ्ग
५	२८	द्विताय	द्वितीय
६	१८	और बाद में	और वे ही बाद में
७	२२	क्रिया रूप	क्रिया रूपों
८	९	मिलता है	हुआ है
१०	८	गोस्वामी जा	गोस्वामी जी
१०	२६	सुनिए	सुनिये
१३	१२	स्वाथ	स्वार्थ
१३	१४	मानसकता है	मान सकती है
१३	२०	पड़ा है	पड़ी है
१३	२३	ताँता	ताँती
१५	२	इतिहास म	इतिहास में
१८	१२	अहल्या	अहिल्या
१८	२३	छवि	छबि
१९	२	सीताजा	सीताजी
२१	५	दासिमान्	दीप्तिमान्
२१	२३	हाथा	हाथी
२२	३०	सीताजी का	सीताजी की
२२	६	रोता	रोती
२२	१८	शोभा का	शोभा की
२३	२९	देने को कहे	देने को कहा
२४	२९	विरह का	विरह की
२५	८	ले आया	ले गया
२५	१३	स्त्रा-पुरुष	स्त्री-पुरुष
२५	१५	भा है	भी है
२५	२१	सीताजा	सीता जी

पृष्ठ संख्या	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२५	२८	दुष्टा	दुष्ट
२५	२९	कारण ही यह	कारण यह
२६	१	भरत जा	भरत जी
२६	५	लषण	लक्ष्मण
२६	९	ज़रा भा	जरा भी
२६	११	कूब्बड़	कूबड़
२६	१७	राजतिलक का	राजतिलक की
२७	१	देने स	देने से
२७	२	मिट जावे	मिट जाय
२७	१७	तार पर	तीर पर
२७	२१	रामचन्द्र जा	रामचन्द्र जी
२७	२३	जावेगा	जायगा
२७	३०	खेवा	खेवे
२८	३	तले	नीचे
२८	११	भेंटा	लगा लिया
२८	१२	अपनी माताओ	माताओं
२८	१६	ग़ोते	गोते
२८	२३	रुख़	रुख
२९	५	उनका	उनकी
२९	९	भूषण धारणवत्	भूषणवत् धारण
२९	१४	पश्चात्	पश्चात्,
२९	१९	भेट	भेंट
३०	२६	भाई,	भाई !
३१	२२	बालक का	बालि का
३२	२	पक्षिया	पक्षियों
३२	३	आया है	आया हो
३२	७	हो गया	होने लगा
३२	१०	ख़बर	खबर
३३	७	कहा कि	कहा—
३३	१०	मच्छर	मच्छड़
३४	१६	चुनौती दा	चुनौती दी
३४	२४	क़िला	किला
३५	७	वैर	बैर
३५	१५	देवता भा	देवता भी
३७	३	दा	दी
३७	५	क्या दिया,	क्या दिया है,

पृष्ठ संख्या	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३८	२७	किसी भा	किसी भी
३९	२४	ग्रन्थों का	ग्रन्थों की
३९	२७	हरनि	हरन
४२	३	तक का	तक की
४४	९	पीछे	पाछे
४५	२	अनरसानि	अनरसनि
,,	६	,,	,,
,,	१३	त्रय रानी	नृप रानी
४६	२१	रामायर्ण	रामायण
४६	२१	होता	होती
४९	१५	का पूर्ण	की पूर्ण
५२	२५	दिशा	दिसा
५५	१	ज़बरन्	जबरन्